

बौद्ध-संस्कृत-ग्रन्थावली—१६

Buddhist Sanskrit Texts-No. 16

मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तु

[द्वितीयः खण्डः]

बौद्ध-संस्कृत-ग्रन्थावली–१६

मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तु

[द्वितीयः खण्डः]

श्रीशीतांशुशेखरबागचिशर्मणा

सम्पादितम्

मिथिलाविद्यापीठप्रधानेन प्रकाशितः

शकाब्दः १८९२ संवत् २०२६ ऐशवीयाब्दः १९७०

Copies of this volume may be had of the Director, Mithila Institute Darbhanga, on pre-payment either in Cash, Postal order or M.O. of Rs. 30.00 for ordinary edition and Rs. 35.00 for Library edition.

The entire cost of preparation and production of this Volume has been met out of a subvention kindly placed at the disposal of the Institute jointly by the Government of India (Ministry of Scientific Research and Cultural Affairs) and the State Government of Bihar.

Printed by Ramashankar at the Tara Printing Works, Varanasi. Published by Dr S. Bagchi, Director, Mithila Research Institute, Darbhanga, Bihar.

BUDDHIST SANSKRIT TEXTS - NO. 16

MŪLASARVĀSTIVĀDA-VINAYAVASTU

Vol. II

EDITED BY

Dr S. BAGCHI

Director, Mithila Institute Of Post-Graduate Studies And Research in Sanskrit Learning, Darbhanga.

Published by

THE MITHILA INSTITUTE

OF

POST-GRADUATE STUDIES AND RESEARCH IN SANSKRIT LEARNING, DARBHANGA.

1970

MŪLASARVĀSTIVĀDAVINAYAVASTU

Vol. II

विषयानुक्रमणिका

ABBREVIATIONS

CV.	Cullavagga.
DigN.	Dīgha Nikāya.
Divy.	Divyāvadāna.
Digha.	Dīgha Nikāya.
GM.	Gilgit Manuscripts.
MajN.	Majjhima Nikāya.
MRI.	Mithila Research Institute.
Ms.	Manuscripts.
MSV.	Mūlasarvāstivādavinayavastu.
MV.	Mahāvastu.
Mva.	Mahāvagga.
Mvyut.	Mahāvyutpatti.
NNM.	Nava Nālandā Mahāvihāra.

मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तु का सारांश

पाण्डुलोहितक वस्तुओं में संघ संर्वकित अपराध कर्मों का अनुष्ठान एवं उसके लिए दंड का विधान किया गया है। जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में अनाथपिण्डद के उद्यान में अवस्थान करते थे, उस समय श्रावस्ती में कलहकारक पाण्डुलोहितिक भिक्षुसमुदाय निरन्तर संघ में भिक्षुओं के मध्य विवाद उत्पादन करते थे। जिसके फलस्वरूप संघ में संघर्ष उत्पन्न हो गया। इसलिये यह सुनकर भगवान् ने पाण्डुलोहितिक भिक्षुसमुदाय के लिये तर्जनीयकर्म[1] का विधान किया। इस प्रकार संघ में कलह पैदा करनेवाले लोगों के लिये भी यही विधान किया गया।

पूर्वोक्त दण्ड विधान के प्रसंग में पाँच प्रकार के नियमों का पालन करना संघ के लिये कहा गया। [१] चोदन—अपराधी भिक्षु को उसके अपराध के सम्बन्ध में उसको समझा देना। [२] स्मारण—अपराधी भिक्षु को जो अपराध उन्होंने किया है उसका स्मरण उसको करा देना। [३] सवस्तुक—अपराधी भिक्षु ने जो अपराध किया है उसका स्वरूप उसको समझा देना। अभियोग की विषय-वस्तु का उसको परिज्ञान करा देना। [४] प्रतिज्ञा—संघ को अपराध के सम्बन्ध में विज्ञापित कराना। [५] सम्मुखीभूत—अपराधी भिक्षु को संघ के समक्ष में उपस्थापन करना।

प्रस्ताव या अभियोग उत्थापन करने का नाम है ज्ञप्ति। ज्ञप्तिकर्म साधारणतः तीन प्रकार के हैं। ज्ञप्ति के बाद भिक्षु या भिक्षुणी के सम्बन्ध में जिस विषय पर अभियोग किया गया है उस अभियोग की जो विषय-वस्तु है, उसका विवरण सघ के सम्मुख प्रदान किया जाता है। इसीका नाम कर्मवाचना है।

---

१. *act of rebuke* or *threat*, a formal censure against dissident monks—BHS, 250

इसके द्वारा भिक्षु अथवा भिक्षुणी से संघ के निकट एक अथवा तीन प्रश्नों के द्वारा पूछा जाता था कि वे निःशब्द रहकर उसका अनुमोदन करते हैं अथवा वाक्य के द्वारा उसका विरोध करते हैं ?

पाण्डुलोहितिक नामक भिक्षुसमुदाय के विरोध में जिन तर्जनीय कर्मों का विधान किया गया है इनके फलस्वरूप वे निम्नलिखित नियमों का पालन करेंगे:– [१] वे किसी को प्रव्राजित नहीं कर सकेंगे [२] उनलोगों को उपसंपादन करने का अधिकार नहीं रहेगा। [३] निश्रय[१] का अधिकार नहीं रहेगा। [४] भिक्षु एवं भिक्षुणी को उपदेश प्रदान नहीं कर सकेंगे। [५] किसी भिक्षु के विरोध में अभियोग उत्थापन करने का अधिकार नहीं रहेगा। [६] अष्टांगसमन्वित पोषधव्रत का अनुष्ठान एवं प्रवारणा में योगदान करने का अधिकार नहीं रहेगा —वर्षाकाल के अवसान में भिक्षुगण जो प्रवारणाकर्म का अनुष्ठान करते हैं उसमें अधिकार नहीं रहेगा। [७] ज्ञप्तिकर्म में अधिकार नहीं रहेगा। जिन भिक्षुओं को उद्देश करके तर्जनीयकर्म का विधान किया गया है वे भिक्षु अगर उसका पालन नहीं करते हैं तो वे सब पाप युक्त हो जायेंगे। इसके बाद तर्जनीयकर्म का अनुष्ठाता भिक्षुसमुदाय संघ के द्वारा प्रदत्त निर्देश पालन करके चलें एवं कलहादि से निवृत्त हो जांय। इस स्थिति में संघ, उन भिक्षुसमूह को पूर्व के अधिकार में पुनः संस्थापित करेगा। इस प्रसंग में किनकिन पाप कर्मो के अनुष्ठान में भिक्षु के ऊपर दण्ड का प्रत्याहार नहीं किया जायगा इसका निर्णय किया गया है। उन भिक्षुओं को जिनके ऊपर तर्जनीयकर्म का विधान किया गया है, पुनः संघ के द्वारा पूर्वाधिकार में संस्थापित किया जायगा यदि वे संघके द्वारा निर्दिष्ट नियमों का पालन करते चलें। यह विषय पहले ही कहा जा चुका है।

भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में अनाथपिण्डद के आराम में अवस्थान करते थे। उस समय में श्रेयक नामक भिक्षु ने पुनः पुनः संघावशेष पाप कर्म का

---

१. Edgerton, BHS, 306

अनुष्ठान किया था। परिवास, मूलपरिवास, मानाप्य प्रभृति अनुष्ठान विधान करने पर भी वे श्रेयक भिक्षु पापकर्म से विरत नहीं हुए। इससे अवगत होकर भगवान् बुद्ध ने भिक्षुगण को श्रेयक नामक भिक्षु को उद्दिश्य कर एवं अनुरूप पापकरनेवाले भिक्षु के लिए निगर्हणीय कर्म का विधान करने के लिए निर्देश दिया। निगर्हणीय दण्डविधानपद्धति एवं निगर्हणीय दण्डादेश चालू रहने के समय में दण्डित या अपराधी भिक्षुको जिन सब अधिकारों से विच्युत किया जाता है वे सब तर्जनीयकर्म के विधान के प्रसंग में कहे गये हैं। उन तर्जनीय कर्मों के अनुरूप ही यहाँ भी समझना चाहिए। किस स्थिति में भिक्षु के विषय में निगर्हणीय कर्म का विधान किया गया है और उसको किस स्थिति में पुनः पूर्वाधिकार में संस्थापित किया जायेगा इसका भी निर्देश प्रदान किया गया है। इस प्रसंग में उल्लेखयोग्य है कि श्रेयक नामक भिक्षु ने संघ के द्वारा प्रदत्त दण्ड को मान लिया था। इसलिए वे संघके द्वारा पूर्वाधिकार में संस्थापित हुए।

कीटागिरि नामक स्थान में अश्वक एवं पुनर्वसुक नाम के दो भिक्षु अवस्थान करते थे। वे कुलदूषक थे एवं अनेक प्रकार के पापकर्मों में निरन्तर व्यापृत रहते थे। इसलिए उस स्थान के जनसाधारण भिक्षुगण के प्रति विरूप मनोभावापन्न हो गये थे। परिस्थिति इतनी खराब हो गयी थी कि भदन्त आनन्द भी कीटागिरि में अवस्थित जनसाधारण से भिक्षालाभ करने में समर्थ नहीं हुए। भदन्त आनन्द उदकप्लोतिक नामक उपासक के सभी विषयों से अवगत हो गये एवं अन्त में अश्वक एवं पुनर्वसु के उद्देश में प्रवासनीय[1] कर्म का विधान किया गया।

भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में अनाथ पिण्डद के उद्यान में अवस्थान करते थे। उस समय श्रावस्ती में एक आढ्य श्रेष्ठी वास करते थे। उस श्रेष्ठी के पुत्र का नाम उत्तर था। उत्तर अपने पिता की मृत्यु के बाद गृहस्वामी बना। उन्होंने भगवान् बुद्ध का भी दर्शन किया जिसके फलस्वरूप उनके मन में प्रव्रज्या

---

१ Edgerton, BHS, 385

ग्रहण करने की अभिलाषा उत्पन्न हो गई। परन्तु अपनी माता की अनुमति नहीं मिलने के कारण उत्तर ने उस समय प्रव्रज्या ग्रहण नहीं की। उनकी माँ ने कहा था कि जबतक मैं जीवित हूँ तबतक प्रव्रज्या ग्रहण नहीं करो। किन्तु उत्तर ने माँ से कहा कि यदि तुम संघ के भिक्षुओं का प्रतिदिन सत्कार करो तो मैं इस समय प्रव्रज्या ग्रहण नहीं करूँगा। उत्तर की माता अतिशय कृपण स्वभावा थी। वह अपने पुत्र के साथ प्रवञ्चनापूर्ण व्यवहार करती थी कि मैंने आज इतने भिक्षुओं को भोजन दिया। इतने का सत्कार किया। इतने श्रमण और ब्राह्मणों को भिक्षा दी। कालक्रम में वह मृता प्रेतगण के मध्य उत्पन्न हुई। उत्तर ने भी अपनी माता की मृत्यु के बाद प्रव्रज्या ग्रहण की। एक दिन उसने अक्षषण्डा नामक स्थान के अधिवासी गृहपति चित्र के गृह में गमन किया एवं उस स्थान में आहार के विषय में उल्लेख कर गृहपति चित्र के प्रति अतिशय अवज्ञा व्यक्त की। यह बात सुनकर भगवान् बुद्ध ने गृहपति के प्रति हेय व्यवहार करने के अभियोग में उत्तर के विरोध में प्रतिसंहरणीय कर्म का विधान करने के लिए भिक्षुगण को निर्देश दिया। अन्यान्य भिक्षु जो गृहपति के अवस्फण्डक हैं उन सबों के प्रति भी पूर्वोक्त दण्ड विधान करने के लिए निर्देश दिया। इसके बाद उत्तर ने जब कहा कि वह भविष्यत्काल में गृहपति के प्रति अवज्ञा प्रकाश नहीं करेगा तब भगवान् ने यह सुनकर उत्तर को पुनः पूर्वाधिकार में संस्थापित करने के लिए भिक्षुगण को निर्देश दिया। गृहपति का अवस्फण्डक अन्यान्य भिक्षुगण के प्रति अनुरूप व्यवहार करने का भगवान् ने भिक्षुसंघ को निर्देश दिया। भिक्षु-संघ के निर्देश से उत्तर ने अक्षषण्डा में जाकर गृहपति चित्र के पास क्षमा प्रार्थना की। इसके बाद उत्तर ने गंगातीर में वाक्संयत होकर तीन वर्षाऋतुओं को व्यतीत कर कठोर तपस्या द्वारा अर्हत्त्व लाभ किया।

भगवान् बुद्ध कौशाम्बी में घोषित के उद्यान में अवस्थान करते थे। उस समय में छन्द नामक भिक्षु, उसका अपराध दिखाने पर भी वह उस अपराध के अनुष्ठान की बात स्वीकार नहीं करता था एवं उसका प्रतिकार भी नहीं करता था। इसलिए भगवान् बुद्धने छन्द नामक भिक्षु के उद्देश से उत्क्षेपणीय कर्मरूप

दण्ड का विधान किया एवं अन्यान्य जो भिक्षु अनुरूप अपराधी हैं उन सबों के लिए भी पूर्वोक्त दण्ड का विधान कर दिया।

भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में अवस्थान करते थे। उस समय अरिष्ट नामक भिक्षु को इस प्रकार का पाप-ज्ञान उत्पन्न हुआ—भगवान बुद्ध ने जिन कार्यों को आन्तरायिक—प्रतिबन्धक धर्मरूप में निर्देश किया है उनका अनुष्ठान करने से अन्तराय उत्पन्न नहीं होता है। यह सुन कर भगवान् ने अरिष्ट नामक भिक्षु के उद्देश से उत्क्षेपणीय कर्म का विधान किया एवं अपरापर जो भिक्षु पूर्वोक्त अपराध से अपराधी हैं उन सबों के प्रति भी अनुरूप दण्ड का विधान करने के लिए निर्देश दिया।

अनन्तर शुक्रविसृष्टिसम्पर्कित संघावशेष पाप की दण्ड-विधान-पद्धति का प्रतिपादन किया गया है। भगवान् ने उदायी नामक भिक्षु को इस पाप का अनुष्ठान करने के कारण दण्ड विधान का निर्देश दिया है। उदायी भिक्षु ने संघावशेष पाप समूहों के अन्तर्गत शुक्रविसृष्टि पाप का अर्द्धमास तक गोपन किया। अतः भगवान् के निर्देशानुसार संघ ने उदायी भिक्षु के उद्देश से अर्द्धमास काल के लिए परिवास का विधान किया। परन्तु पूर्वोक्त पाप कर्म का अनुष्ठान करने के कारण जो परिवास का विधान किया गया था उस परिवास के आचरण काल के मध्य में पूर्व के अनुरूप पाप का अनुष्ठान करके उदायी भिक्षु ने उस का गोपन किया। अनन्तर भगवान् के निर्देशानुसार संघ ने उदायी भिक्षु के उद्देश से मूलपरिवास का विधान किया। पुनः मूलपरिवास के आचरण काल में पूर्वोक्त पाप के बराबर पाप का अनुष्ठान कर उदायी भिक्षु ने उस का गोपन किया। इससे अवगत होकर भगवान् ने उदायी भिक्षु के उद्देश से मूलापकर्ष का विधान किया। तदनुसार संघने उदायी भिक्षु के उद्देश से मूलापकर्ष का विधान किया। मूलापकर्ष परिवास के अनुष्ठान की पूर्णता के बाद भगवान् ने उदायी भिक्षु के उद्देश से छः रात्रि के लिए [छः दिन व्यापी] मानाप्य नामक व्रतानुष्ठान का निर्देश दिया। इसके बाद भगवान् उदायी भिक्षु के उद्देश से आगर्हण—पूर्वोक्त व्रत समूह का आचरण करने के

दायित्व से मुक्त कर देने के लिए आदेश दिया। जिससे उदायो भिक्षु संघ में पुनः प्रवेश के अधिकार एवं भिक्षु के अधिकार में संस्थापित हुए। दण्ड प्रदान एवं आगर्हण-पद्धति में समानरूपता विद्यमान है। आगर्हण-पद्धति में निर्देश दिया गया है कि उदायो भिक्षु एवं अनुरूप पाप कर्म के अनुष्ठाता भिक्षुओं का तिरस्कार पूर्वक उस के पाप कर्मों का एवं उस के द्वारा आचरित व्रत समूहों का उल्लेख करना पड़ेगा। इसके बाद पूर्वोक्त भिक्षु को उत्साह—प्रेरणा प्रदान की जायगी। अन्त में संघ के द्वारा उदायी भिक्षु आगर्हित हुआ था।

पुद्गलवस्तु

पाण्डुलोहितकवस्तु में भिक्षु के द्वारा अनुष्ठित भिन्नभिन्न पाप के दण्डविधान का नियम एवं दण्ड का स्वरूपनिर्देश किया गया है। पुद्गलवस्तु में भी उस प्रसंग का ही विशेष-विशेष परिस्थिति के अनुसार विवरण प्रदान किया गया है। एक शब्द में कहा जा सकता है कि पुद्गलवस्तु पाण्डुलोहितकवस्तु का परिशिष्ट या परिपूरक है। पाण्डुलोहितकवस्तु में अपराध गोपन करने के कारण परिवास एवं अपराध गोपन नहीं करने से मानाप्य[1] का विधान किया गया है। परन्तु इस प्रकार परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि किसी भिक्षु ने दो संघावशेष पाप का अनुष्ठान कर कुछ दिन उनका गोपन कर एक पाप का प्रकाश कर दिया परन्तु अपर पाप को कालान्तर में प्रकाशित किया। इसी प्रकार कोई भिक्षु एक पाप का प्रकाश करने पर भी स्मृति-भ्रंशनिबन्धन दूसरे पाप का उस समय प्रकाश नहीं किया। इसप्रकार की जटिल परिस्थिति में दण्ड एवं दण्डविधान का नियम किस प्रकार होगा—यही पुद्गलवस्तु में बताया गया है। ऐसा क्षेत्र भी उत्पन्न हुआ कि कोई भिक्षु एकाधिक

---

१ कोई भिक्षु संघावशेषपाप का अनुष्ठान करके अगर उसका गोपन करे तब उस स्थिति में उस भिक्षु के लिए छः रात्रि व्यापी मानाप्य का विधान किया गया है।

पाप कर्म का अनुष्ठान कर संघ का परित्याग करके चला गया एवं पुनः संघ में प्रवेश करने का आग्रह प्रकाश किया। इस परिस्थिति में दण्ड एवं दण्डविधान का नियम पुद्गलवस्तु में बताया गया हैं। बौद्ध विनय के अनुसार पाप गोपन अतिशय निषिद्ध कार्य के रूप में परिगणित हुआ है। इसलिए पापानुष्ठान कर कितने काल तक वे प्रतिच्छन्न रखे गये है यह विषय पुद्गलवस्तु में विशेष रूप से पर्यालोचित हुआ है। इस प्रसंग में दो प्रकार संघावशेष आपत्ति [sin] के विषय का उल्लेख किया गया है (१) परिमाणवती आपत्ति (२) अपरिमाणवती आपत्ति।

जिस स्थल में पापानुष्ठान का गोपन काल अवगत हो गया है उस स्थल में अवश्य ही दण्ड विधान की कोई जटिलता नहीं है। परन्तु जिस स्थल में पूर्वोक्त गोपन काल ज्ञात नहीं हुआ है उस स्थल में बाध्य होकर उपसंपदा ग्रहण काल से लेकर पाप के प्रकाश काल तक परिवासादि का निर्देश दिया गया है। इसको शुद्धान्तिक परिवास की संज्ञा दी गई है।

प्रसंग क्रम में पुद्गलवस्तु में जिस क्षेत्र में अविहित रूप में भिक्षु के ऊपर दण्ड-प्रदान किया गया है उसका भी पर्यालोचन किया गया है। इस प्रसंग में उन भिक्षुओं की संज्ञा सर्वकालक-पुग्दल रूप में की गई है। इसका आशय है सम्पूर्ण रूप में कृष्ण अथवा अपवित्र जिस भिक्षु के सम्बन्ध में परिवासादि पाँच प्रकार के विशोधक व्रतानुष्ठान का अन्याय रूप में विधान किया गया है उसी को (१) सर्वकालक-पुद्गल संज्ञा से निर्देश किया गया है। अगर पाँच प्रकार विशोधक व्रतानुष्ठान के मध्य से यथाक्रम में एक वा उससे अधिक विशोधक व्रत का यथा विहित रूप में विधान किया गया हो एवं अन्य सभी अविहित रूप में विधान किये गये हों तब इस स्थिति में अपराधी भिक्षु अशुद्ध ही रह जायगा एवं उसी अवस्था में उस भिक्षु का यथा क्रम में नाम होगा। (२) यद्भूयसकालक-पुद्गल (३) उपार्धिकालक-पुद्गल (४) एकदेशकालक-पुद्गल एवं (५) प्रदेशकालक-पुद्गल। अगर पूर्वोक्त परिवास से लेकर आवर्हण पर्यन्त पाँच प्रकार का विशोधक व्रत यथाविहित रूप में अपराधी भिक्षु के ऊपर प्रयुक्त होता है तब तो उस स्थिति

में उस भिक्षु को (६) अपगतकालक-पुद्गल नाम से कहा जाता है एवं उस स्थिति में उस भिक्षु को अपने पूर्व अधिकार में पुनः संस्थापित किया जाता है।

इसके अलावा पुदगलवस्तु में और एक प्रसंग की अवतारणा की गई है— अगर दो भिक्षुओं ने पाप कर्मों का अनुष्ठान किया है—और एक भिक्षु ने अपने पापानुष्ठान की बात प्रकाशित कर दी है एवं दूसरे भिक्षु ने अपने पाप को प्रतिच्छन्न रखा है—इस स्थिति में प्रथम भिक्षु के प्रति पूर्वोक्त व्रतानुष्ठान का विधान किया गया है एवं द्वितीय भिक्षु को उसका पाप प्रकाश करने के लिए उसे बाध्य किया जायगा तथा उसके बाद द्वितीय भिक्षु के ऊपर परिशोधक परिवासादिका विधान किया जायगा।

इसके बाद पुद्गलवस्तु में और भी एक विषय का प्रतिपादन किया गया है—भिक्षु के ऊपर दण्ड विधान का जो नियम है उसका यथायथ पालन नहीं करके अगर भिक्षु के ऊपर दण्ड विधान किया गया हो तब उस स्थिति में उसका प्रतिविधान व्यवस्थान का भी निर्देश प्रदान किया गया है।

अन्त में पुद्गलवस्तु में कहा गया है यदि विभिन्न पाप कर्मों का अनुष्ठान करके भिक्षु पाप समूह को भिन्नभिन्न काल पर्यन्त प्रतिछन्न रखें तब इन अपराधों में जो गुरुतर अपराध है उसी अपराध के अनुसार परिवासादि का विधान किया जायगा एवं दण्डभोग काल के सम्बन्ध में भी पूर्वोक्त अपराध समूह में जो दण्डभोग काल दीर्घ है उसी का विधान किया जायगा।

पारिवासिकवस्तु

पारिवासिकवस्तु में किस पद्धति से परिवास का विधान किया जायगा इसी का विवरण प्रदान किया गया है। इस अध्याय में भगवान् बुद्ध ने जो भिक्षु परिवास मूलपरिवास प्रभृति दण्ड भोग कर रहे हैं उनसबों को कौनकौन नियम

पालन करना पड़ेगा इसका उल्लेख किया है। जिस समय भगवान् बुद्ध जेतवन में अवस्थान करते थे उस समय जिन भिक्षुओं के ऊपर परिवासादि का विधान किया गया था, उन्होंने मन में सोचा कि स्वाधिकार में अवस्थित भिक्षु समूहों से अभिवादन, वन्दन प्रत्युत्थानादि ग्रहण करना उनसबों के लिए उचित नहीं होगा एवं ब्राह्मण गृहपति समूहों से परिवासादि काल तक अग्रासन, अग्रोदक प्रभृति ग्रहण करना भी उचित नहीं होगा। इसका परिणाम यही हुआ कि उन लोगों के संघ परित्याग करके चले जाने के कारण भिक्षु संघ क्रमशः क्षीण होने लगा। भगवान् बुद्ध ने यह देख कर निर्देश दिया कि अपराधी भिक्षु समूह संघ में अवस्थान करके परिवासादि नियम का पालन करेगा। इसके बाद भगवान् बुद्ध अपराधी भिक्षु समूहों के ऊपर परिवास, मूलपरिवास प्रभृति का विधान करने के लिए निर्देश दिया। साथ ही साथ परिवासादि की प्रयोग-पद्धति का भी निर्देश दिया। इसके बाद भगवान् बुद्ध ने पारिवासिक एवं मानाप्य-चारिक भिक्षुओं के लिए जो नियम पालन करना पड़ेगा उसका निर्देश प्रदान किया। पारिवासिक एवं मानाप्य-चारिक भिक्षुक प्रकृतिस्थ-भिक्षु से अभिवादन-वन्दन-प्रत्युत्थान प्रभृति ग्रहण नहीं करेंगे; वे सब प्रकृतिस्थ भिक्षु की अपेक्षा नीचतर आसन में उपवेशन करेंगे; वे सब ब्राह्मणकुल के समीप में उपस्थित नहीं होंगे; वे सब संघ-संपर्कित किसी कार्य का अनुष्ठान नहीं करेंगे। वे विहार परिष्कार, परिमार्जन प्रभृति कार्य का अनुष्ठान करेंगे; वे शास्ता का गुण संकीर्तन कर सकते हैं; वे निदाघकाल में भिक्षु समूहों को व्यजन करेंगे; भिक्षु संघ की सेवा समाप्त होने के बाद वे भोजन करेंगे; वे स्तूपसमूहों का मार्जनादि करेंगे; वे भिक्षुगण को दिवस—दशमी प्रभृति विज्ञापित करेंगे; वे आगन्तुक भिक्षुगण को भी सर्वसंघ की उपस्थिति में विज्ञापित करेंगे कि वे परिवास आचरण कर रहे हैं; वे भिक्षु रहित विहार में वास नहीं करेंगे; वे विकाल में भिक्षुगण का पादधौत कर देंगे; एवं उनसबों के आराम की व्यवस्था करेंगे; अपरापर भिक्षुगण दान का अंशग्रहण करने के बाद पारिवासिक एवं मानप्य-चारिक भिक्षु सर्वशेष में अपना अंश ग्रहण करेंगे; परिशुद्ध भिक्षूक मिलितरूप में अपराधी भिक्षु के उद्देश में परिवास

का विधान कर सकते हैं ; जिस स्थल में चार परिशुद्ध भिक्षु वास करते हैं उसी स्थल में परिवास आचरण करना पड़ेगा। कलह कारक भिक्षुगण की आगमन सम्भावना में पारिवासिक भिक्षुक प्रकृतिस्थ भिक्षु के निकट में सामयिकरूप से परिवास परित्याग करके पुनः अवशिष्टकाल के लिये परिवास आचरण कर सकते हैं।

पोषधस्थापनवस्तु

आलोच्य अध्याय संघस्थविर के साथ उपधिवारिक के वाक्-कलह के द्वारा प्रारब्ध हुआ है। कलह का विषय है—प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश का पाठ। क्योंकि संघ-स्थविर अपने दिव्य-चक्षु, दिव्य ज्ञान के द्वारा अवगत हुआ है कि भिक्षु पर्षद् एवं उपधिवारिक परिशुद्ध नहीं है। इन बातों से अवगत होकर भगवान् बुद्ध ने नियम कर दिया है कि दिव्य-चक्षु अथवा दिव्य-श्रोत्र के द्वारा अवगत होकर किसी भिक्षु के विरोध में कोई अभियोग नहीं करना चाहिये। इसके बाद धार्मिक एवं अधार्मिक पोषधस्थापन का विस्तृत विवरण प्रदान किया गया है। पाराजिक एवं अन्यान्य प्रकार के पापों का किस पद्धति को अवलम्बन करके निर्णय किया जायगा इसका भी निर्देश प्रदान किया गया है। पाँच प्रकार के भिक्षुसंघ का उल्लेख कर वर्तमान अध्याय का उपसंहार किया गया है। वे पञ्चविध भिक्षुसंघ इस प्रकार हैं :—[१] अलज्जिसंघ, [२] एडमूकसंघ, [३] गणसंघ, [४] संवृतिसंघ, [५] परमार्थसंघ, इन सबों का विवरण भी प्रदान किया गया है।

शयनासनवस्तु

भगवान् बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में अनाथपिण्डद के आराम में अवस्थान करते थे। उस समय भिक्षुगण परस्पर कथोपकथन में प्रवृत्त हुए थे। उस कथोपकथन का विषय यही था कि किसको भिक्षुगण के लिए सत्कार, पूजा एवं सम्मान प्रदर्शन करना उचित है। भिक्षुगण में कौन अग्रासन, अग्रोदक एवं अग्रपिण्डपात लाभ करने के योग्य हैं। इसमें किसीने शाक्यवंश समुद्भूत प्रव्राजित भिक्षु; किसी ने ब्राह्मण प्रव्राजित भिक्षु; किसीने क्षत्रिय प्रव्राजित भिक्षु—

इस प्रकार भिन्न-भिन्न मतों का प्रकाश किया। इससे भगवान् के भिक्षुगण ने भगवान् के पास जाकर पूर्वोक्त आलोच्य विषय में उनसे निर्देश देने की प्रार्थना की। भगवान् ने कहा कि वृद्धतर भिक्षु भी पूर्वोक्त सत्काराादि के योग्य हैं। उपसंपन्नों के मध्य में पूर्वोपसम्पन्न ही वन्दना के योग्य रूप में परिगणित किए जायेंगे।

इस प्रसंग में भगवान् ने एक आख्यान की अवतारणा की। पूर्वकाल में काशीजनपद के एक अरण्य में कपिञ्जल, शश, मर्कट एवं हस्ती ये चार प्राणी वास करते थे। वे यथावृद्ध परस्पर सत्कार प्रदर्शन करने लगे। वे प्राणातिपात, अदत्तादान, काममिथ्याचार, मृषावाद, सुरामैरेय मद्यपान इन सबों के प्रति विरति-रूप पाँच प्रकार के व्रतपद में प्रतिष्ठित हो गये। इस प्रकार से उन लोगोंने क्रमशः काशी जनपद में समस्त तिर्यक् योनिगत प्राणिसमूह को पाँच प्रकार के व्रतपद में प्रतिष्ठापित किया। इसके प्रभाव से पर्जन्यदेव कालवर्षी हो गये एवं वसुमती शस्य शालिनी हुई। यह किसका प्रभाव है, इसको जानने के लिए राजा ने एक पञ्चाभिज्ञ ऋषि से प्रश्न पूर्वक जिज्ञासा की। ऋषि ने कहा कि पाँच प्रकार व्रत-पद में प्रतिष्ठित पूर्वोक्त चार प्राणियों के प्रभाव से ही ऐसा हुआ है। यह सुन-कर राजा ब्रह्मदत्त एवं समग्रजनसाधारण ने पाँच प्रकार के व्रतपद का अनुष्ठान करना प्रारम्भ किया। अन्त में भगवान् बुद्ध ने स्पष्ट कहा कि वे स्वयं ही पूर्वोक्त कपिञ्जल थे। इस प्रकार से भगवान् ने यथावृद्ध सत्कारादि प्रदर्शन करने के लिए भिक्षुगण को उपदेश दिया। भगवान् बुद्ध ने यह भी कहा है कि भिक्षुगण आसमुदाचारिक[१] एवं शैक्षधर्म[२] आचरण विषय में पूर्णता लाभ करके एवं शील, समाधि–प्रज्ञा, विमुक्ति एवं विमुक्ति-ज्ञान-दर्शन स्कन्ध परिपूर्णरूप में लाभ कर परिनिर्वाण लाभ करेगा। अनन्तर भगवान् ने कल्याणभद्र नामक गृहपति को किस प्रकार से भिक्षु एवं भिक्षुणीगण के लिए विहार निर्माण करना पड़ेगा—इस सम्बन्ध में उपदेश प्रदान किया।

---

१ Edgerton, BHS, 111

२ Edgerton, BHS, 532

उस समय में श्रावस्ती में दत्त नामक एक आढ्य गृहपति वास करते थे। उनके पुत्र का नाम सुदत्त था। सुदत्त अपनी शैशव अवस्था में ही अपने शरीर का अलंकार समूह प्रार्थियों को दान कर देते थे। एक दिन सुदत्त अपने पिता के साथ नदी-स्नान करने के लिए गये एवं नदी के अभ्यन्तर से सुवर्ण-पूर्ण चार लोहसंघाट उठाकर लाये। इससे गृहपति दत्त विस्मित हो गये एवं पुत्रको अपनी इच्छानुसार प्राथियों को दान करने के लिए कहा।

कालान्तर में दत्त की मृत्यु होने के बाद सुदत्त गृहस्वामी हो गये। वे अनाथ समूहको पिण्डदान करते थे। इस लिए उसका नाम अनाथपिण्डद हुआ। उसके सप्तम पुत्र का नाम सुजात था। सुदत्त के वयस्य मधुस्कन्ध नामक ब्राह्मण ने सुदत्त के विवाह के योग्य कन्या का अन्वेषण करते हुए राजगृह में एक आढ्य गृहपति के गृह में उपस्थित होकर विवाह सम्बन्ध स्थिर किया। परन्तु उस स्थान में मधुस्कन्ध विसूचिका रोग से ग्रस्त हो गये और उसको बाहर में निक्षेप किया गया। दैवात् शारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन ने उस स्थल में उपस्थित होकर मधुस्कन्ध को उसी अवस्था में धर्मोपदेश प्रदान किया। मृत्यु के बाद मधुस्कन्ध चातुर्महाराजिक नामक देवसंघ में उत्पन्न हुए एवं राजगृह के शिविकाद्वार में वास करने लगे। इधर सुदत्त ने भी राजगृह में गमन किया एवं वे जिस गृहपति के गृह में अवस्थान करते थे उस गृहपति को बुद्ध एवं बुद्धके भिक्षुसंघ के भोजन के हेतु आयोजन करते हुए देखा। इससे भगवान् बुद्ध का दर्शन करने के लिए अनाथपिण्डद अतिशय आग्रहान्वित हुए। रात्रिशेष में अनाथपिण्डद, भगवान् बुद्ध जिस श्मशान में अवस्थान करते थे, उसी तरफ गमन करने लगे। रास्ते में अनाथपिण्डद ने मृत वयस्य मधुस्कन्ध से प्रेरणा लाभ कर बुद्ध के निकट गमन किया एवं बुद्धका उपदेश सुनकर चार प्रकार के आर्यसत्य की उपलब्धि की। अनाथपिण्डद ने बुद्ध के द्वारा प्रवर्तित धर्म में शरण लाभ किया। इसके बाद अनाथपिण्डद शारिपुत्र की सहायता से श्रावस्ती के जेतवन में बुद्ध एवं बुद्धके भिक्षुसंघ के लिए विहार का निर्माण कराया।

प्रव्रज्यावस्तु

बोधिसत्त्वके जन्मकाल के समय में चार महानगरों में चार महाराज विद्यमान थे। राजगृह में महापद्म के पुत्र बिम्बिसार, श्रावस्ती में ब्रह्मदत्त के पुत्र प्रसेनजित्, उज्जयिनी में अनन्तनेमि के पुत्र प्रद्योत और कौशाम्बी में शतानीक के पुत्र उदयन। इन चार राजकुमारों ने विभिन्न विद्याओं में पारदर्शिता को लाभ किया। उस समय मगध के राजा महापद्म से अङ्गदेश के राजा कर ग्रहण करते थे। कुमार बिम्बिसार इसका विरोध करने लगे। फलस्वरूप अङ्गराज के साथ संघर्ष उत्पन्न हो गया। कौशल के द्वारा अङ्गराज का वध कर बिम्बिसार चम्पानगर पर अधिकार कर समग्र अङ्गदेश के राजा बन गये। महापद्म की मृत्यु के बाद बिम्बिसार अङ्ग एवं मगध उभय देश के राजा हो गये।

इसके बाद आख्यानान्तर की अवतारणा की गई है। उस समय दक्षिणापथ में एक वेद-वेदाङ्ग-पारङ्गत ब्राह्मण विद्यमान थे। जिसके पास पूर्व, पश्चिम, उत्तर प्रभृति देश से माणवकगण उपस्थित होकर अध्ययन करते थे। कालक्रम में वे शिष्य परिवृत होकर राजगृह में उपस्थित हुए। वे उस स्थान में नालन्दा ग्राम निवासी माठरशास्त्र के प्रणेता माठर नामक ब्राह्मण के साथ कथा विमर्श कर पराजित हो गये। माठर ब्राह्मण ने भी जयलाभ के फलस्वरूप वादि-भोगरूप में नालन्दा ग्रामका लाभ किया। माठर ब्राह्मण के पुत्र का नाम कोष्ठिल एवं उसकी विदुषी कन्या का नाम शारिका था। कुछ दिन बाद दक्षिणापथ से लोकायत मतमें निष्णात तिष्यनामक ब्राह्मण राजगृह में उपस्थित हुआ। उसने विचार में माठर ब्राह्मण को पराजित किया। इसके फलस्वरूप वह नालन्दा ग्रामका अर्द्धभाग वादिभोगरूप में लाभ कर शारिका के साथ विवाह बन्धन में आबद्ध हो गया। उसका जो पुत्र हुआ उसका दो नाम था—उपतिष्य एवं शारिपुत्र। उपतिष्य ने ऐन्द्रव्याकरण का अध्ययन किया एवं सभी विद्यास्थानों में पाण्डित्य अर्जन किया। इसके बाद काष्ठवाट ग्राम में मुद्गल नामक पुरोहित का आख्यान आरम्भ किया गया है। परन्तु इसका मूल पत्र विनष्ट होने के कारण असम्पूर्ण है। भगवान् ने

नियम निर्देश कर दिया है कि जिस भिक्षु ने अध्ययन नहीं किया है उसको धर्म के सम्बन्ध में उपदेश देने का अधिकार नहीं रहेगा।

श्रावस्ती में बुद्धरक्षित नामक आढ्य गृहपति वास करते थे। उसके पुत्र का नाम संघरक्षित था। संघरक्षित ने शारिपुत्र से प्रव्रज्या एवं उपसंपदा ग्रहण की तथा आगमचतुष्टय का भी यथाविहितरूप में ग्रहण किया। भगवान् बुद्ध की अनुज्ञा लाभ कर पांच सौ वणिकों के साथ संघरक्षित ने महासमुद्र के मध्यगत प्राणिसमूहों को धर्म का उपदेश प्रदान करने के लिए महासमुद्र में यात्रा की। महासमुद्र में नागगण ने उन सबों के यान को रोक दिया; महासमुद्र से संघरक्षित को प्रदान करने के लिये शब्द उत्थित हुआ। आर्य संघरक्षित अपनी इच्छा से महासमुद्र में पतित हो गये एवं नागगणने उनको नागभवन में प्रवेश करवाया; तथा नागभवन में आगम चतुष्टयकी प्रतिष्ठा करने के लिए अनुरोध किया। संघरक्षित ने तीन नाग कुमारों को आगमका अध्ययन करवाया। इसके बाद नागगण संघरक्षित को पुनः समुद्रयान में संस्थापित कर दिया। संघरक्षित वणिक्गण के साथ मिले। समुद्र तीर पर गमन कर वणिक्गण एवं संघरक्षित सो गये। परन्तु वणिक्गण ने रात्रि अवशेष रहते हुए ही पूर्वोक्त स्थान से यात्रा की। वे निद्रित संघरक्षित को साथ में लेना भूल गये।

संघरक्षित सूर्यकिरण के द्वारा अभिहत होकर जागा। उसने उस स्थान से यात्रा प्रारम्भ की एवं आगे एक सालाटवी में यह देखा कि काश्यप के जो श्रावकगण हैं वे भक्ताग्र के लाभ के लिए संघ के मध्य में परस्पर कलह कर किस नारकीय यंत्रणा का भोग कर रहे हैं। इस प्रकार गमन करते-करते संघरक्षित ने देखा कि काश्यप के श्रमण गण ने श्रद्धा-देय-दान[1] के द्वारा लब्ध अन्न आगन्तुक भिक्षुगण को न देकर उसका विनाश किया एवं उसके फलस्वरूप वे किस जातीय नरक यन्त्रणा

---

१ Edgerton, BHS, 534.

का भोग कर रहें हैं। इसके बाद पुनः संवरक्षित ने देखा कि काश्यप के श्रमरागरा शैक्ष एव अशैक्ष भिक्षु समूहों को अग्नि द्वारा दग्ध करने के कारण किस जातीय नरक यंत्रणा का भोग कर रहे हैं।

क्रमशः संघरक्षित एक आश्रम में उपस्थित हो गये जहां पाँच सौ ऋषि अवस्थान करते थे। उस स्थल में संघरक्षित ने एक शून्य कुटी में वासस्थान लाभ किया एवं वे प्रातःकाल में ब्राह्मणगण के समक्ष में ब्राह्मणवर्ग एवं नगरोपमसूत्र का पाठ करने लगे। ब्राह्मण गण ने संघरक्षित से उपदेश लाभ किया एवं उसके फलस्वरूप संघरक्षित के निकट भगवान् बुद्ध से प्रव्रज्या ग्रहण करने का अभिप्राय प्रकाशित किया। संघरक्षित के निर्देश के अनुसार वे सब संघरक्षित के चीवर के प्रान्तदेश में लग्न होकर रहे। संघरक्षित ने विततपक्ष हंसराज के समान उनसबों को लेकर शून्य पथ में गमन किया और जहाँ पूर्वोक्त पाँच सौ वणिक् अवस्थान करते थे वहाँ अवतरण किया। उन सबों को भी साथ में लेकर संघरक्षित बुद्ध के समीप उपस्थित हो गये। भगवान् बुद्ध ने "एहि भिक्षु" उच्चारण करके उन सबों को उपसंपन्न किया एवं प्रव्रज्या ग्रहण करवाया। भगवान् से उपदेश पाने के फलस्वरूप वे सब अर्हत्व लाभ करने में समर्थ हो गये।

संघरक्षित ने जो विभिन्न आकार के प्राणिवर्ग को नरकयन्त्रणा का भोग करते हुए देखा— वे सब किन किन पाप कर्मों के अनुष्ठान के फलस्वरूप उस प्रकार नरक यन्त्रणा भोग कर रहे हैं—इस विषय में भगवान् से जानने के लिए इच्छा प्रकट की। प्रत्युत्तर में भगवान् ने कहा कि वे सब सम्यक्संबुद्ध काश्यप के श्रावक थे। तदनन्तर वे सब जिन—जिन पाप कर्मों का अनुष्ठान करने के कारण नरक में नाना प्रकार विपाक भोग कर रहे हैं—उसका उन्होंने वर्णन किया। तत्पश्चात् भगवान् ने मृत्यु काल में संघरक्षित जिस प्रणिधान के फलस्वरूप भगवान् के शासन में प्रव्रज्या ग्रहण पूर्वक अर्हत्व लाभ किया — उसका उल्लेख किया।

इसके बाद भगवान् बुद्ध ने भिक्षु समूह के प्रश्न के उत्तर में अचिरजातक नाग-कुमार पक्षिराज सुवर्णी के द्वारा अपहृत होने के समय कैसे प्रणिधान के द्वारा काश्यप के शासन में प्रव्रज्या लाभ करने में समर्थ हुये एवं तदनन्तर नाग-भवन में आकर अपने पितामाता के निकट दिव्य-सुधा भोजन कर सके—इत्यादि विषयों का वर्णन किया।

इसके बाद कतिपय आख्यान वर्णित किया गया है। उसमें कहा गया है कि तीर्थिकावक्रान्तक-भिक्षु भोजन के लोभ में अगर भिक्षुसंघ में प्रवेश करें तो वे सब नाश के योग्य हैं—यही भगवान् का निर्देश है। बुद्धप्रवर्त्तित धर्म में उन सबों को शरण देना निषिद्ध है।

श्रावस्ती में एक गृहपति का पुत्र एक कन्या के प्रति अवैधरूप में आसक्त था। रात्रिकाल में उसकी माता ने उस कन्या के उद्देश में गमन करने के समय में पुत्र को बाधा दी। इसके कारण उसने अपनी माता को बध करके उस कन्या के पास गमन किया किन्तु बाद में कन्या के द्वारा कठोर रूप में प्रत्याख्यात होकर लाञ्छित होने के भय से उस स्थान से पलायन किया। इसके बाद भिक्षुसंघ के निकट गमन कर प्रव्रज्या ग्रहण किया। भगवान् ने यह सुन कर कहा कि उसका धर्म-विनय में कोई स्थान नहीं है। तदनन्तर वे अन्यत्र जाकर एक विहार में अवस्थान करने लगे एवं बहुत व्यक्तियों ने उससे उपदेश लाभ करके अर्हत्व लाभ किया। मृत्यु के बाद वे अवीचि नामक महानरक में उत्पन्न हो गये। इसके बाद उसके कुशलचित्त के प्रभाव से एवं संघ में जेन्ताक-स्नान करने के फलस्वरूप चातुर्महाराजिक देव समूह में उत्पन्न हो गये और पश्चात् भगवान् के निकट उपस्थित हो गये। अनन्तर नरकपूर्वी देवपुत्र भगवान् का उपदेश लाभ कर श्रोतापत्तिफल का साक्षात्कार करने में समर्थ हो गये। इसके बाद नरकपूर्वी देवपुत्र ने अपने देव-भवन में गमन किया। इस प्रकार नियम किया गया था कि मातृघातक एवं पितृघातक को भिक्षुसंघ में प्रवेश करने का अधिकार नहीं है।

भगवान् श्रावस्ती के जेतवन में अनाथपिण्डद के आराम में अवस्थान करते थे। भगवान् ने जब राजा बिम्बिसार को सत्य में प्रतिष्ठापित किया तब मगधराज बिम्बिसार ने अपने राज्य में घोषणा कर दी कि उनके राज्य में चौर्य-कर्म निषिद्ध है। इस प्रकार कोशलराज राजा प्रसेनजित् ने भी घोषणा की कि

चौर्य कर्म के लिए वधरूप दण्ड होगा। इससे पूर्वोक्त उभय देश के चोरगण सीमान्त में जाकर अवस्थान करने लगे। दूसरे समय में मगध से कोई सार्थवाह कोशल देश के अभिमुख गमन कर रहा था। उस समय तस्करगण उसके अभिमुख दौड़े। उन सार्थों के साथ जो अर्हत्गण थे वे भी तस्करगण के द्वारा मार दिये गये। जिन वणिकों ने भाग कर रक्षा प्राप्त की उन्होंने कोशलराज प्रसेनजित् के निकट जाकर समस्त घटनाओं का वर्णन किया। राजा प्रसेनजित् के निर्देशानुसार वे चोरगण पकड़े गये एवं उन सबों के ऊपर राजा प्रसेनजित् ने वध रूप दण्ड का विधान किया। इस के मध्य में एक चोर ने भाग कर जेतवन में भिक्षु के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण किया। दूसरे समय में भिक्षुगण के साथ वह चोर जब श्मशान में भ्रमण करता था तब उसने देखा कि उसके आत्मीय चोरगण का वध किया गया है। यह देख कर वह मुक्त कण्ठ से रोदन करना प्रारम्भ किया। भिक्षुगण के द्वारा जिज्ञासित होकर उन्होंने स्वीकार किया कि उस अर्हत् ने भी वध किया है। यह सुनकर भगवान् ने नियम कर दिया कि जो अर्हत् घातक है उसको प्रव्रज्या प्रदान करना निषिद्ध है।

इस प्रकार भगवान् ने नियम किया कि जो संघ भेदक है उस को भी प्रव्रज्या प्रदान नही किया जायेगा। इस प्रकार भगवान् ने नियम कर दिया कि जो तथागत का रुधिर उत्पादन करेगा उसको भी प्रव्रज्या प्रदान नही किया जायेगा। ये जो पूर्वोक्त चार प्रकार के पाराजिक पाप हैं—उनके मध्य में जिस ने एक पाराजिक पाप का अनुष्ठान किया है उसको भी प्रव्रज्या प्रदान नहीं किया जायेगा। भगवान् ने और भी नियम कर दिया—भिक्षु को उसका पाप दिखा देने पर भी उसने उस पाप को स्वीकार नही किया एवं इसके लिए उस के विरोध में उत्क्षेपणीय कर्म का विधान किया गया और इसके फलस्वरूप वह भिक्षु संघका त्याग करके चला गया—वह भिक्षु अगर पुनः आकर बोलना आरम्भ करे कि मुझे प्रव्रज्या दान कीजिये मैं अपना पाप स्वीकार करूँगा—तो भिक्षु को प्रव्रज्या प्रदान किया जायेगा।

प्रव्रज्या ग्रहण के बाद अगर वह बोले कि मुझे उपसंपदा प्रदान किया जाय, मैं अपना जो पाप है उस को प्रकाश करूँगा—इस स्थिति में उस भिक्षु को उपसंपदा प्रदान किया जायेगा। अगर उपसंपन्न होने के बाद पूर्वोक्त भिक्षु अपना पाप स्वीकार नहीं करे तब उस स्थिति में लक्ष्य करना पड़ेगा कि क्या वह भिक्षु संघ की सामग्री के द्वारा सुखानुभव करता है या नही ? अगर करे तब तो उस भिक्षु के विरोध में पुनः उत्क्षेपणीय कर्म का विधान किया जायगा। अगर नहीं करे — तब तो उस भिक्षु को जो उपसंपदा प्रदान की गई है—सुष्टु उपसंपदा प्रदान की गयी है–इस रूप में परिगणना करना पड़ेगा। इस प्रकार अन्यत्र भी उत्क्षेपणीय कर्म के विधान के सम्बन्ध में नियम समझना चाहिये। इस के बाद जिन अंग विकल व्यक्ति समूहों को प्रव्रज्या प्रदान के विषय में प्रत्याख्यान करना पड़ेगा उन सबों का उल्लेख किया गया है। उपनन्द ने हस्तच्छिन्न पुरुष को प्रव्रज्या प्रदान किया था। यह सुन कर भगवान् ने नियम कर दिया कि हस्तच्छिन्न व्यक्ति को प्रव्रज्या प्रदान निषिद्ध है। इस प्रकार अंग विकल एवं चर्मरोग द्वारा आक्रान्त व्यक्ति समूहों को प्रव्रज्यादान निषिद्ध है।

पोषधवस्तु

भगवान् राजगृह के कलन्दक निवाप में अवस्थान करते थे। उस समय राजगृह के उपासक समूह अतिप्रत्यूष काल में भगवान् के निकट आकर उनका पर्युपासन करने के लिए उद्युक्त हो गये थे। परन्तु बाद में अतिशय प्रत्यूष काल में जाना समीचीन नहीं होगा—यह सोचकर वे सब अन्य तीर्थिक—परिव्राजक गण के आराम में उपस्थित हो गये। कथा प्रसंग में उस स्थान में वे लोग जान गये कि शाक्यपुत्रीय श्रमण गण के लिए निषद्या, क्रिया, एवं पोषध की किसी प्रकार व्यवस्था नहीं है। वे लोग भगवान् बुद्ध के निकट आकर पूर्वोक्त तीनों का अनुष्ठान जैसे वे लोग कर सकें इसके लिए भगवान् से उनकी सम्मति के लिए प्रार्थना की। भगवान् ने भी अपनी सम्मति प्रदान की।

भिक्षुगणों के अभिप्राय के अनुसार भगवान् ने कहा कि जो निषद्या है वह योग है। योग के द्वारा यही समझना चाहिए कि मनुष्य शरीर के केश से लेकर मूत्र तक जो चौंतीस मतान्तर में वत्तिस अंश हैं उसकी अशुचित्व भावना करना। भगवान् ने प्रहाण-शाला[१] का परिमाप निर्देश कर दिया जहाँ भिक्षुगण योगाभ्यास कर सकते हैं। उस स्थल में जिस प्रकार आसन सज्जित करना पड़ेगा भगवान् ने उसका भी निर्देश दे दिया। प्रहाण-प्रतिजाग्रक[२] भिक्षु के लिए अपेक्षित गुण एवं उसके कर्त्तव्य के सम्बन्ध में भगवान् ने उपदेश प्रदान किया। इस प्रकार क्रिया के सम्बन्ध में भी भगवान् ने निर्देश प्रदान किया।

पोषध के सम्बन्ध में भगवान् ने भिक्षुगण को निर्देश दिया कि वे मास की पञ्चदशी वा चतुर्दशी में भिक्षु संघ मिलित हो जायेंगे एवं संघस्थविर प्रातिमोक्ष-सूत्रोद्देश पाठ करेंगे। इसके वाद पोषध व्रत अनुष्ठान करने के लिए उपयुक्त स्थान[३] एवं उस स्थान की सीमा निर्देश पद्धति का विस्तृत विवरण प्रदान किया गया है। संघ पोषध अनुष्ठान करने के लिए वास्तु एवं उसकी सीमा स्थिर करेंगे एवं उस स्थल में भिक्षुगण पोषध, प्रवारणा प्रभृति का अनुष्ठान करेंगे।

उस समय में ब्राह्मण कप्फिण राजगृह में सेनिकगुहा में एकाकी निरत थे। उस समय उनके मन में इस प्रकार वितर्क उत्पन्न हुआ कि आज संघ की पोषध-पञ्चदशिका एवं हमारी भी पोषध-पञ्चदशिका है। मैं संघ का पोषधानुष्ठान करने के लिए वास्तु में गमन करूँगा या नहीं? भगवान् अपने चित्त के द्वारा कप्फिण के वितर्क की बात से अवगत होकर सेनिकगुहा में आविर्भूत हो गये एवं उन्होंने कप्फिण को संघ के पोषध में योगदान करने के लिए कहा तथा स्वयं कप्फिण को साथ ले लिया। भगवान् के निर्देशानुसार भिक्षु-संघ की सम्मति के क्रम में एकपोषधावास की महती सीमाबन्धन की

---

१ Edgerton, BHS, 390

२ Edgerton, BHS, 363

३ Edgerton, BHS, 355

गई एवं निर्देश प्रदान किया गया कि भिक्षगण उस स्थान में उपवेशन करके पोषधादि का अनुष्ठान करेंगे ; प्रसंग क्रम में भगवान् के उपदेशानुसार समग्र संघ की सम्मतिक्रम में इस प्रकार नियम किया गया है कि एकपोषधावास की जो सीमा निर्धारण की गई है उसके अभ्यन्तर में त्रिचीवर होकर अवस्थान करना पड़ेगा। इसके बाद भगवान् के निर्देशानुसार संघ का सर्व-सम्मति-क्रम में मण्डल की सीमा का निर्देश किया गया।

उपाली ने भगवान् के निकट प्रश्न किया कि पोषध कर्म कितने प्रकार के हैं? भगवान् ने उत्तर दिया कि—चार प्रकार : [१] भिक्षुगण पृथक् पृथक् रूप में अधर्म रूप में—अवैधानिक रूप में अनुष्ठान करते हैं; [२] भिक्षुगण समग्र· में अधर्म रूप में अनुष्ठान करते हैं; [३] भिक्षुगण पृथक् पृथक् रूप में धर्म के अनुसार अनुष्ठान करते हैं; [४] भिक्षुगण समग्ररूप में अनुष्ठान करते हैं। इसके मध्य में चतुर्थ प्रकार पोषध कर्म के अनुष्ठान को धर्मानुसार समझना चाहिए।

उपाली ने भगवान् बुद्ध से प्रश्न पूर्वक जिज्ञासा की—प्रातिमोक्षसूत्र के पाठ कितने प्रकार के हैं? भगवान् ने उत्तर में बताया कि पांच प्रकार—[१] संघ के समक्ष में प्रस्ताव करके निदान[1] पाठ करके अवशिष्ट श्रुत हो गया है—पाठ किया गया है इस प्रकार सुना देना; [२] पूर्ववत्, निदान एवं चार प्रकार पाराजिक का नियम पाठ करके अवशिष्ट श्रुत हो गया है—इस प्रकार सुना देना; [३] पूर्ववत्, निदान, चार प्रकार पाराजिक धर्म एवं त्रयोदश प्रकार संघावशेष धर्म पाठ करके—अवशिष्ट पूर्ववत्; [४] पूर्ववत्, निदान, चार प्रकार पाराजिक धर्म, त्रयोदश प्रकार संघावशेष धर्म, दो अनियत धर्म पाठ कर अवशिष्ट पूर्ववत्; [५] विस्तृत रूप में—सम्पूर्णरूप में प्रातिमोक्षसूत्र का पाठ।

अगर किसी आवास में ऐसा भिक्षु नहीं रहे जिसको समग्र प्रातिमोक्ष-सूत्र पाठ करने का सामर्थ्य है, तब तो आवासान्तर से समग्र प्रातिमोक्षसूत्र पाठ करने में समर्थ भिक्षु को संग्रह करना पड़ेगा। अगर यह

---

१ table of contents, introduction–Edgerton, BHS, 296

सम्भव नहीं हो तब तो उसी आवास में अन्य पोषध का अनुष्ठान नहीं किया जायेगा।

भगवान् ने विशेषरूप में निर्देश दिया कि जो भिक्षु सूत्र, विनय एवं मातृका —इन त्रिपिटकों में पारंगत हैं उनके प्रति विशेष सम्मान प्रदर्शन करना पड़ेगा।

साधारण नियम यही है कि पोषध अनुष्ठान में निर्दिष्ट आवास के समस्त भिक्षगण को उपस्थित होना पड़ेगा। अगर किसी आवास का भिक्षु व्याधिग्रस्त हो जाय एवं पोषध अनुष्ठान में उपस्थित होने में समर्थ न हो तब उसके प्रतिनिधिके-रूप में एक भिक्षु उसकी व्याधि एवं परिशुद्धि के विषय में संघ के समक्ष विज्ञापित करेगा। उसकी परिशुद्धि का विषय किस रूप से विज्ञापित किया जायेगा इसकी पद्धति निर्दिष्ट की गई है। वह परिशुद्धि के दायक भिक्षु के कर्त्तव्य के सम्बन्ध में विस्तृत रूप में निर्देश दिया गया है। विशेष क्षेत्र में सर्व संघ उस व्याधिसम्पन्न भिक्षु के निकट उसकी परिशुद्धि को अवधारण करने के लिए गमन करेगा। इस रूप में परिशुद्धि के ग्राहक भिक्षु के कर्त्तव्य के सम्बन्ध में भी निर्देश प्रदान किया गया है। इस प्रसंग में विशेष रूप से उल्लेखयोग्य यह है कि भिक्षु संघ के ऊपर समस्त अधिकारों को अर्पण किया गया था। इसलिए सभी विषय में संघ की सर्वसम्मति के ऊपर विशेष गुरुत्व प्रदान किया गया है। भिक्षुसंघ के समस्त क्रिया-कलाप में गणतान्त्रिकता का मोहर स्पष्टरूप में अंकित है। पूर्वोक्त परिस्थिति में सर्वसंघ की सम्मति नहीं ग्रहण करके पोषध अनुष्ठान करने से पाप हो जायेगा।

इस प्रसंग में अगर परिगणना द्वारा पोषध अनुष्ठान के दिवस सम्बन्ध में नैवासिक एवं आगन्तुक भिक्षुगणों के मध्य में मतभेद उत्पन्न हो जाय तब उस स्थल में संख्याधिक्य के मतानुसार पोषध दिवस का निर्णय करना पड़ेगा।

अगर नैवासिक भिक्षुगण पोषध कर्म का अनुष्ठान के लिए मिलित होने के बाद देखें कि आगन्तुक भिक्षुगण उपस्थित हुए हैं—इस परिस्थिति में नैवासिक भिक्षुगण अगर उन सबों की उपेक्षा कर पोषध का अनुष्ठान करें तब वे सब पाप

युक्त हो जायेंगे। इस प्रकार आगन्तुक भिक्षुगण अगर परवर्तिकाल में आगत नैवासिक भिक्षुगण के प्रति अवज्ञा प्रकाश कर पोषध का अनुष्ठान करें तब वे भी पाप युक्त हो जायेंगे। इस प्रसंग में नाना प्रकार के विकल्पों का प्रदर्शन कर नैवासिक भिक्षुगण के अत्यय (पाप) का निर्देश किया गया है।

प्रवारणावस्तु

प्रवारणा व्रत का वर्षा ऋतु के अवसान में भिक्षुगण अनुष्ठान करते हैं। इसका चतुर्दशी वा पञ्चदशी में (कार्तिकमास में) अनुष्ठान किया जाता है। इसके अनुष्ठान के द्वारा वर्षावास के समय यदि भिक्षु ने पाप कर्म का अनुष्ठान किया होगा तब वह उसकी परिमार्जना पूर्वक विशुद्धि लाभ करता है। उपलब्ध प्रवारणावस्तु के प्रारम्भ में प्रवारणा व्रत के अनुष्ठान के विघ्न समूहों का उल्लेख किया गया है। यद्यपि प्रवारणा त्रिवाचिका होती है तथापि जिस स्थल में जीवित का अन्तराय अथवा ब्रह्मचर्य का अन्तराय उपस्थित होगा उस स्थल में एक वाचिका प्रवारणा व्रत के अनुष्ठान का विधान किया गया है। जिस स्थल में त्रिवाचिका प्रवारणा सम्भव नहीं है उस स्थल में द्विवाचिका प्रवारणा का विधान किया गया है। इस प्रकार विशेष शंका जनक परिस्थिति में गण-प्रवारणा का विधान किया गया है। यदि प्रवारणा-पञ्चदशी में कोई भिक्षु राजा, चोर, धूर्त, प्रभृति के द्वारा गृहीत होता है तब उसकी मुक्ति के लिए भिक्षुसमूह विशेष रुप से चेष्टा करेंगे— जिससे उसके साथ प्रवारणा व्रत का अनुष्ठान किया जा सके। प्रवारणा के पूर्व में वर्षावास के समय जिस भिक्षु ने पाप कर्म का अनुष्ठान किया है उसे पाप कर्म को स्वीकार करना पड़ेगा एवं उसके पाप कर्म वे गुरूत्व के अनुसार उस के ऊपर विहित दण्ड प्रदान किया जायेगा एवं इसके बाद पूर्वोक्त भिक्षु को प्रवारणा व्रत का अनुष्ठान करने दिया जायेगा। वर्षावास के समय भिक्षु ने जिन पाप कर्मों का अनुष्ठान किया है उनको प्रकाश करके कहना पड़ेगा एवं दण्ड प्रदान की पद्धति भी विस्तृत रुप में निर्दिष्ट की गई है। आगन्तुक भिक्षुगण के साथ मिलित रुप में प्रवारणा व्रत का अनुष्ठान करने के लिए निर्देश प्रदान किया गया है। परिशेष में व्याधि के द्वारा ग्रस्त भिक्षु के लिए प्रवारणा में योगदान के विषय में नियम निर्देश किया गया है।

पोषध अनुष्ठान में व्याधिग्रस्त भिक्षु के सम्बन्ध में जो निर्देश दिया गया है यह उसी का अनुरूप है।

वर्षावस्तु

वर्षाकाल अतिवाहित करने के लिए भिक्षु किस पद्धति के अनुसार अपना आवास स्थिर करेगा इसका वर्षावस्तु में विस्तृत निर्देश प्रदान किया गया है। वर्षावास शिलाका अथवा शलाका ग्रहण पद्धति द्वारा स्थिर किया जाता है। साधारण रुप में जिस भिक्षु ने जिस आवास में रहना स्वीकार किया है उस को उसी आवास की जो सीमा है उसी के मध्य में रहना पड़ेगा परन्तु विशेष विशेष परिस्थिति में इस नियमको शिथिल किया गया है। इस प्रसंग में एक आख्यान की अवतारणा की गई है।

हस्तिपाल नामक ग्राम में गृहपति उदयन ने उस ग्राम में जो भिक्षु वर्षा-काल अतिवाहित करते थे उन सबों को प्रचुर खाद्य प्रदान किया था। परन्तु अपर स्थान के भिक्षुगण वर्षावास के नियम का पालन कर के चलने के कारण पूर्वोक्त सुख से वञ्चित हो गये थे। इससे अवगत होकर भगवान् ने वर्षावास सीमा के वहिर्भाग में सात दिनों के लिए भिक्षुगणों को अवस्थान करने के लिए अनुमति प्रदान की। परन्तु इसमें भगवान् ने इस प्रकार से नियम बन्धन कर दिया कि पूर्वोक्त सात दिनों के लिए वे ही भिक्षुगण वर्षावास से वहिःसीमा में अवस्थान कर सकेंगे—जिन को उपासक, उपासिका, भिक्षु, भिक्षुणी, शिक्षमाण, श्रामणेरक, श्रामणेरिका —इन सबों के प्रति कोई कर्त्तव्य करणीय रहेगा। इस प्रसंग में वर्षावास में अवस्थित भिक्षु के कर्त्तव्य का स्वरूप क्या है इस विषय का विस्तृत रुप से वर्णन किया गया है। आगन्तुक भिक्षुगण के सम्बन्ध में विशेष नियमों का निर्देश किया गया है। तीन मास परिव्यापन करके वर्षावास का विधान किया गया है।

वर्षावास में अवस्थान के फलस्वरूपभिक्षु के समक्ष अगर विशेष विशेष प्रतिकूल परिस्थिति उत्पन्न हो जाय जिनसे उसके जीवन, श्रामण्य एवं ब्रह्मचर्य में अन्तराय उत्पन्न हो तब वे अपना वर्षावास का परित्याग कर सकते हैं।

पूर्वोक्त परिस्थिति में भिक्षु को वर्षावास त्याग करने के कारण किसी प्रकार का पाप नहीं होगा। इस प्रकार संघभेद की संभावना रहने पर भिक्षु अपना वर्षावास परित्याग कर सकते हैं। इसी प्रकार अन्यान्य विशेष विशेष परिस्थिति की बातों का उल्लेख किया गया है जिस अवस्था में भिक्षु को वर्षावास त्याग करने से पाप नहीं होगा। इसी तरह किस किस अवस्था में वर्षावास त्याग करने से भिक्षु को पाप हो जायेगा इसका भी निर्देश किया गया है।

चर्मवस्तु

चर्मवस्तु का प्रतिपाद्य विषय है किस-किस विशेष अवस्था में भिक्षुगण आसन-पादुका प्रभृति के लिए चर्मव्यवहार कर सकेगा। इस प्रसंग में चर्मवस्तु में भिन्न-भिन्न कहानियों की अवतारणा की गई है—जिसको उपलक्ष्य कर नियमों का निर्देश किया गया है। इसके प्रथम अंश में श्रोण कोटीकर्ण की कहानी निबद्ध की गई है जिसके उपसंहार में भिक्षुगण के पादुका के लिए चर्म-व्यवहार की अनुमति प्रदान की गई है।

अश्मापरान्तक नामक जनपद के वासव ग्राम में बलसेन नामक आढ्य गृह-पतिवास करते थे। उनको एक पुत्र उत्पन्न हुआ—जिसका नामकरण किया गया श्रोण कोटीकर्ण। श्रोण ने अपने पिता को नित्य कृषिकर्म में उद्‌युक्त देख कर इसका कारण उनसे सुनकर पण्य-संभार लेकर महासमुद्र में वाणिज्य के लिए यात्रा की। पाँच सौ वणिक् एवं बलसेन के दो प्रेष्य-पुत्र दासक एवं पालक भी श्रोण कोटीकर्ण के साथ गमन किये। श्रोण अपना समुद्रयान रत्न के द्वारा पूर्ण कर जम्बुद्वीप में पुनः प्रत्यावर्तन किये एवं समुद्र तीर में अवस्थान करने लगे। परन्तु वणिक्‌गण, दासक एवं पालक विस्मृति के कारण निद्रित श्रोण कोटीकर्ण को परित्याग कर चले आये। श्रोण के पिता एवं माता रोदन करते करते अन्धे हो गये। श्रोण ने जाग कर देखा कि वणिक् गण वहाँ नहीं हैं। इसके बाद वह धीरे-धीरे गमन करता हुआ शालाटवी में प्रविष्ट हुआ। उस स्थान में श्रोण पानीय के अन्वेषण में एक प्रेतनगर में उपस्थित हो

गया। वहाँ प्रेतगण पानीय के अभाव के कारण तृषार्त होकर अवस्थान करते थे। उन सबों से श्रोण ने सुना कि दान नहीं करने के कारण वे तृषार्त होकर प्रेतरूप में अवस्थान कर रहे हैं। इस रूप में श्रोण उस प्रेतनगर से निष्क्रान्त होकर पानीय के अन्वेषण में अन्य प्रेतनगर में उपस्थित हो गये। श्रोण ने देखा दान नहीं करने के पाप से उसी स्थान में अगण्य तृषार्त प्रेत अवस्थान कर रहे हैं।

उस स्थान से निकल कर श्रोण ने सूर्य के अस्ताचल गमन काल में एक विमान का अवलोकन किया जिसमें चार अप्सराएँ एवं उन के साथ एक पुरुष बिहार कर रहे थे। उन लोगों ने तृषार्त श्रोण को स्नान कराया एवं भोजन दिया। श्रोण ने उस विमान में सूर्योदय काल पर्यन्त अवस्थान किया। उन सबों के निर्देशानुसार श्रोण ने उस विमान से अवतरण किया। उसने देखा कि वह विमान एवं चारों अप्सराएँ अन्तर्हित हो गये हैं और उस स्थान में चार कुत्ते प्रादुर्भूत होकर उस पुरुष के पृष्ठ अंशो का भोजन कर रहे हैं--सूर्य के अस्त गमनकाल पर्यन्त। इसके बाद पुनः वह विमान, वह पुरुष एवं वे अप्सराएँ आविर्भूत हुए। श्रोण ने यह जानने के लिए जिज्ञासा की कि वे कौन हैं एवं किस कर्मानुष्ठान के फलस्वरूप उस स्थान में उत्पन्न हुए हैं? इसके उत्तर में उस पुरुष ने कहा कि वासव ग्राम में वह औरभ्रिक—मेषघातक था। इसके बाद आर्य महाकात्यायन के उपदेश के अनुसार वह रात्रिकाल में शील आचरण करने लगा। जिसके फलस्वरूप रात्रिकाल में वह सुख अनुभव करता है एवं दिवा भाग में मेषवध करने का जो पाप है उसके फलस्वरूप पूर्वोक्त दुःख का अनुभव करता है। परिशेष में उस पुरुष ने कहा कि श्रोण तुम वासव ग्राम में जाकर हमारे पुत्र को मेषबधरूप पाप से निवृत्त होने के लिए कहो। और भी कहना कि असिस्थान के नीचे सुवर्ण कलश रखा है। वह उसके द्वारा जीविका निर्वाह करे। आर्य महाकात्यायन को भोज्यदान करे एवं हम लोगों के नाम में दक्षिणा[1] अर्पण करने की व्यवस्था करे।

श्रोण ने उस स्थान से गमन करना प्रारम्भ किया। उसने सूर्य के उदय

---

१. Edgerton, BHS, 94

काल में एक अन्य विमान का अवलोकन किया। उसमें एक अप्सरा एवं एक पुरुष बिहार कर रहे थे। उस स्थान में श्रोण ने उन सबों से भोजन प्राप्त कर सूर्य के अस्तगमनकाल पर्यन्त अवस्थान किया। इसके बाद सूर्यास्त के समय वह विमान एवं वे अप्सराएँ अन्तर्हित हो गये। महती शतपदी प्रादुर्भूत हुआ एवं उस पुरुष का भक्षण करने लगा। पुनः सूर्य के उदयकाल में वह विमान, वे अप्सराएँ एवं वह पुरुष आविर्भूत हुए। श्रोण के प्रश्न के उत्तर में उस पुरुष ने कहा कि वासव ग्राम में वह ब्राह्मण था—एवं वह पारदारिक था। उसने आर्य महाकात्यायन के निकट से दिवा भाग में शील ग्रहण किया। इसके फलस्वरूप वह दिवा भाग में सुख भोग करता है एवं रात्रिकाल में परदार निरत रहने के कारण उसके पाप से क्लेश का अनुभव करता है। पूर्वोक्त पुरुष ने श्रोण से कहा श्रोण! वासव ग्राम में जाकर उसके पुत्र को परदारगामी होने से निवृत्त करो एवं उससे कह दो कि वह आर्य महाकात्यायन को भोज्य दान करे और अपने लोगों के नाम पर दक्षिणा दान करने की व्यवस्था करे।

श्रोण ने उस स्थान से यात्रा की। उसने एक विमान में एक स्त्री को देखा जिसके पर्यङ्क के पाद में चार प्रेत आबद्ध हैं। उस स्त्री ने श्रोण को भोजन प्रदान किया एवं उसने कहा कि श्रोण! अगर ये सब तुम्हारे निकट कुछ प्रार्थना करें तब तुम इन सबों को कुछ भी नहीं देना। बुभुक्षितावस्था में उन सबों ने श्रोण से प्रार्थना की। श्रोण के द्वारा उन सबों के उद्देश्य में क्षिप्त वस्तु समूह नाना प्रकार के नारकीय विकार को प्राप्त हुआ। अनन्तर उस स्त्री के द्वारा श्रोण को अवगति हुई कि उन प्रेतगणों के मध्य में कोई प्रेत उसका स्वामी है, कोई प्रेत उसका पुत्र है, और कोई स्नुषा है, कोई दासी है। वह स्त्री वासव ग्राम में एक ब्राह्मण की पत्नी थी। नक्षत्ररात्रि में उसने आर्य महाकात्यायन को प्रणीत आहार्य समूह का दान किया था। परन्तु इससे उसके स्वामी एवं पुत्र ने क्रुद्ध होकर यथाक्रम में कहा कि महाकात्यायन क्यों नहीं बुसप्लावी एवं अयोगुड भोजन करता है। इस पाप के फलस्वरूप ये दोनों वही भोजन कर रहे हैं। नक्षत्ररात्रि में मैंने ज्ञातिगण के लिए प्रहेणक—सुस्वादुभक्ष्य उपहारस्वरूप प्रेरण

किया था। मेरी स्नुषा ने उसे भक्षरण कर मुझे लूह—अपकृष्टखाद्य प्रदान किया। मैंने जब पूछा तो उसने यही कहा कि जो तुम्हारा प्रहेणक भोजन करेगा वह अपना मांस भोजन क्यों नहीं करेगा ? इस कर्म के विपाक स्वरूप वह प्रेतरूपमें अपना मांस भोजन कर रही है। मैंने नक्षत्ररात्रि में दासी के हाथ से ज्ञातिगण के लिए प्रहेणक भेजा। उस दासी ने पथ में उसका भक्षरण कर ज्ञातिगण को लूह प्रदान किया। इसके बाद ज्ञातिगण से अभियोग आने के कारण मैंने उस दासी से जिज्ञासा की। उस दासी ने हमको यही कहा कि तुम्हारा प्रहेणक जो खायेगा वह पूय शोणित क्यों नहीं भोजन करेगा ? इस कर्म के विपाक स्वरूप वह दासी प्रेत रूप में इस स्थान में पूय शोणित भोजन कर रही है। मैंने भी संकल्प किया था कि ये सब जहाँ अपने-अपने कर्म फल भोग करेंगे मैं भी वहाँ उत्पन्न होकर इन सबों का कर्मफलभोग देखूँगी। उस मिथ्या प्रणिधान के फलस्वरूप प्रेत-महर्धिका होकर मैं इस स्थान में उत्पन्न हुई। उस पूर्वोक्त स्त्री ने श्रोण से कहा वह वासव ग्राम में जाकर उसके निर्देशानुसार उसकी कन्या—जो वेश्यावृत्ति अवलम्बन करती है—को उस पाप कर्म से विरत होने के लिए कहे। हमारे निर्देशानुसार उसको और भी कहना कि मेरी दुहिता के पैतृक वास गृह में सुवर्ण द्वारा पूर्ण चार लोह-संघाट हैं। वह उसी के द्वारा अपना जीवन निर्वाह करे। वह आर्य महाकात्यायन को भोज्य प्रदान करे एवं हम लोगों के नाम पर दक्षिणा प्रदान करे। इससे ही उसके पाप कर्म क्षय प्राप्त होंगे। इन सब कार्यों का सम्पादन करना श्रोण ने उस स्त्री के समक्ष स्वीकार किया।

अनन्तर उस स्त्री के आदेश से प्रेतगण सुप्त श्रोण को वासव ग्राम में अपने पैतृक उद्यान में स्थापित कर प्रत्यावर्तित हुए। उस स्थान में श्रोण प्रतिविबुद्ध हुए और उसने यह समझा कि उसके पिता माता ने उसको मृत समझा हैं। तब श्रोण के मन में वैराग्य का उदय हुआ। उसने आर्य महाकात्यायन के निकट गमन कर प्रव्रज्या ग्रहण करने की अभिलाषा प्रकट की। श्रोण ने यथाक्रम में मेषघातक, पारदारिक और गणिका के निकट जाकर प्रेतलोक की वार्ता

का विस्तृतरूप में वर्णन किया। अनन्तर श्रोण अपने पिता-माता के साथ मिल गये। श्रोण के पिता-माता ने उनको उनलोगों की मृत्यु के अनन्तर प्रव्रज्या ग्रहण करने के लिए कहा। उन्होंने महाकात्यायन के निकट आगमचतुष्टय का अध्ययन कर सकृदागामि-फल का साक्षात्कार किया। उनकी माता एवं पिता सत्य में प्रतिष्ठापित हुए। अपने पिता और माता की मृत्यु के बाद अपनी धन सम्पत्ति दरिद्रगण को दान कर महाकात्यायन के निकट उपस्थित हो गये; एवं उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण कर मातृका अध्ययन उपरान्त अनागामि-फल का साक्षात्कार किया।

अश्मापरान्तक जनपद में भिक्षु की संख्या स्वल्प होने के कारण भिक्षुओं का दशवर्गगण[1] विशेष क्लेश के साथ पूर्ण होता था। उपसंपदा (ordination) प्रदान करने का अधिकार पूर्वोक्त दशवर्गगण को ही था। इसलिए श्रोण ने श्रामणेरक (novice) रूप में उपसंपदा लाभ करने के लिए तीन मास अपेक्षा की। उस समय भगवान् बुद्ध के श्रावकगण के दो संनिपात—मेलन होते थे। एक आषाढ़ मास में, वर्षा ऋतु—वर्षावास के आरम्भ दिन में; दूसरा कार्तिक मास की पौर्णमासी में। जो भिक्षुसमूह आषाढ़ मास में वर्षा ऋतु के प्रारम्भ दिन में मिलित होते थे वे योगादि अनुष्ठान द्वारा वर्षा अतिवाहित करते थे और जो भिक्षुसमूह कार्तिक पौर्णमासी में मिलित होते थे वे जो प्राप्त हुआ है उसी के सम्बन्ध में विज्ञापित करते थे। वर्षावास के अनन्तर श्रोण आर्य महाकात्यायन के द्वारा उपसंपादित हुए। पिटकत्रय का अध्ययन कर उन्होंने अर्हत्त्व लाभ किया। अनन्तर आर्य महाकात्यायन ने श्रोण को बुद्ध के दर्शन करने के लिए अनुमति प्रदान की। बुद्ध के निकट पांच (=चार) प्रश्नों के उत्तर की जिज्ञासा करने के लिए कह दिया। वे प्रश्नसमूह इस प्रकार हैं। [१] अश्मापरान्तक में भिक्षु की संख्या अल्प होने के कारण क्लेश से ही दशवर्गगण पूर्ण होता है। उस अवस्था में उपसंपदा को किस

---

१. Edgerton, BHS, 263.

रूप से प्रदान किया जायगा ? [२] अश्मापरान्तक में भूमि कर्कश है इसलिए उस स्थान मे अज-चर्मादि व्यवहार किया जायेगा या नहीं ? [३] उस स्थान के अधिवासियों मे स्नान करने का आचार विशेष रूप में प्रचलित है। [४] एक भिक्षु ने अन्य भिक्षु को चीवर भेजा है। जिस भिक्षु के उद्देश में जो वस्तु भेजा जाता है उसको अगर वह नहीं मिले उस स्थिति में नैसर्गिक[1] पाप किसको होगा ?

श्रोण ने बुद्ध के समीप जाकर पूर्वोक्त चार प्रश्नों की जिज्ञासा की एवं भगवान् ने अनुज्ञा प्रदान की कि [१] प्रत्यन्तिम जनपद समूह में पाँच भिक्षुओं का जो गण है उसके द्वारा उपसंपदा प्रदान किया जायगा ; [२] भिक्षुगण मात्र एकपलाशिका—एक पत्र का स्तर युक्त उपानह–धारण कर सकते हैं ; परन्तु दो या तीन पुटयुक्त उपानह नहीं। वह उपानह अगर क्षय प्राप्त हो जाय तब अर्गलक द्वारा उसको दृढ़ बना कर धारण किया जायगा। [३] भिक्षुगण सदा स्नान कर सकते हैं। [४] चतुर्थ प्रश्न के उत्तर में भगवान् ने कहा है कि किसी को भी नैसर्गिक आपत्ति नहीं होगी। इसके बाद भगवान् ने अन्त एवं प्रत्यन्त देश समूहो का निर्देश प्रदान किया।

अनन्तर भगवान् ने कहा कि श्रोण कोटीकर्ण ने किस कर्म का अनुष्ठान किया जिसके फलस्वरूप रत्न खचित कर्णालंकार के द्वारा अलंकृत होकर आढ्य कुल में वे उत्पन्न हुए एवं उन्होंने प्रव्रज्या लाभ पूर्वक अर्हत्त्व का साक्षात्कार किया। पूर्वकाल में वाराणसी में सम्यक्संबुद्ध काश्यप विद्यमान थे। जाया एवं पति इन दोनों ने उनसे शरण गमन एवं शिक्षापद समूह ग्रहण किये। काश्यप के परिनिर्वाणलाभ करने के बाद राजा कृकी ने काश्यप के उद्देश्य में चार प्रकार के रत्नमय चैत्तों का निर्माण करा दिया। उन्होंने पूर्वनगरद्वार से जो कर लाभ होता था उसे पूर्वोक्त स्तूप के प्रतिसंस्करण के लिए अनुप्रदान किया। राजा कृकी के कालगत होने के बाद उनका पुत्र सुजात ने अमात्य गण के परामर्श के अनुसार उस कर का उच्छेद कर दिया। इसके फलस्वरूप पूर्वोक्त स्तूप में फाटल (चिर) आविर्भूत हुआ।

---

१. Edgerton,BHS, 313.

पूर्वोक्त जाया एवं पति उस स्तूप में अपने कृत्य का अनुष्ठान करते थे। उत्तरापथ से एक सार्थवाह वाराणसी में आया। उसने काश्यप के उद्देश्य में निर्मित स्तूप की जीर्ण अवस्था के कारण की पूर्वोक्त जाया एवं पति के निकट से अवगति प्राप्त की और रत्नकर्णिका को स्तूप संस्कार करने के लिए उन लोगों के हाथ में प्रदान किया। एव उसको विक्रय करके स्तूप का संस्कार कराने के कारण वह स्तूप पुनः सौन्दर्य-मण्डित हो गया। इसके बाद उस सार्थवाह ने इस प्रकार प्रणिधान किया कि इस कुशलमूल के प्रभाव से वह आढ्यकूल में जन्म लाभ कर सके एवं इस रूप से शास्ता की प्रसन्नता का उत्पादन कर सके। उपसंहार में भगवान् ने कहा कि पूर्वोक्त सार्थवाह ही श्रोण कोटीकर्ण है। उल्लिखित प्रणिधान के फलस्वरूप उसने अतिशय संपन्नकुल में रत्न खचित कर्णालंकार के द्वारा समन्वित होकर जन्मलाभ किया है। इसके बाद भगवान् ने भिक्षुगण को सम्बोधित करके कहा कि एकान्तकृष्ण कर्म का फल एकान्तकृष्ण है; एकान्तशुक्ल कर्म का फल एकान्तशुक्ल है एवं कृष्ण-शुक्ल मिश्रित कर्म का फलकृष्ण-शुक्ल मिश्रितरूप समझना चाहिये। भगवान् ने और भी बताया कि श्रोण को पण्यसम्भार लेकर समुद्र गमन के समय में उसकी माता ने निषेध किया था। उस समय श्रोण ने अपनी माता को उद्देश कर जो कर्कश वाक्य का उच्चारण किया उसीके फलस्वरूप उसको नरक दर्शन करना पड़ा।

उपनन्द ने राजा प्रसेनजित् के निकट से उत्तम शय्या लाभ किया। इसका भगवान् ने अनुमोदन कर कहा कि भिक्षुगण उच्च शयन एवं महार्ह शयन में शय्यास्थापन पूर्वक शयन नहीं करेगा।

किसी गृहपति ने बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को निमन्त्रित किया था। उसने उच्च आसन समूह सज्जित किया था। उस समय आनन्द ने गृहपति को कहा कि पूर्वोक्त महार्ह आसन भिक्षुके लिए अनुरूप नहीं है। अतः उसको अपसारण करने के लिए कहा। इससे गृहपति ने यही कार्य करना आरम्भ किया। उस समय में भगवान् ने उपस्थित होकर आनन्द से कहा कि वे गृहपति के गृह में उच्चासन में उपवेशन कर सकते हैं परन्तु विहार में नहीं।

दक्षिणापथ से एक भिक्षु श्रावस्ती में ग्राया। उसके चर्म की आस्तरीका देखने में सुन्दर थी। यह देखकर उपनन्द ने पूर्वोक्त चर्म को दान करने के लिए भिक्षु से कहा। भिक्षु सम्मत नहीं हुग्रा। उस समय राजा प्रसेनजित् का बड़ नामक गवाध्यक्ष उपनन्द का मित्र था। उपनन्द का ग्रभिप्राय समझकर गवाध्यक्ष बड़ ने चित्रोपचित्र एक गोवत्स का वध कराकर उसका चर्म उपनन्द को प्रदान किया। इससे ग्रवगत होकर भगवान् ने नियम कर दिया कि भिक्षु चर्मधारण नहीं कर सकेगा। इस प्रकार ग्रौर भी नियम किया गया कि गृहपति के गृह में चर्मासन पर भिक्षुगण उपवेशन कर सकते हैं परन्तु उसपर शयन नहीं कर सकते। विहार में उभय ही (दोनों) निषिद्ध हैं।

नियम किया गया है कि जराग्रस्त एवं व्याधिग्रस्त भिन्न भिक्षुगण यान व्यवहार नहीं कर सकते हैं। भिक्षुगण को सन्तरण शिक्षा करने की ग्रनुमति प्रदान की गयी है। परन्तु किसी स्त्री को नदी उत्तरण करने के समय में भी उसकी सहायता के लिए उसका शरीर स्पर्श नहीं किया जायेगा। परन्तु विशेष परिस्थिति में भिक्षुगण स्त्री जनों का शरीर स्पर्श करके उसको नदी से उद्धार कर सकते हैं। भगवान् ने नियम कर दिया है कि भिक्षुगण गो की पुच्छ ग्रवलम्बन करके नदी उत्तरण नहीं कर सकते हैं। परन्तु पाँच प्रकार के पशु की पुच्छ का ग्रवलम्बन कर नदी पार हो सकते है। भिक्षुगण भृषि वा भस्त्रा के द्वारा पार हो सकते हैं। भिक्षुगण के लिए काष्ठपादुका का व्यवहार निषिद्ध कर दिया गया है। विशेष विशेष ग्रवस्था में भिक्षुगण काष्ठपादुका का धारण एवं काष्ठपादुकादान ग्रहण कर सकते हैं। भिक्षुगण वंशपत्र पादुका, मुंज पादुका एवं रज्जुपादुका धारण नहीं कर सकेंगे। जिस भिक्षु को वातशोणित रोग उत्पन्न हुग्रा है वह रज्जुपादुका धारण कर सकता है।

श्रोण कोटीविंश नामक भिक्षु को चंक्रम अनुष्ठान करते-करते पादतल में क्षत उत्पन्न हो गया। उसी ग्रवस्था में भगवान् ने उसको एवं भिक्षुगण को एकपलाशिका पादुका धारण करने के लिए ग्रनुमति प्रदान की; किन्तु द्विपुटी ग्रथवा त्रिपुटी पादुका के लिए नहीं। ग्रगर उन पादुकाग्रों का क्षय होना शुरू हो जाय, तब ग्रर्गलक

द्वारा संस्कार करा कर उसका व्यवहार किया जा सकता है। भगवान् ने नियम कर दिया है कि भिक्षुगण उपानह धारण नहीं कर सकते हैं। भगवान् ने नियम कर दिया है कि गृहपति अथवा आगारिकगण स्वल्प काल तक व्यवहार करके उस व्यवहृत बहु-पुटी उपानह भिक्षु को दान करें तब उसका भिक्षु व्यवहार कर सकते हैं। परन्तु विलास का द्योतक उपानह धारण नहीं कर सकते हैं। भगवान् ने यह भी नियम कर दिया है कि पादपृष्ठ में व्रण उत्पन्न होने से तिर्यग्वद्धिका एवं पादांगुष्ठ में क्षत होने से भिक्षुगण पुटापुटी धारण कर सकते हैं। इस प्रकार अवस्था विशेष में भिक्षुगण नालाम्बुजा, मुण्डपूला प्रभृति धारण कर सकते हैं। भिक्षुगण हिमालय के जनपद समूहों में पूलाधारण कर सकते हैं। इस प्रकार लुब्धक—व्याध अगर भल्लुक का चर्म प्रदान करे तब उसको भिक्षुगण गन्धकुटि के द्वार में व्यवहार कर सकते हैं। भगवान् ने यह भी निर्देश दिया कि पादुका च्छिन्न हो जाने पर प्रतिगुप्त—निर्जनस्थान में अवस्थान करके उसको सी सकते हैं और इसलिए भिक्षुगण ग्रन्थन के साधन आरा, शस्त्रक, एवं बद्धिका व्यवहार कर सकते हैं।

संघभेदवस्तु

संघभेदवस्तु का प्रथम अंश उपलब्ध नहीं होता है। भगवान् ने मगध के राजा अजातशत्रु को रूपकाय एवं मनोमय काय के सम्बन्ध में नाना प्रकार के दृष्टान्तों के द्वारा उपदेश प्रदान किया है। समाहित चित्त का अलौकिक सामर्थ्य एवं पांच प्रकार की अभिज्ञा—अलौकिक ज्ञान–का निर्देश किया है [१] ऋद्धि; [२]दिव्य श्रोत्र—ज्ञान;[३]चेतः—पर्यायज्ञान;(=परचित्तज्ञान);[४]पूर्वनिवासानुस्मृति; [५] दिव्य-चक्षु; [६] आस्रव-क्षयज्ञान। आस्रव-क्षयज्ञानके फलस्वरूप चार प्रकार आर्यसत्य की उपलब्धि के विषय में उल्लेख किया गया है। वे सब इस प्रकार हैं—१ दुःख; २ दुःख समुदय; ३ दुःखनिरोध; ४ दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपत्। भगवान् ने जब अजातशत्रु को श्रामण्यफलके सम्बन्ध में उपदेश प्रदान किया तब अजातशत्रु के चित्त में विशेष परिवर्तन हुआ। वे अपने धार्मिक पिता का वध

करने के कारण अनुतप्त हो गये। अजातशत्रु ने भगवान् को अपने भिक्षुसंघ के साथ ठीक द्वितीय दिवस को अपने प्रासाद में भोजन करने के लिए निमन्त्रण दिया। भगवान् ने उसकी सम्मति प्रदान की एवं अजातशत्रु इस स्थान से निष्क्रान्त हो गये। इसके बाद भगवान् ने भिक्षुगण को सम्बोधित करके कहा कि अजातशत्रु अगर अपने पिता का वध नहीं करते तब तो इस आसन में उपवेशन कर चार प्रकार के आर्य-सत्य की उपलब्धि कर सकते थे। उन्होंने भिक्षुगण को सावधान कर दिया कि दग्ध-स्थूण में भी अभिनिवेश द्वारा चित्त को दूषित करना उचित नहीं है। अनन्तर दूसरे दिन यथाकाल अजातशत्रु ने आसनादि सज्जित किया एवं पूर्वाह्न में भगवान् भिक्षुसंघ के साथ उपस्थित हो गये। राजा अजातशत्रु ने अपने हाथ से बुद्ध प्रमुख भिक्षुसंघ को भोजन कराया एवं भगवान् का आहार समाप्त होने के बाद धर्म श्रवण करने के लिए भगवान् के सम्मुख उपविष्ट हो गये। भगवान् अजातशत्रु को नाना प्रकार की धर्मकथा द्वारा आनन्दित करके प्रक्रान्त हो गये। राजा अजातशत्रु ने भगवान् बुद्ध का शरण लाभ किया। उन्होंने इसरूप में घोषणा कर दी कि भगवान्, श्रावक, भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक, उपासिकागण के लिए राजप्रासाद का द्वार अनावृत है। परन्तु देवदत्त एवं उसके श्रावकगण के लिए द्वार आवृत है इस प्रकार निर्देश दिया।

अन्य समय में देवदत्त राजा अजातशत्रु के गृह में प्रवेश करने लगे। परन्तु दौवारिक के द्वारा निरुद्ध हो गये। उस समय में उत्पलवर्णा भिक्षुणी पिण्डपात ग्रहण करके राजकुल से निष्क्रान्त होने लगी। इससे देवदत्त के मन मे यह हुआ कि उत्पलवर्णा ने ही राजा अजातशत्रु का उसके साथ भेद उत्पन्न कर दिया है। इसके बाद देवदत्त ने उत्पलवर्णा भिक्षुणी पर ऐसा प्रहार किया कि भिक्षुणी का प्राण-विनाश हो गया एवं भिक्षुणी ने निरुपधिशेष निर्वाणधातु में परिनिर्वाण लाभ किया।

भगवान् ने यह सुनकर कहा कि अतीतकाल में भी देवदत्त ने उत्पलवर्णा को वध करके उसका मांस भोजन किया था। इस सम्बन्ध में भगवान् ने कहा कि

पूर्वकाल में अन्यतम कर्वटक में एक गृहपति वास करता था। उसके पास मेषों का समूह था। उन मेषों के विचरण के लिए मेषपालक उनसबों को लेकर ग्राम के बाह्य भागमें चला गया। सूर्य के अस्तगमन समय में मेषपालक मेषों को लेकर कर्वटक में प्रवेश करने लगे। परन्तु एक वृद्धा एडिका पर पृष्ठदेश से अनुसरण कर एक वृक ने आक्रमण किया एवं उसका विनाश कर उसका मांस भोजन किया। उपसंहार में भगवान् ने कहा कि यह वृक देवदत्त था एवं एडिका उत्पलवर्णा थी।

देवदत्त की चिन्ता का कारण यही हुआ कि उन्होंने आनन्तर्य-त्रय अनुष्ठान किया है—भगवान् को लक्ष्य करके शिलानिक्षेप कर उनका रुधिर प्रवाहित किया है; भिक्षुसंघ में भेद सृष्टि की है; उत्पलवर्णा का विनाश किया है। इसलिए उनको (देवदत्त को) नरक में उत्पन्न होना पड़ेगा। इस अवस्था में पूरण [काश्यप] ने उस स्थान में उपस्थित होकर कहा कि परलोक कुछ भी नहीं है। इसलिए देवदत्त को कुछ भय नहीं है। पूरण ने देवदत्त को कपिलवस्तु में जाकर राज्य करने के लिए कहा एवं वे सब देवदत्त के श्रावक हो जायेंगे यह भी कहा। यह मिथ्याज्ञान लाभ करने के फलस्वरूप देवदत्त का समस्त कुशलमूल समुच्छिन्न हो गया। भगवान् ने भिक्षुगण को सम्बोधित करके कहा कि देवदत्त ने कुशलमूल समूह का उच्छेद किया है। देवदत्त पूर्व से ही पापेच्छा समन्वित है; पापमित्र युक्त है; इस प्रकार तीन प्रकार के असत् धर्मों के द्वारा देवदत्त युक्त है। इसलिए देवदत्त नरक का प्राणी है।

अनन्तर देवदत्त मिथ्याज्ञान लाभ करके श्रावकगण को पाँच प्रकार के धर्मों का उपदेश देने लगे; गौतम दधिक्षीर भोजन करता है; मांस भोजन करता है; लवण भोजन करता है; छिन्नदश वस्त्र धारण करता है; अरण्य में वास करता है—इस प्रकार प्रचार करके प्रत्येकपक्ष में दोष प्रदर्शन करने लगे एवं इससे निवृत्त होने के लिए कहने लगे।

भगवान् बुद्ध श्रावस्ती में आकर विराज करने लगे। देवदत्त ने गौतम की पत्नी का अपमर्दन करने के लिए कपिलवस्तु में गमन किया। उस स्थान में

जाकर उन्होंने गौतम दारा को सन्देश प्रेरण किया कि गौतम ने प्रव्रज्याग्रहण किया है। इसलिए वह उसके साथ विहार करे। इसपर गोपिका ने उत्तर प्रेषित किया कि बोधिसत्त्व उसका हस्तग्रहण सहन करते है। अगर वह भी सहन करे तो वह उसके साथ विहार करेगी। देवदत्त के आने के बाद गोपिका ने अपने वाम हस्त के द्वारा देवदत्त की अङ्गुलिओं का निपीडन करके देवदत्त को क्रीडा पुष्करिणी में निक्षेप किया। उस स्थान से देवदत्त ने पलायन किया।

इस प्रकार एक समय देवदत्त ने बोधिसत्त्व के अन्तःपुर में गमन करके यशोधरा के निकट आकर कहा कि देवदत्त कपिलवस्तु में राज्य करेगा एवं उसने यशोधरा को अपनी अग्रमहिषीरूप में सम्बोधित किया। परन्तु अवसान में यशोधरा के द्वारा अपमानित होकर वह अन्तःपुर से निष्क्रान्त हो गया।

शाक्यगण ने देवदत्त से कहा कि अगर तुम भगवान् के समीप में गमन कर उनसे क्षमा लाभ करने में समर्थ हो जाओ तब राज्य कर सकोगे। देवदत्त ने वत्सनाभ विषके द्वारा उसका नख पूर्ण करके भगवान् के निकट गमन किया। उसने स्थिर किया कि अगर गौतम क्षमा करे तबतो अच्छा है। अन्यथा नख विषके द्वारा गौतम का पादद्वय विषाक्त कर देंगे। इस प्रकार चिन्ता करके देवदत्त ने भगवान् के पादयुगल में निपतित होकर कहा कि भगवन् हमको क्षमा कीजिये। भगवान् देवदत्त का अभिप्राय समझकर स्फटिकमय पादयुगल निर्माण करके अवस्थान करने लगे। देवदत्त ने भगवान् का पादयुगल नख के द्वारा विद्धकरना आरम्भ किया एवं इसके फलस्वरूप उसका नख भग्न हो गया। अवशेष में देवदत्त बुद्ध शरणापन्न हो गया। अनन्तर उसने भगवान् बुद्ध की शरण मैंने ग्रहण किया— इस रूप कहकर वह सशरीर अवीचि महानरक में पतित हो गया।

अनन्तर भगवान् ने भिक्षुगण को सम्बोधित करके कहा कि देवदत्त कुशलमूल समूह प्रतिसंधान करने में समर्थ हुआ है। अल्पकाल अवीची नरक में अवस्थान

करने के वाद अस्थिमान् नामक प्रत्येक बुद्ध हो जायेगा। एवं अवशेष में निरुपधि-शेष निर्वाणधातु में परिनिर्वाण लाभ करेगा।

अनन्तर शारिपुत्र एवं महामौद्गल्यायन ने अवीचि महानरक में देवदत्त को आश्वासन देने के लिए गमन किया। महामौद्गल्यायन ने देवदत्त का आह्वान किया। देवदत्त आगमन करके उन दोनों के पादतल निपतित हो गया। अनन्तर देवदत्त नरक में जो क्लेश भोगकर रहा है उसका वर्णन करने लगा। शारिपुत्र—मौद्गल्यायन ने कहा कि किस-किस पाप के फलस्वरूप देवदत्त यह भोग कर रहा है—एवं अवशेष में देवदत्त के सम्बन्ध मे भगवान् ने जो भविष्यवाणी उच्चारण की है उसको सुनाकर उन्होंने देवदत्त को आश्वस्त किया। अनन्तर शारिपुत्र एवं महामौद्गल्यायन नरक के जिस स्थल में कोकालिक अवस्थान करते थे उस स्थल में गये। कोकालिक ने उनसबों को देखकर कर्कशशब्द का उच्चारण किया। इसके फलस्वरूप कोकालिक का नरक क्लेश और भी बढ़ गया।

अनन्तर वे दोनों जिस स्थल में पूरणकाश्यप अवस्थान करते थे उस स्थान में गये। पूरणकाश्यप स्वयं जिस पाप के लिये क्लेश भोग कर रहे हैं उसको उन दोनों के समीप निवेदन किया। दोनों उसके क्लेशों का प्रतिकार करेंगे यह कहकर नरक से निष्क्रान्त होकर जम्बुद्वीप में प्रत्यागमन किया। उन दोनों ने भिक्षुगण को एवं जनसमूह को देवदत्त प्रभृति जिस नरक क्लेश का भोग कर रहे हैं उसका वर्णन प्रदान किया।

भगवान् ने भिक्षुगण को कहा कि देवदत्त अतीतकाल में भी भगवान् के वाक्यों की उपेक्षा करके विपद्ग्रस्त हुआ था। पूर्वकाल में बोधिसत्त्व वृषरूप में उत्पन्न हुये थे। वे रात्रिकाल में नगर से निर्गत होकर राजकीय माषक्षेत्र में विचरण करते थे। दिवाभाग मे नगर में अवस्थान करते थे। उसके समीप मे एक गर्दभ ने आकर कहा कि वह उसके साथ विचरण करेगा। वृष ने कहा कि गर्दभ वाचाट है,अनर्थ संघटन कर सकता है। इसलिए गर्दभ के प्रति निवृत्त होने के लिए कहा। परन्तु गर्दभ ने नहीं सुना। वे दोनों राजकीय माषक्षेत्र में गमन किये।

अनन्तर गर्दभ ने कहा कि वह गान करेगा। यह सुनकर वृष ने पलायन किया; गर्दभ ने गान करना शुरू किया। इससे राजपुरुषगण ने आकर गर्दभ का कर्ण द्वय च्छेदन करके ग्रीवा मे उलूखल बन्धन कर उसको छोड़ दिया। उपसंहार में भगवान् ने कहा कि वे स्वयं ही यह वृष थे। एवं गर्दभ देवदत्त था।

इस प्रकार भगवान् ने अन्य एक आख्यान की अवतारणा की है। एक वृष पङ्क में निमग्न होकर अवस्थान करने लगा। रात्रिकाल में एक श्रृगाल ने वहाँ उपस्थित होकर वृष के निषेध करने पर भी उसके भक्षण करने के लिए वृष के पृष्ठभाग में गमन किया। वृष के संमुख एक पाश था। उसने उसको श्रृंग के द्वारा श्रृगाल को लक्ष्य करके निक्षिप्त किया—जिसके फलस्वरूप श्रृगाल आवद्ध हो गया। उपसंहार में भगवान् ने कहा कि वे स्वयं ही पूर्वोक्त वृष थे। एवं देवदत्त पूर्वोक्त श्रृगाल था।

पुनः भगवान् ने कहा कि अतीतकाल में भी देवदत्त ने उनका वचन नही सुनकर अवीचि में गमन किया था। पूर्वकाल में किसी राजधानी में एक राजा राज्य करते थे। उस राजा के पुरोहित के दो पुत्र थे; एक ज्येष्ठ अपर कनीयान्। ज्येष्ठ ने देखा कि उसके पिता अन्याय रूप में पौरोहित्य करते हैं। इसलिए उसने बुद्ध के शासन में प्रव्रज्या ग्रहण किया। पुरोहित के कालगत होने पर उसके कनीयान् पुत्र ने अधर्माचरण पूर्वक पौरोहित्य करना आरम्भ किया। इससे जनसाधारण को पीड़ा उत्पन्न हो गयी। यह सुनकर ज्येष्ठ ने अहित निवारण करने के लिए पूर्वोक्त राजधानी में आगमन की इच्छा प्रकाश की। यह सुनकर कनीयान् ने राजा के निकट जाकर कहा कि उसका ज्येष्ठ भ्राता आगमन करेगा। राजा ने कहा कि तब तो वह ज्येष्ठ ही पुरोहित होगा। इससे कनीयान् ने कहा कि तब तो मैंने वृथा इतने काल तक आपकी सेवा की है। इससे राजा ने कहा कि ज्येष्ठ के आने पर अगर तुम अपने को ज्येष्ठ कहोगे तब तो तुम्हारा पौरोहित्य रह जायेगा।

ज्येष्ठ के आगमन करने के बाद कनीयान् ने कहा कि वह स्वयं ज्येष्ठ है। इसके वाद इस विषय में ज्येष्ठ ने राजा से जिज्ञासा की। राजा ने मिथ्या भाषण

करके कहा कि वह कनीयान् है। इस मिथ्या भाषण करने के अव्यवहित काल के बाद ही राजा पृथ्वी में पड़ गये—उनके मुख से पूतिगन्ध निर्गत होने लगा। उपसंहार में भगवान् ने कहा है कि वे स्वयं ही पूर्वोक्त ज्येष्ठ पुरोहित पुत्र थे एवं पूर्व निर्दिष्ट राजा चैतिक देवदत्त था।

भगवान् ने कहा है कि अतीतकाल में भी देवदत्त ने भगवान् के द्वारा कथित हित का श्रवण नहीं करके व्यसन प्राप्त किया था। पूर्वकाल में एक कर्वटक में यन्त्रकलाचार्य वास करते थे। उसको एक पुत्र था। कालक्रम में उस यन्त्रकलाचार्य की मृत्यु हुई। उसने अपर कर्वटक के यन्त्रकलाचार्य के समीप यन्त्रकला की शिक्षा ग्रहण करना आरम्भ किया। वह अन्य कर्वटक के गृहपति से उसकी कन्या को प्रार्थना की। गृहपति ने कहा कि यदि अमुकदिन तुम आगमन करोगे तभी तुमको दान करेंगे, अन्यथा नहीं। उसने इस विषय का यन्त्रकलाचार्य के निकट निवेदन किया। यन्त्रकलाचार्य ने उसको लेकर काष्ठमय मयूर पर आरोहण कर उस कर्वटक में गमन किया एवं वे कन्याको लेकर अपने गृह में चले आये। यन्त्रकलाचार्य ने यन्त्र को उसकी माता के निकट अर्पण करके कहा तुम्हारा पुत्र यन्त्रका प्रवर्तन जानता है, किन्तु निवर्तन नहीं जानता है। तुम इस यन्त्र को अपने पुत्र को नहीं देना। इसके बाद मृत यन्त्रकलाचार्य के पुत्र ने अपनी माता के समीप आकर कहा कि आचार्य ने मात्सर्यवश इस प्रकार कहा है—वह यन्त्र का प्रवर्तन एवं निवर्तन दोनों ही जानता है। यह कह कर वह माता के निकट से यन्त्र लेकर उस पर आरोहण कर गमन करने लगा। उसकी अज्ञता के फलस्वरूप यन्त्र ने उसको लेकर महासमुद्र में गमन किया एवं वर्षा के कारण यन्त्र का बन्धन क्लेदयुक्त हो गया। अवशेष में इसके फलस्वरूप उसने व्यसन प्राप्त किया। उपसंहार में भगवान् ने कहा कि वे स्वयं ही यन्त्रकलाचार्य थे। एवं उनका अन्तेवासी देवदत्त था।

इसके बाद भगवान् ने संघभेद एवं संघसामग्री के स्वरूप का निर्देश किया। भगवान् ने और भी कहा है कि दो कारणों के द्वारा संघभेद होता है— १) ज्ञप्ति

कर्म, (२) शलाका ग्रहण। देवदत्त ने भिक्षुगण को पांच प्रकार के व्रतपदके [1] विषय को ज्ञापित किया था—वे इस प्रकार हैं:—(१) आरण्यकत्व; (२) वृक्ष-मूलिकत्व; (३) त्रैचीवरिकत्व; (४) पांसुकूलिकत्व प्रभृति। भिक्षु समग्र श्राव-कसंघ में भेद उत्पन्न करने से नरकवासी हो जायेगा।

उपसंहार

मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तु के आलोच्य अंश का अध्ययन करने से भारतवर्ष की ऐतिहासिक, सामाजिक और नैतिक अवस्थाओं का एक स्पष्ट परिचय मिलता है इस ग्रन्थ के संकलन-काल में भारतीय जनसाधारण के संस्कार एवं आचार-व्यवहार का एक वास्तव प्रतिबिम्ब उपलब्ध होता है। उसके आलोच्य अंश में पिता-माता के प्रति कर्त्तव्य पालन का विशेष रूप से निर्देश दिया गया है। वृद्ध पिता-माता का अनुमोदन नहीं रहने पर संसार विरक्त पुरुष भी प्रव्रज्या ग्रहण से विरत हो जाते थे। वृद्धपिता-माता का अन्तिम कर्म निष्पादन के बाद ही प्रव्रज्या ग्रहण करते थे। बुद्धदेव के निर्देश के अनुसार पितृघातक एवं मातृघातक का भिक्षु-संघ मे कोई स्थान नहीं था। महाराज अजातशत्रु पितृवध करने के कारण भग-वान् बुद्ध के द्वारा अतिशय तिरस्कृत हुए थे। जनसाधारण में दान करने की प्रवृत्ति की विशेष रूप में प्रशंसा की गई है।

अपराधी भिक्षुकों के लिए विचार एवं दण्डविधान-पद्धति पर गणतन्त्र का स्पष्ट प्रभाव है। भिक्षुसंघ को ही अपराधी भिक्षु के लिए विचार एवं दण्डप्रदान का अधिकार था। इसी प्रकार भिक्षु के ऊपर दिये गये दण्ड का प्रत्याहार करने का अधिकार भी भिक्षुसंघ को ही था। भिक्षुसंघ भी एक विशेष पद्धति का अवलम्बन कर विचार एवं दण्ड प्रदान करते थे। वे अपनी स्वेच्छाचारिता का अवलम्बन कर अपराधी भिक्षु के ऊपर दण्डप्रदान नहीं करते थे। प्राचीन

---

१ Edgerton, BHS, 520

भारतीय विचार एवं दण्डप्रदान की पद्धति के अध्येता छात्र एवं अध्यापक वर्ग के लिए मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तु का आलोच्य अंश अतिशय महत्त्वपूर्ण है। अपराधी भिक्षुओं के दण्डप्रदान में यह लक्ष्य रखा गया है जिससे अपराधी भिक्षु का दण्डभोग के द्वारा नैतिक एवं मानसिक उत्कर्ष हो जाय। भिक्षुओं के लिए भिक्षु के नियमों का उलङ्घन कर अथवा अपराध का अनुष्ठान कर उसका गोपन करना अतिशय आपत्ति जनक समझा जाता था। पापकर्मों का आचरण कर उसको स्वीकार करना प्रायश्चित्त के एक रूपान्तर में परिगृहीत हुआ है।

मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तु के आलोच्य अंश मे नरक का दृश्य-वर्णन पुराण का प्रभाव स्पष्ट स्मरण कर देता है। कर्मवाद के ऊपर विशेष गुरुत्व का आधान किया गया है। भगवान् ने पुनः पुनः कृष्णकर्म का कृष्णफल, अकृष्ण कर्म का अकृष्णफल और कृष्णाकृष्ण मिश्रित कर्म का कृष्णाकृष्ण फल निर्दिष्ट किया है। इसमें ब्राह्मण धर्म का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। ब्राह्मणों के प्रति स्थल स्थल पर कटाक्ष किया गया है और समय-समय पर गौरव का आधान भी किया गया है।

इस प्रसंग में यह उल्लेखनीय है कि अधिकारी एवं अनधिकारी सभी प्रकार के लोगों को प्रव्रज्या प्रदान करने के कारण बौद्ध भिक्षुसंघ में विशेष विपर्यय उत्पन्न हो गया था। अनधिकारी स्त्री एवं पुरुष प्रव्रज्या के महत्त्व की उपलब्धि नहीं कर सकें। फलस्वरूप भिक्षुजीवन के विरोधी कार्यकलापों का अनुष्ठान करने लगे। इस परिस्थिति का सामना करने के लिए तथा भिक्षुसंघ को सदाचार सम्पन्न रखने के लिए भिक्षुसंघ संचालकों को विशेष क्लेश सहन करना पड़ा और इसके परिणाम स्वरूप भारतवर्ष में भिक्षुसंघ के प्रति जनसाधारण की आस्था एवं श्रद्धा म्लान हो गई—इसका स्पष्ट सङ्केत मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तु के आलोच्य अंश में उपलब्ध होता है।

बुद्ध और देवदत्त का संघर्ष, देवभाव के साथ असुरभाव का, पुण्य के साथ पाप का, धर्म के साथ अधर्म का जो सनातन संघर्ष चल रहा है उसी का प्रतीक है। इसको बुद्ध और देवदत्त की अनेक जन्म कथाओं के रूप में वर्णित किया गया है। मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तु में गम्भीर दार्शनिक विषयों का पर्यालोचन न होने पर भी इसका साहित्यिक मूल्य उपेक्षणीय नहीं है। स्थल-स्थल पर सुभाषित के द्वारा इसका आख्यान अंश परिपूर्ण है।

पाण्डुलोहितकवस्तूद्दानम् । G. M. 5

पाण्डुलोहितानां तर्जनीयं श्रेयकस्य च निगर्हणीयम् ।
अश्वकपुनर्वसुकानां प्रवास उत्तरः प्रतिसंहरे ॥१॥
अदर्शनाय च्छन्दस्तथैवाप्रतिकरणम् ।
अरिष्टः पापिका दृष्टिरुदायी पंचकर्मकः ॥२॥

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन श्रावस्त्यां पाण्डुलोहितिका भिक्षवः प्रतिवसन्ति कलहकारका भण्डनकारका विग्रहकारका विवादकारकारका आधिकरणिकाः । ते संघे अभीक्ष्णमधिकरणान्युत्पादयन्ति येन संघः कलहजातो विहरति । भण्डनजातो विगृहीतो विवादमापन्नः । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । कुरुत यूयं भिक्षवः पाण्डुलोहितकानां भिक्षूणां कलहकारकाणां भण्डनकारकाणां विगृहीतानां विवादमापन्नानामाधिकरणिकानां तर्जनीयं कर्मेति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

पंचभिः कारणैस्तर्जनीयं कर्म कृतमधर्मकर्म च तदविनयकर्म च संघश्च तेन सातिसारः । कतमैः पंचभिः । अचोदयित्वा कुर्वन्ति । अस्मारयित्वा अवस्तुकमप्रतिज्ञया असंमुखीभूतस्य कुर्वन्ति । पंचभिस्तु कारणैस्तर्जनीयं कर्म कृतं धर्मकर्म च तद्विनयकर्म च संघश्च तेन न सातिसारः । कतमैः पंचभिः । चोदयित्वा कुर्वन्ति । स्मारयित्वा G. M. 6 सवस्तुकं प्रतिज्ञया संमुखी [भूतस्य] कुर्वन्ति ।

एवं च पुनः कर्त्तव्यम् । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून् समनुयुज्य सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतिते एकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । इमे पाण्डुलोहितिका भिक्षवः कलहकारका भण्डनकारका विग्रहकारका विवादकारका आधिकरणिकाः । त एते अभीक्ष्णं संघे अधिकरणान्युत्पादयन्ति येन संघः कलहजातो विहरति भण्डनजातो विगृहीतो विवादमापन्नः । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः पाण्डुलोहितकानां भिक्षूणां कलहकारकाणां भण्डनकारकाणां विग्रहकारकाणां विवादकारकाणामाधिकरणिकानां तर्जनीयं कर्म कुर्यादिति । एषा ज्ञप्तिः । ततः कर्म कर्त्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । इमे पाण्डुलोहितिका भिक्षवः कलहकारका भण्डनकारका विग्रहकारका विवादकारका आधिकरणिकाः । त एते अभीक्ष्णं संघे अधिकरणान्युत्पादयन्ति

येन संघः कलहजातो विहरति । भण्डनजातो विहरति विगृहीतो विवादमापन्नः । तत्संघः पाण्डुलोहितिकानां भिक्षूणां कलहकारकाणां भण्डनकारकाणां विग्रहकारकाणां विवादकारकाणामाधिकरणिकानां तर्जनीयं कर्म करोति । येषामायुष्मतां क्षमन्ते पाण्डुलोहितिकानां भिक्षूणां पूर्ववद् यावत्तर्जनीयं कर्म कर्तुम् । ते तूष्णीम् । न क्षमन्ते भाषन्ताम् ॥
G. M. 7 इयं प्रथमा कर्मवाचना । एवं द्वितीया तृतीया कर्मवाचना कर्त्तव्या । कृतं संघेन पाण्डुलोहितिकानां भिक्षूणां पूर्ववद्यावत्तर्जनीयं कर्म । क्षान्तमनुज्ञातां संघेन यस्मात्तूष्णीमेवमेतद्धारयामि ।

तर्जनीयकर्मकृतस्याहं भिक्षोरासमुदाचारिकान् धर्मान् प्रज्ञपयामि । तर्जनीयकर्मकृतेन भिक्षुणा न प्रव्राजयितव्यम् । नोपसंपादयितव्यम् । न निश्रयो देयः । न श्रमणोद्देश उपस्थापयितव्यः । न भिक्षुण्यववदितव्या । न भिक्षुण्यववादकः संमन्तव्यः । नापि पूर्वसंमतेन भिक्षुण्यववदितव्या । न भिक्षुश्चोदयितव्यः स्मारयितव्यः शीलविपत्त्या दृष्टिविपत्त्या आचारविपत्त्या आजीवविपत्त्या स्थापयितव्यः । न पोषधो न प्रवारणा न ज्ञप्तिकर्म न ज्ञप्तिचतुर्थं कर्म । तर्जनीयकृतो भिक्षुर्यथाप्रज्ञप्तानासमुदाचारिकान् धर्मान्न समादाय वर्त्तते सातिसारो भवति ।

[त] एवं तर्जनीयकर्मकृता उत्कचप्रकचाः संघे रोम पातयन्ति । निःसरणं प्रवर्तयन्ति । समीचीमुपदर्शयन्ति । अन्तःसीमायां स्थित्वा ओसारणां याचन्ते । कलहकारकत्वाच्च प्रतिविरमाम इति कथयन्ति । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ओसारेत यूयं भिक्षवः पाण्डुलोहितिकान् भिक्षून् कलह [कार] कांस्तर्जनीयकर्मकृतानिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

पंचभिर्धर्मैः समन्वागतस्तर्जनीयकर्मकृतो नोसारयितव्यः । कतमैः पंचभिः ।
G. M. 8 नोत्कचप्रकचः संघे रोम पातयति । न निःसरणं प्रवर्तयति । न समीचीमुपदर्शयति । नान्तःसीमायां स्थित्वा ओसारणां याचते । तस्माच्च कलहकारकत्वाच्च न प्रतिविरमामीति [कथयति] । एभिः पंचभिर्धर्मैःसमन्वागतः पूर्ववत् । अपरैरपि पंचभिर्धर्मैः समन्वागतस्तर्जनीयकर्मकृतो नोसारयितव्यः । कतमैः पंचभिः । राजकुलप्रतिसरणो भवति । युक्तकुलप्रतिसरणः । तीर्थिकप्रतिसरणः । पुद्गलप्रतिसरणः । न संघप्रतिसरणः । एभिः पंचभिर्धर्मैः समन्वागतः पूर्ववत् । अपरैरपि पंचभिर्धर्मैः समन्वागतस्तर्जनीयकर्मकृतो नोसारयितव्यः । कतमैः पंचभिः आगारिकध्वजं धारयति । तीर्थिकध्वजं धारयति । तीर्थ्यान्सेवते पर्युपास्ते । अनध्याचारमाचरते । भिक्षुशिक्षायां [न] शिक्षते । एभिः पंचभिर्धर्मैः समन्वागतः पूर्ववत् । अपरैरपि पंचभिर्धर्मैः समन्वागतस्तर्जनीयकर्मकृतो

नोसारयितव्यः । कतमैः पंचभिः । भिक्षूनाक्रोशति । रोषयति । परिभाषते । संघस्य च अलाभाय अपदाय चेतयति । एभिः पंचभिर्धर्मैः पूर्ववत् ।

पंचभिस्तु धर्मैः समन्वागतस्तर्जनीयकर्मकृत ओसारयितव्यः कतमैः पंचभिर्धर्मैः । उत्कचप्रकचः संघे रोम पातयति । निःसरणं प्रवर्तयति । समीचीमुपदर्शयति । अन्तः- G.M 9
सीमायां स्थित्वा ओसारणां याचते । कलहकारकत्वाच्च प्रतिविरमामीति वदति । एभिः पंचभिर्धर्मैः समन्वागतस्तर्जनीयकर्मकृत ओसारयितव्यः । कतमैः पंचभिः । न राजकुलप्रतिसरणो भवति । न युक्तकुलप्रतिसरणः । न तीर्थिकप्रतिसरणः । [न ?] संघप्रतिसरणः । न पुद्गलप्रतिसरणः । एभिः पंचभिर्धर्मैः समन्वागतः पूर्ववत् । अपरैरपि पंचभिर्धर्मैः समन्वागतस्तर्जनीयकर्मकृत ओसारयितव्यः । कतमैः पंचभिः । नागारिकध्वजं धारयति । न तीर्थिकध्वजं धारयति । न तीर्थ्यान् सेवते न भजते न पर्युपास्ते । न अध्याचारमाचरते । भिक्षुशिक्षायां शिक्षते । एभिः पञ्चभिर्धर्मैः पूर्ववत् । अपरैरपि पञ्चभिर्धर्मैः समन्वागतस्तर्जनीयकर्मकृत ओसारयितव्यः । कतमैः पंचभिः । भिक्षून् नाक्रोशति । न रोषयति । न परिभाषते । संघस्य (च) लाभाय [पदाय] चेतयते । [एभिः] पंचभिर्धर्मैः पूर्ववत् ।

एवं च पुनरोसारयितव्यः । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून् समनुयुज्य सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतितते पाण्डुलोहितकैर्भिक्षुभिर्यथावृद्धिकया समीचीं कृत्वा वृद्धान्ते उत्कुटुकेन स्थित्वा अंजलिं प्रगृह्य इदं स्याद्वचनीयम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । वयं पाण्डुलोहितिका भिक्षवः कलहकारका भण्डनकारका विग्रहकारका विवादकारका आधिकरणिकाः । ते वयमभीक्ष्णं संघे अधिकरणान्युत्पादयामः । येन संघः कलहजातो विहरति भण्डनजातो विगृहीतो विवादमापन्नः । तेषामस्माकं G. M. 10
पाण्डुलोहितकानां भिक्षूणां कलहकारकाणां भण्डनकारकाणां विग्रहकारकाणां विवादकारकाणामाधिकरणिकानां संघेन तर्जनीयं कर्म कृतम् । ते वयं तर्जनीयकर्मकृता उत्कचप्रकचाः संघे रोम पातयामः । निःसरणं प्रवर्तयामः । समीचीमुपदर्शयामः । अन्तःसीमायां स्थित्वा ओसारणां याचामहे । कलहकारकत्वाच्च प्रतिविरमामः । ओसरयत्वस्माकं भदन्तः संघः । पाण्डुलोहितकान् भिक्षून् कलहकारकान् विवादकारकान् आधिकरणिकांस्तर्जनीयकर्मकृताननुकम्पयानुकम्पामुपादाय । एवं द्विरपि त्रिरपि । ततः पश्चादेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्त्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । इमे पाण्डुलोहितिका भिक्षवः कलहकारका यावदाधिकरणिकाः । एते अभीक्ष्णं संघे अधिकरणान्युत्पादयन्ति, येन संघः कलहजातो विहरति

भण्डनजातो विगृहीतो विवादमापन्नः । तदेषां संघे [न] कलहकारक इति तर्जनीयकर्म कृतम् । त एते तर्जनीयकर्मकृता उत्कचप्रकचाः संघे रोम पातयन्ति । निःसरणं प्रवर्तयन्ति । समीचीमुपदर्शयन्ति । अन्तःसीमायां स्थित्वा ओसारणां याचन्ते । कलहकारकत्वाच्च प्रतिविरमाम इति वदन्ति । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः पाण्डुलोहितकान्भिक्षून् ओसारयन्ति । निःसरणं प्रवर्तयन्ति । एषा ज्ञप्तिः । ततःकर्म कर्त्तव्यम् ।

G.M. 11 शृणोतु भदन्तः संघः । इमे पाण्डुलोहितका भिक्षवः कलहकारका यावदाधिकरणिकाः । त एते अभीक्ष्णं संघे अधिकरणान्युत्पादयन्ति येन संघः कलहजातो विहरति भण्डनजातो विगृहीतो विवादमापन्नः । तदेतेषां संघेन कलहकारका इति तर्जनीयकर्म कृतम् । त एते तर्जनीयकर्मकृता उत्कचप्रकचाः संघे रोम पातयन्ति । निः सरणां प्रवर्तयन्ति । समीचीमुपदर्शयन्ति । अन्तःसीमायां स्थित्वा ओसारणां याचन्ते । कलहकारकत्वाच्च प्रतिविरमाम इति वदन्ति । तत्संघः पाण्डुलोहितकान् भिक्षून्कलहकारकांस्तर्जनीयकर्मकृतानोसारयन्ति । येषामायुष्मतां क्षमन्ते पाण्डुलोहितकान्भिक्षून्कलहकारकांस्तर्जनीयकर्मकृतानोसारयितुं ते तूष्णीम् । न क्षमन्ते भाषन्ताम् । ओसारिताः संघेन पाण्डुलोहितका भिक्षवः कलहकारकास्तर्जनीयकर्मकृताः । क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात्तूष्णीमेवमेतद्धारयामि ।

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन श्रेयको भिक्षुरभीक्ष्णापत्तिकोऽभीक्ष्ण संघावशेषामापत्तिमापद्यते । तस्य भिक्षवः परिवासं ददन्तो मूलपरिवासं मानाप्यमावर्हन्तश्च बहुकृत्या बहुकरणीया रिञ्चंत्युद्देशं पाठं

G.M. 12 स्वाध्यायं योगं मनसिकारमध्यात्मं चेतःक्षमथम् । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । कुरुत यूयं भिक्षवः श्रेयकस्य भिक्षोरभीक्ष्णापत्तिकस्य [नि] मर्हणीयं कर्म इति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

पंचभिः कारणैर्निगर्हणीयं कर्म कृतमधर्मकर्म तदविनयकर्म च संघश्च तेन सातिसारः । कतमैः पंचभिः । अचोदयित्वा कुर्वन्ति । अस्मारयित्वा अवस्तुकमप्रतिज्ञया असंमुखीभूतस्य कुर्वन्ति । पंचभिस्तु कारणैर्निगर्हणीय कर्म कृतं धर्मकर्म च तद्विनयकर्म च संघश्च तेन [न] सातिसारः । कतमैः पंचभिः । चोदयित्वा कुर्वन्ति । स्मारयित्वा सवस्तुकं प्रतिज्ञया संमुखीभूतस्य ।

एवं च पुनः कर्तव्यम् । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून् समनुयुज्य सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतिते एकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अयं श्रेयको भिक्षुरभीक्ष्णापत्तिकः अभीक्ष्णं संघावशेषामापत्तिमापद्यते । तदस्य भिक्षवः परिवासं ददन्तो मूलपरिवासं मानाप्यमावर्हन्तश्च बहुकृत्या भवन्ति बहुकरणीया रिञ्चंत्युद्देशं पाठं स्वाध्यायं योगं मनसिकारमध्यात्मं चेतःशमथम् । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः श्रेयकस्य भिक्षोरभीक्ष्णापत्तिकस्य निगर्हणीयं कर्म कुर्यादिति । एषा ज्ञप्तिः । एवं च कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अयं श्रेयको भिक्षुरभीक्ष्णापत्तिकः अभीक्ष्णं संघावशेषामापत्तिमापद्यते । तदस्य भिक्षवः परिवासं ददन्तो मूलपरिवासं मानाप्यमावर्हन्तश्च G.M. 13
बहुकृत्या भवन्ति बहुकरणीया रिञ्चंत्युद्देशं पाठं स्वाध्यायं योगं मनसिकारमध्यात्मं चेतःशमथम् । तत्संघः श्रेयकस्य भिक्षोरभीक्ष्णापत्तिकस्य निगर्हणीयं कर्म करोति । येषामायुष्मतां क्षमन्ते श्रेयकस्य भिक्षोरभीक्ष्णापत्तिकस्य निगर्हणीयं कर्म कर्तुं ते तूष्णीम् । न क्षमन्ते भाषन्ताम् । इयं प्रथमा कर्मवाचना । एवं द्वितीया तृतीया कर्मवाचना कर्तव्या । कृतं संघेन श्रेयकस्य भिक्षोरभीक्ष्णापत्तिकस्य निगर्हणीयं कर्म । क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात्तूष्णीमेवमेतद्धारयामि ।

निगर्हणीयकर्मकृतस्याहं भिक्षोरासमुदाचारिकान् [धर्मान्] प्रज्ञपयामि । निगर्हणीयकर्मकृतेन भिक्षुणा न प्रव्राजयितव्यम् । नोपसंपादयितव्यम् । न निश्रयो देयः । [न] श्रमणोद्देश उपस्थापयितव्यः । पूर्ववद्यावत्तर्जनीयकर्मकृतस्य वक्तव्यम् । निगर्हणीयकर्मकृतो भिक्षुर्यथा प्रज्ञप्तानासमुदाचारिकान् धर्मान्न समादाय वर्तते सातिसारो भवति ।

स एवं निगर्हणीयकर्मकृत उत्कचप्रकचः संघे रोम पातयति । पूर्ववद्यावत्सीमायां स्थित्वा ओसारणां याचते । अभीक्ष्णापत्तिकत्वाच्च प्रतिविरमामीति वदति । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ओसारयत यूयं भिक्षवः श्रेयकस्य भिक्षोर्निगर्हणीयकर्मकृतमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवं जातीयः ।

पंचभिर्धर्मैः समन्वागतो निगर्हणीयकर्मकृतः ओसारयितव्यः । कतमैः पंचभिः । G.M. 14
उत्कचप्रकचः संघे रोम पातयति । निःसरणं प्रवर्तयति । समीचीमुपदर्शयति । अन्तःसीमायां स्थित्वा ओसारणां याचते । अभीक्ष्णापत्तिकत्वाच्च प्रतिविरमामीति वदति ।

एवं च पुनर्वोसारयितव्यः । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून्समनुयुज्य सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतिते श्रेयकेन भिक्षुणा वृद्धान्ते उत्कुटुकेन स्थित्वा अंजलिं प्रगृह्य इदं स्याद्वचनीयम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । अहं श्रेयको भिक्षुरभीक्ष्णापत्तिकः अभीक्ष्णं संघावशेषामापत्तिमापद्ये तन्मे भिक्षवः परिवासं ददन्तो मूलपरिवासं मानाप्यमावर्हन्तश्चेति बहुकृत्या भवन्ति बहुकरणीयाः रिञ्चंत्युद्देशं पाठं स्वाध्यायं योगं मनसिकारमध्यात्मं चेतःशमथम् । मम संघेन निगर्हणीयं कर्म कृतम् । सोऽहं निगर्हणीयकर्मकृत उत्कचप्रकचः संघे रोम पातयामि । निःसरणं प्रवर्तयामि । समीचीमुपदर्शयामि । अन्तःसीमायां स्थित्वा ओसारणां याचे । अभीक्ष्णापत्तिकत्वाच्च प्रतिविरमामि । ओसारयतु मां भदन्तः संघः श्रेयकं भिक्षुमभीक्ष्णापत्तिकं निगर्हणीयकर्मकृतमनुकम्पयानुकम्पामुपादाय । एवं द्विरपि त्रिरपि । ततः पश्चादेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । अयं श्रेयको भिक्षुरभीक्ष्णापत्तिकः पूर्ववद्यावदध्यात्मं चेतःशमथम् । तस्य संघेनाभीक्ष्णापत्तिक इति निगर्हणीयकर्मकृतमोसारयेदिति । एषा ज्ञप्तिः ।

G.M. 15 एवं च कर्म कर्तव्यम् । निगर्हणीयकर्मकृत उत्कचप्रकचः संघे रोम पातयति । पूर्ववद्यावत् अभीक्ष्णापत्तिकत्वाच्च प्रतिविरमामीति वदति । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः श्रेयकं भिक्षुमभीक्ष्णापत्तिकं निगर्हणीयकर्मकृतमोसारयेदिति । एषा ज्ञप्तिः । एवं च कर्म कर्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । अयं भदन्त श्रेयको भिक्षुरभीक्ष्णापत्तिकः अभीक्ष्णं संघावशेषामापत्तिमापद्यते । ददता [म] स्य भिक्षवः परिवासम् । भदन्त पूर्ववद्यावदध्यात्मं चेतःशमथम् । तदस्य संघेनाभीक्ष्णापत्तिक इति निगर्हणीयं कर्म कृतम् । सोऽयं श्रेयको भिक्षुरभीक्ष्णापत्तिको निगर्हणीयकर्मकृत उत्कचप्रकचः संघे रोम पातयति । निःसरणं प्रवर्तयति । समीचीमुपदर्शयति । अन्तःसीमायां स्थित्वा ओसारणां याचते । अभीक्ष्णापत्तिकत्वाच्च प्रतिविरमामीति वदति । तत्संघः श्रेयकं भिक्षुमभीक्ष्णापत्तिकं निगर्हणीयकर्मकृतमोसारयति । येषामायुष्मतां क्षमन्ते श्रेयकं भिक्षुमभीक्ष्णापत्तिकं निगर्हणीयकर्मकृतमोसारयितुं ते तूष्णीम् । न क्षमन्ते भाषन्ताम् । इयं प्रथमा कर्मवाचना । एवं द्वितीया तृतीया कर्मवाचना कर्तव्या । ओसारितः संघेन श्रेयको भिक्षुरभीक्ष्णापत्तिको निगर्हणीयकर्मकृतः । क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात्तूष्णीमेवमेतद्धारयामि ।

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन किटागिरीयकावश्वकपुनर्वसुकौ भिक्षू प्रतिवसतः । कुलदूषकौ पापधर्मसमुदाचारौ
G.M. 16 ताविमान्येवंरूपाण्यश्रामणकानि कर्माणि कुरुतः कारयतः । तद्यथा मातृग्रामेण सार्धं संजल्पतः संक्रीडतः संकिलिकिलायेते । औदत्यं द्रवं कायितान्त्यं कुरुतः । अप्येदानीमे-

कासने निषीदतः । एकपङ्क्त्यां भुञ्जाते । एकशरावके विविधानि मद्यपानानि पिबतः । पुष्पाण्युच्चिनुतः उच्चाययतः । माला ग्रथ्नीतः ग्रथनापयतः । अवतंसकान् बध्नीतः बध्नयतः । नृत्यतः नर्तयतः । गायतः गायापयतः । वादतः वादापयतः । सुनृत्येषु सुगीतेषु सुवादितेषु ललाटिकामनुप्रयच्छतः । चीवरकाणि संहृत्य धावतः द्रवतः प्रद्रवतः । ऊरुपरिवर्तमपि कुरुतः । बाहुपरिवर्तमपि । रोहितावर्तमपि । जलशिक्यकयापि विध्यतः । जरुयंत्रकं जरुभेरिकामपि वादयतः । हस्तिक्रौंचमपि क्रुंचतः । अश्वहेषितमपि हेषतः । ऋषभगर्जितमपि गर्जतः । मुखदुन्दुभिकामपि वादयतः । मुखशंखं G.M. 17 मुखभेरीम् । मयूरविरुतमपि केकायेते कोकिलविरुतमपि विकूजतः । हस्तियुद्धमपि कुरुतः । अश्वयुद्धम् ऋषभयुद्धं महिषयुद्धमजयुद्धं पिण्डकयुद्धं स्त्रीयुद्धं पुरुषयुद्धं कुमारकयुद्धं कुमारिकायुद्धं कुक्कुटयुद्धं वर्तकयुद्धं लावकयुद्धं कुरुतः कारयतः इमानि चान्यानि चाश्रामणकानि कर्माणि कुरुतः कारयतः । तयोस्तया ईर्यया चर्यया प्रतिपत्त्या किटागिरिमनागताश्च भिक्षवो नागच्छन्ति । आगताश्च नाभिरमन्ते त्यजन्ति किटागिरौ वासम् । किटागिरिनिवासिनश्च ब्राह्मणगृहपतयो नात्तमनसो नाभिराद्धाः । नैवासिकानामपि चिरानुगतानां कृच्छ्रेण पिण्डकं दातव्यं कर्तव्यं मन्ये । कः पुनर्वाद आगन्तुकानाम् ।

यावदपरेण समयेनायुष्मानानन्दः काशीषु जनपदेषु चारिकां चरन किटागिरिमनुप्राप्तः । किटागिरौ विहरति किटागिरीयके दावे । अथायुष्मानानन्दः पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय किटागिरिं पिण्डाय प्रविष्टः । स यथा धौतेन पात्रेण किटागिरिं पिण्डाय प्रविष्टस्तथा धौतेनैव पात्रेण प्रतिनिष्क्रान्तः अलब्ध्वा दानमलब्ध्वा प्रत्याख्यानम् । अन्तत एकभिक्षामपि । अथायुष्मत आनन्दस्यैतदभवत् । पूर्वे चायं किटागिरिर्ऋद्धश्चाभूत् स्फीतश्च क्षेमश्च सुभिक्षश्चाकीर्णबहुजनमनुष्यश्च सुलभाश्चारुपिण्डका याचनकेन । एतर्ह्यप्ययं किटागिरिर्ऋद्धश्च स्फीतश्च क्षेमश्च सुभिक्षश्चावकीर्णबहुजनमनुष्यश्च । अथ च पुनरहं यथा धौतेनैव पात्रेण प्रविष्टस्तथा धौतेन पात्रेण प्रतिनिष्क्रान्तः अलब्ध्वा दानमलब्ध्वा G.M. 18 प्रत्याख्यानम् । अन्तत एकभिक्षामपि । मा हैव नु केनचिद् भगवतः श्रावकेण मूढेनाव्यक्तेनाकुशलेन क्लेशवशात्कुलस्त्री वा कुलकुमारी वा आभाषिता वा भविष्यत्यामृष्टा वा परिभाषिता वा ।

तेन खलु समयेन किटागिरीयकानां ब्राह्मणगृहपतीनां संस्थागारे पंचमात्राणि ब्राह्मणगृहपतिशतानि संनिषण्णानि संनिपतितानि केनचिदेव करणीयेन । अथायुष्मानानन्दो येन किटागिरीयकानां ब्राह्मणगृहपतीनां संस्थागारस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य किटा-

गिरीयकान् ब्राह्मणगृहपतीनिदमवोचत् । पूर्वे चायं भदन्त किटागिरिः पूर्ववद्यावदलब्ध्वा एकभिक्षामपि । एवमुक्ताः किटागिरीयका ब्राह्मणगृहपतय इन्द्रियाण्युत्क्षिप्यावस्थिताः । तेन खलु समयेनोदकप्लोतिक उपासकस्तस्यामेव परिषदि संनिषण्णोऽभूत् संनिपतितः । अथोदकप्लोतिक उपासक आयुष्मन्तमानन्दं बाहुं गृहीत्वैकान्ते प्रक्रम्यायुष्मन्तमानन्दमिदमवोचत् । यत् खलु भदन्तानन्द जानीया अस्मिन् किटागिरावश्वकपुनर्वसुकौ भिक्षू प्रतिवसतः कुलदूषकौ पापधर्मसमुदाचारौ तौ मातृग्रामेण सार्धं संजल्पतः पूर्ववद्यावत् ।

आयुष्मन्नानन्द पूर्ववद्यावद् यथा संघावशेषे कुलदूषकशिक्षापदेऽश्वकपुनर्वसुकयोर्भिक्ष्वोः प्रवासनीयं कर्म कुरु । एवं च पुनः कर्तव्यम् । अन्तर्मार्गे स्थित्वा चोदको भिक्षुः संमन्तव्यः । पंचभिर्धर्मैः समन्वागतश्चोदको भिक्षुः पूर्ववद्यावत्कर्म कुर्वन्ति ।

G.M. 19 श्रृणोतु भदन्तः संघः । इमावश्वकपुनर्वसुकौ भिक्षू कुलदूषकौ पापधर्मसमुदाचारौ । आभ्यां कुलानि दूषितानि दृश्यन्तेऽपि श्रूयन्तेऽपि प्रज्ञायन्तेऽपि । पापकश्चानयोः समुदाचारः दृश्यन्तेऽपि श्रूयन्तेऽपि प्रज्ञायन्तेऽपि । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः अश्वकपुनर्वसुकयोर्भिक्ष्वोः कुलदूषकयोः पापधर्मसमुदाचारिणोः प्रवासनीयं कर्म कुर्यादिति । एषा ज्ञप्तिः । एवं च कर्म कर्तव्यं पूर्ववद्यावत् । एवं द्वितीया तृतीया कर्मवाचना कर्तव्या ।

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन श्रावस्त्यामन्यतमः श्रेष्ठी प्रतिवसति आढ्यो महाधनो महाभोगः । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा अष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययादुत्तरे नक्षत्रे प्रसूता । दारको जातः । तस्य ज्ञातयः संगम्य सामागम्य त्रीणि सप्तकान्येकविंशतिदिवसान् जातस्य जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थापयन्ति । किं भवतु दारकस्य नामेति । तेषामेतदभवत् । यस्मादयं दारक उत्तरे नक्षत्रे जातस्तस्माद् भवतु दारकस्योत्तर इति नामेति । तस्योत्तर इति नामधेयं व्यवस्थापितम् । स उन्नीयते वर्धते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैराशु वर्धते ह्रदस्थमिव
G.M. 20 पंकजम् । स यदा महान्संवृत्तस्तदा लिप्यामुपन्यस्तः । संख्यायां गणनायां मुद्रायामुद्धारे न्यासे निःक्षेपे लिप्याः पारं गतः । उद्घाटको वाचकः पण्डितः पटुप्रचारः अष्टासु परीक्षासु कृतावी संवृत्तः । तद्यथा रत्नपरीक्षायां वस्तुपरीक्षायां वस्त्रपरीक्षायां दारुपरीक्षायां हस्तिपरीक्षायामश्वपरीक्षायां स्त्रीपरीक्षायां पुरुषपरीक्षायां च कृतावी संवृत्तः । यावदस्य

पिता कालगतः । उत्तरो गृहस्वामी संवृत्तः । तेनापणः प्रसारितः । क्रीणाति विक्रीणीते । क्रयविक्रयेण जीविकां कल्पयति । सोऽपरेण समयेन भगवतः सकाशमुपसंक्रान्तः । तस्य भगवद्दर्शनात् सद्धर्मश्रवणाच्च भगवच्छासने प्रसादो जातः । प्रसादजातश्च प्रव्रज्याभिलाषी संवृत्तः । स मातुः सकाशमुपसंक्रम्य कथयति । अम्ब अनुजानीहि स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रजामीति । सा कथयति । त्वं ममैकपुत्रः । यावदहं जीवामि तावन्न प्रव्रजितव्यम् । मृतायां मयि यथेष्टं करिष्यसीति । स कथयति । अम्ब समयेनाहं न प्रव्रजामि । यदि त्वं दिवसे दिवसे संघोद्दिष्टकान्भिक्षून्भाजयसीति । सा कथयति । पुत्र एवं करोमीति । स चोत्तरो यत्किंचिदुपार्जयति तत्सर्वं मात्रे तु प्रयच्छति । अम्बा अनेन श्रमणब्राह्मणान्प्रतिपादयति । सास्य माता मत्सरी कुटकुंचिका आगृहीतपरिष्कारा काकायापि बलिं न प्रदातुं व्यवस्यति प्रागेव श्रमणब्राह्मणान्प्रतिपादयिष्यति । ये तु श्रमणब्राह्मणाः पिण्डार्थिनस्तं गृहं G.M. 21
प्रविशन्ति तान् परिभाषते तर्जयति च । प्रेतोपपन्ना इव यूयं नित्यं परगृहेभ्यो भिक्षामटथ इत्ति । तं च पुत्रं विप्रलम्भयति अद्य मया इयंतो भिक्षवो भाजिता इयन्तान् श्रमणब्राह्मणान्भिक्षा दत्तेति । सा तेन मात्सर्येण सेवितेन भावितेन बहुलीकृतेन कालं कृत्वा प्रेतेषूपपन्ना । उत्तरोऽपि मातृवियोगाद्दानानि दत्त्वा पुण्यानि च कृत्वा स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रजितः ।

सोऽपरेण समयेन अक्षषण्डायां व्यवस्थितः । तमागम्य अक्षषंडनिवासी चित्रो गृहपतिर्भगवच्छासने प्रसन्नः । सोऽतीव बुद्धधर्मसंघेषु कारान् करोति । अक्षषंडो नाम अभ्यागतानां भिक्षूणां प्रतिसरणं संवृत्तः । यावदपरेण समयेनायुष्मत उत्तरस्यान्यतमस्मिन् कर्वटके किंचित्करणीयमुत्पन्नम् । स तत्र गतः । आयुष्मान् चोपसेनो बलान्तीपुत्रः पंचशतपरिवारो जनपदचारिकां चरन् अक्षषंडमनुप्राप्तः । अश्रौषीच्चित्रो गृहपतिर्यथा उपसेनो बलान्तीपुत्रः पंचशतपरिवारो जनपदचारिकां चरन्निहानुप्राप्त इति । श्रुत्वा च पुनर्येनायुष्मानुपसेनस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्यायुष्मत उपसेनस्य पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णः । एकान्तनिषण्णं चित्रं गृहपतिमायुष्मानुपसेनो धर्म्यया कथया संदर्शयति समादापयति समुत्तेजयति संप्रहर्षयति । अनेकपर्यायेण धर्म्मया कथया संदर्श्य समानाप्य G.M. 22
समुत्तेज्य संप्रहर्ष्य तूष्णीम् । अथ चित्रो गृहपतिरुत्थायासनादेकांसमुत्तरासंगं कृत्वा येनायुष्मानुपसेनस्तेनाञ्जलिं प्रणम्यायुष्मन्तमुपसेनमिदमवोचत् । अधिवासयतु मे आर्य उपसेनश्चान्तर्गृहे भक्तेन सार्धं भिक्षुसंघेनेति । अधिवासयति आयुष्मानुपसेनश्चित्रस्य

गृहपतेस्तूष्णींभावेन । अथ चित्रो गृहपतिरायुष्मत उपसेनस्य तूष्णींभावेनाधिवासनां
विदित्वा शुचिप्रणीतं खादनीयभोजनीयं समुदानीय कल्यमेवोत्थायासनानि प्रज्ञपयति ।

आयुष्मांश्चोत्तरस्तस्मात्कर्वटकादागतो यावत्पश्यति न शयनासनप्रज्ञप्तिं नाप्याहार-
मुपान्वाहृतम् । स आरामिकमामन्त्रयते । भवन्तः किमल्पोत्सुकास्तिष्ठथ । नासनप्रज्ञप्तिः
क्रियते । नाप्याहार उपान्वाह्रियते । किं भिक्षुसंघेन भक्तच्छेदः करणीय इति । ते
कथयन्ति । चित्रेण गृहपतिना भिक्षुसंघोऽन्तर्गृहे भक्तेनोपनिमन्त्रितः । किं ममागम्यम् ।
न त्वया मा गम्यम् । अपि तु आर्य उपसेनो बलान्तीपुत्रः पंचशतपरिवारो जनपदचारिकां
चरन्निहानुप्राप्तः । स श्रुत्वा संजातामर्षः कथयति । अहं तस्य सर्वत्र पूर्वंगमः ।
कथमसौ मां प्रत्याख्यायायुष्मन्तमुपसेनं बलान्तीपुत्रं भिक्षुसंघमुपनिमन्त्रयति । गच्छामि
तावत्पश्यामीति । स येन चित्रो गृहपतिस्तेनोपसंक्रान्तो यावत्पश्यति चित्रं गृहपतिमासन-
G.M 23 प्रज्ञप्तिं क्रियमाणम् । स भूयस्या मात्रया पर्यवस्थितः । चित्रेण गृहपतिनाभिहितः ।
आर्य शोभनां आसनप्रज्ञप्तिः । शोभनश्चाहार इति । चित्रो गृहपतिस्तिलपूपालिकावणि-
गासीत् । उत्तरः कथयति । गृहपते शोभना आहारप्रज्ञप्तिः शोभनश्चाहारः । किं तु
तिलपूपालिका नास्ति । स कथयति । भदन्तोत्तर विज्ञातम् । येन ह्युपमां तावच्छृणु ॥
उपमया च पुनरिहैके विज्ञपुरुषा भाषितस्यार्थमाजानन्ति । भूतपूर्वं भदन्तोत्तर संबहुला
जाम्बूद्वीपकाः वणिजः सामुद्रं यानपात्रं प्रतिपाद्य काकं कुक्कुटीं चादाय महासमुद्रमवतीर्णा
धनहारकाः । यावदसौ कुक्कुटी कुक्कुटमलभमाना काकेन सार्धं संवासं गता । तयोः संवा-
सात्तस्याः शावको जातः । स काककुक्कुटीकं वाशते । न काको न कुक्कुटः । एवमेव
त्वं मोक्षार्थी प्रव्रजितो मोक्षमार्गमलभमानो तद्वा यद्वा प्रलपसि इति । एवमुक्ते आयुष्मा-
नुत्तरः ताढककुंचिकां च तस्य पुरस्तादुत्सृज्य संप्रस्थितः । तेनोक्तः । भदन्तोत्तर कुत्र
गच्छसि । श्रावस्तीम् । स्वचित्तं प्रतिलभस्व । इहैव तिष्ठ । मा गच्छ । स्थान-
G.M. 24 मेतद्विद्यते यत्त्वया पुनरागत्याहमेव क्षमयितव्य इति । तस्य वचनमवचनीकृत्य समादाय
पात्रचीवरं येन श्रावस्ती तेन चारिकां प्रक्रान्तोऽनुपूर्वेण चारिकां चरन् श्रावस्तीमनुप्राप्तः ।
स भिक्षुभिर्दृष्ट उक्तश्च । स्वागतं स्वागतमायुष्मन्नुत्तर । प्रीता वयं त्वद्दर्शनेन । नो
त्वागमनेन । किं कारणम् । त्वमागम्य चित्रो गृहपतिर्म्रक्षपण्डायां बुद्धधर्मसंघेषु कारान्
करोति । आगन्तुकानां च गमिकानां च म्रक्षपण्डं प्रतिसरणम् । अस्त्येतदेवम् । मया
चित्रो गृहपतिरवस्फंडितः । यथाकथं तेन यथावृत्तमारोचितम् । एतत्प्रकरणं भिक्षवो
भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । कुरुत यूयं भिक्षवः उत्तरस्य भिक्षोर्गृहपतेरवस्फंड-
कस्य प्रतिसंहरणीयं कर्म इति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

पंचभिः कारणैः प्रतिसंहरणीयं कर्म कृतमधर्मकर्म च भवति । पूर्ववद्यावदसंमुखीभूतस्य कुर्वन्ति ।

एवं च पुनः कर्तव्यम् । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून्समनुयुज्य सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतिते एकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अनेनोत्तरेण भिक्षुणा चित्रो गृहपतिरवस्फंडितः । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः उत्तरस्य भिक्षोर्गृहपतेरवस्फंडकस्य प्रतिसंहरणीयं कर्म कुर्यादिति । एषा ज्ञप्तिः । ततः कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अनेनोत्तरेण भिक्षुणा म्रक्षषण्डायां चित्रो गृहपतिरवस्फंडितः । G. M. 25
तत्संघ उत्तरस्य भिक्षोर्गृहपतेरवस्फंडकस्य प्रतिसंहरणीयं कर्म करोति । येषामायुष्मतां क्षमन्ते उत्तरस्य भिक्षोर्गृहपतेरवस्फंडकस्य प्रतिसंहरणीयं कर्म कर्तुं ते तूष्णीम् । न क्षमन्ते भाषन्ताम् । इयं प्रथमा कर्मवाचना । एवं द्वितीया तृतीया कर्मवाचना कर्तव्या । कृतं संघेनोत्तरस्य भिक्षोर्गृहपतेरवस्फंडकस्य प्रतिसंहरणीयं कर्म । क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात्तूष्णीमेवमेतद्धारयामि ।

प्रतिसंहरणीयकर्मकृतस्याहं भिक्षोरासमुदाचारिकान् धर्मान् प्रज्ञपयामि । प्रतिसंहरणीयकर्मकृतेन भिक्षुणा न प्रव्राजयितव्यम् । पूर्ववद्यावत् ।

स एवं प्रतिसंहरणीयकर्मकृत उत्कचप्रकचः संघे रोम पातयति । निःसरणं प्रवर्तयति । समीचोमुपदर्शयति । अन्तःसीमायां च स्थित्वा ओसारणां याचते । गृहपत्यवस्फंडकत्वाच्च प्रतिविरमामीति वदति । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ओसारयत यूयं भिक्षव उत्तरं भिक्षुं प्रतिसंहरणीयकर्मकृतमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

पंचभिः कारणैः प्रतिसंहरणीयकर्मकृत ओसारयितव्यः । कतमैः पंचभिः । उत्कचप्रकचः पूर्ववद्यावद् गृहपत्यवस्फंडकत्वाच्च प्रतिविरमामीति वदति ।

एवं च पुनर्वोसारयितव्यः । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवा- G. M. 26
चिकया भिक्षून्समनुयुज्य सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतिते एकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अनेनोत्तरेण भिक्षुणा म्रक्षपण्डायां चित्रो गृहपतिरवस्फंडितः । तदस्य संघेन गृहपतिरवस्फंडक इति कृत्वा प्रतिसंहरणीयकर्म कृतम् । सोऽयमुत्तरो भिक्षुः प्रतिसंहरणीयकर्मकृत उत्कचप्रकचः पूर्ववद्यावद् गृहपत्यवस्फंडकत्वाच्च प्रतिविरमामीति वदति । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः उत्तरं भिक्षुं प्रतिसंहरणीयकर्मकृतमोसारयेदिति । एषा ज्ञप्तिः । ततो वक्तव्यो गच्छ । तं गृहपतिं क्षमय । ओसारितो भविष्यसीति । स भिक्षुरेवमभिहितो येन म्रक्षपण्डस्तेन चारिकां प्रक्रान्तोऽनुपूर्वेण चारिकां चरन् म्रक्षपण्डमनुप्राप्तः । ततो मार्गश्रमं प्रतिविनोद्य येन चित्रो गृहपतिस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य दक्षिणं बाहुमभिप्रसार्य कथयति । क्षमस्व मम गृहपते । क्षान्तं भदन्तोत्तर यद्येवमिहैव प्रतिवस । गच्छामि तावद्येन ममापराद्धं तस्य निग्रहं करोमि । किं मयापराद्धम् । न तव । येन ममापराद्धम् ।

अथायुष्मानुत्तरो गङ्गातीरं गत्वा त्रिभिस्तालवृन्तः कुटिकां कृत्वा वर्षोपगतः । G.M. 27 तेन शवशीर्षोपमं पात्रं धारितम् । तस्य नातिदूरे मार्गः । तेन सततं गोपाङ्गना गच्छन्ति । स तासां पात्रं प्रसारयति । तस्मिन्दधि वा क्षीरं वा उदश्विद्वानुप्रयच्छन्ति । तत्परिभुज्य ध्यानसमाधिसमापत्तिसुखानि अभिनामयति । यावदपरेण समयेन द्वे गोपाङ्गने गच्छतो माता दुहिता च । दुहिता मातुः कथयति । अम्ब एष आर्यो मूक इति । सा कथयति । पुत्रि नैष मूकः । नूनमनेन कस्यचिद्वाचापराद्धम् । तस्या एष निग्रहं करोतीति । अम्ब किमेतदेवं भविष्यति । पुत्रि श्वोऽहं तव प्रत्यक्षीकरिष्यामीति । यावदपरस्मिन् दिवसे मथितघटं गृहीत्वा दुहितृसमेता तं प्रदेशमागता । आयुष्मतोत्तरेण पात्रं प्रसारितम् । सा तस्य पात्रं मथितस्य पूरयितुमारब्धा । आयुष्मानुत्तरः पात्रं चालयति । सा ददात्येव । न संतिष्ठते । आयुष्मानुत्तरः कथयति । अलं भगिनि । किमनेन निरर्थकेन केनचिच्छोरितेन । सन्त्यन्ये अस्मद्विधाः प्रतिग्राहका इति । सा कथयति । पुत्रि न त्वं मया पूर्वमुक्ता । नायं मूकः । नूनमनेन कस्यचिद्वाचापराद्धम् । तस्या एष निग्रहं करोतीति । अवोचस्त्वमम्ब इति । तत्रायुष्मता उत्तरेण द्वाभ्यामन्तर्वर्षाभ्यामेका वाग्भाषिता । तृतीयेऽन्तर्वर्षे इदमेव पञ्चगण्डकं संसारचक्रं चलाचलं विदित्वा सर्वसंस्कारगतीः शतनपतनविकिरणविध्वंसनधर्मतया पराहत्य तमःस्कंधः प्रदालितः । अर्हन् संवृत्तः । पूर्ववद्यावत्पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च संवृत्तः । आयुष्मानुत्तरोऽर्हत्त्वप्राप्तो विमुक्तिप्रीतिसुखसंवेदी तस्यां वेलायां गाथां भाषते ।

G.M. 28 त्रिभिर्मया तालवृन्तैर्गङ्गातीरे कुटी कृता ।
शवशीर्षोपमं पात्रं पांसुकुलं च चीवरम् ॥३॥

द्वाभ्यामन्तर्वर्षाभ्यामेका वाग्भाषिता मया ।
तृतीये अन्तर्वर्षे तु तमःस्कन्धः प्रदालितः ॥४॥
गङ्गातीरनिवासी तु उत्तरः स्थविरो वशी ।
विमुक्तचित्तो हि अर्हन्निमा गाथा अभाषत ॥५॥

बुद्धो भगवान् कौशाम्ब्यां विहरति घोषिलारामे । तेन खलु समयेनायुष्मांश्छन्द आपत्तिमापन्नो न पश्यति । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । कुरुत यूयं भिक्षवश्छन्दस्य भिक्षोरापत्तेरदर्शनायोत्क्षेपणीयं कर्म इति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

पंचभिः कारणैरापत्तेरदर्शनादुत्क्षेपणीयं कर्म कृतमधर्मकर्म च तद [विनय] कर्म च संघश्च तेन सातिसारः । कतमैः पंचभिः । अचोदयित्वा कुर्वन्ति पूर्ववद्यावदेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । अयं छन्दो भिक्षुरापत्तिमापन्नो यथाधर्मं न प्रतिकरोति । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात् संघो यत्संघश्छन्दस्य भिक्षोरापत्तेरदर्शनायोत्क्षेपणीयं कर्म कुर्यादिति । एषा ज्ञप्तिः । कर्म कर्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । अयं छन्दो भिक्षुरापत्तिमापन्नो यथाधर्मं न प्रतिकरोति । तत्संघश्छन्दस्य भिक्षोरापत्तेरदर्शनायोत्क्षेपणीयं कर्म करोति । यथा चायुष्मतां [क्षमन्ते] G. M. 29
छन्दस्य भिक्षोरापत्तेरदर्शनायोत्क्षेपणीयं कर्म कर्तुं ते तूष्णीम् । न क्षमन्ते भाषन्ताम् । इयं प्रथमा कर्मवाचना । पूर्ववद्यावद्यथा पाण्डुलोहितिकानामेतदेव निदानम् ।

आयुष्मांश्छन्द आपत्तिमापन्नो यथाधर्मं न प्रतिकरोति । स सब्रह्मचारिभिरर्थकामैः पूर्ववद्यथा विभङ्गे । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । कुरुत यूयं भिक्षवश्छन्दस्य भिक्षोरापत्तेरप्रतिकर्मायोत्क्षेपणीयं कर्म इति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

पंचभिः कारणैरापत्तेरप्रतिकर्मायोत्क्षेपणीयं कर्म कृतमधर्मकर्म च तदविनयकर्म [च] संघश्च तेन सातिसारः । कतमैः पंचभिः । अचोदयित्वा कुर्वन्ति । पूर्ववद्यावदेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । अयं छन्दो भिक्षुरापत्तिमापन्नो यथाधर्मं न प्रतिकरोति । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघश्छन्दस्य भिक्षोरापत्तेरप्रतिकर्मायोत्क्षेपणीयं कर्म कुर्यादिति । एषा ज्ञप्तिः । कर्म कर्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः। अयं छन्दो भिक्षुरापत्तिमापन्नो यथाधर्मं न प्रतिकरोति। तत्संघश्छन्दस्य भिक्षोरापत्तेरप्रतिकर्मायोत्क्षेपणीयं कर्म करोति। येषामायुष्मतां क्षमन्ते-
G.M. 30 च्छन्दस्य भिक्षोरापत्तेरप्रतिकर्मायोत्क्षेपणीयं कर्म कर्तुं ते तूष्णीम्। न क्षमन्ते भाषन्ताम्। इयं प्रथमा कर्मवाचना। पूर्ववद्यावत्पाण्डुलोहितिकानाम्।

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डदस्यारामे। तेन खलु समयेनारिष्टस्य भिक्षोरिदमेवंरूपं पापकं दृष्टिगतमुत्पन्नम्। तथाहं भगवतो धर्मं देशितमाजानामि यथा ये आन्तरायिका धर्मा उक्ता भगवता ते च प्रतिसेव्यमाना नालमन्तरायाय इति। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। कुरुत यूयं भिक्षवः अरिष्टस्य भिक्षोरप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयं कर्म इति। यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः।

पंचभिः कारणैरप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयं कर्म कृतमधर्मकर्म च तदविनयकर्म च संघश्च तेन सातिसारः। कतमैः पंचभिः। अचोदयित्वा कुर्वन्ति। पूर्ववद्यावदेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम्।

श्रृणोतु भदन्तः संघः। अस्यारिष्टस्य भिक्षोरिदमेवंरूपं पापकं दृष्टिगतमुत्पन्नम्। तथाहं भगवतो धर्मं देशितमाजानामि यथा ये आन्तरायिका धर्मा उक्ता भगवता पूर्ववद्यावत् संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीत्यासंघो यत्संघः अरिष्टस्य भिक्षोरप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयं कर्म कुर्यादिति। एषा ज्ञप्तिः। कर्म कर्तव्यम्।

G.M. 31 श्रृणोतु भदन्तः संघः। अस्यारिष्टस्य भिक्षोरिदमेवंरूपं पापकं दृष्टिगतमुत्पन्नम्। तथाहं भगवतो धर्मं देशितमाजानामि पूर्ववद्यावत् संघः अरिष्टस्य भिक्षोरप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयं कर्म करोति। येषामायुष्मतां क्षमन्ते अरिष्टस्य भिक्षोरप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयं कर्म कर्तुं ते तूष्णीम्। न क्षमन्ते भाषन्ताम्। इयं प्रथमा कर्मवाचना पूर्ववद्यावत् पाण्डुलोहितिकानाम्।

स एषः अप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयकर्मकृत उत्कचप्रकचः संघे रोम पातयति। पूर्ववद्यावद् दृष्टिगतं प्रतिनिसृजामीति वदति। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। ओसारयत यूयं भिक्षवः अरिष्टं भिक्षुमप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयकर्मकृतमिति। यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः।

पंचभिः कारणैः प्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयकर्मकृत ओसारयितव्यः। कतमैः पंचभिः। उत्कचप्रकचः संघे रोम पातयति। पूर्ववद्यावदेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं

कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अस्यारिष्टस्य भिक्षोरिदमेवंरूपं पापकं दृष्टिगतमुत्पन्नम् । तथाहं भगवतो धर्मं देशितमाजानामि यथा ये आन्तरायिका धर्मा उक्ता भगवता ते प्रतिसेव्यमाना नालमन्तरायाय इति । तदस्य संघेन प्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयं कर्म कृतम् । सोऽयमरिष्टो भिक्षुरप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेप- G. M. 32 णीयकर्मकृत उत्कचप्रकचः पूर्ववद्यावद् दृष्टिगतं च प्रतिनिसृजामीति वदति । स चेत्-संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः अरिष्टं भिक्षुमप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयकर्मकृतमोसारयेदिति । एषा ज्ञप्तिः । एवं च कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अस्यारिष्टस्य भिक्षोरिदमेवंरूपं पापकं दृष्टिगतमुत्पन्नम् । पूर्ववद्यावत् संघः अरिष्टं भिक्षुमप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्पेक्षणीयकर्मकृतमोसारयति । येषामायुष्मतां क्षमन्ते अरिष्टमप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्पेक्षणीयकर्मकृतमोसारयितुं ते तूष्णीम् । न क्षमन्ते भाषन्ताम् । इयं प्रथमा कर्मवाचना । एवं द्वितीया तृतीया कर्मवाचना । पूर्ववद्यावत् तूष्णीमेवमेतद्धारयामि ।

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेनायुष्मानुदायी संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमास-प्रतिच्छन्नाम् । स एतत्प्रकरणं भिक्षूणामारोचयति । अहमायुष्मन्तं संघावशेषामापत्तिमापन्नं संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । किं मया करणीयम् । इत्येतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षव उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

एवं च पुनर्दातव्यः । उदायिना भिक्षुणा शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य G. M. 33 पृष्टवाचिकया भिक्षून्समनुयुज्य सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतिते उदायिना भिक्षुणा वृद्धान्ते उत्कुटुकेन स्थित्वा अञ्जलिं प्रगृह्य परिवासो याचितव्यः । एवं च पुनर्याचितव्यः ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अहमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । सोऽहमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासं याचे । ददातु मे भदन्तः संघो ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासमनुकम्पयानुकम्पामुपादाय । ततः पश्चादेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः। अयमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम्। सोऽयमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासं याचते। स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासं दद्यादिति। एषा ज्ञप्तिः। एवं च कर्म कर्तव्यम्।

G.M. 34 शृणोतु भदन्तः संघः। अयमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम्। सोऽयमुदायी भिक्षुः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुथिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासं याचते। तत्संघः उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासं ददाति। येषामायुष्मतां क्षमन्ते उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासं दातुं ते तूष्णीम्। न क्षमन्ते भाषन्ताम्। इयं प्रथमा कर्मवाचना। एवं द्वितीया तृतीया कर्मवाचना कर्तव्या। दत्तः संघे [न] उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः। क्षान्तमनुज्ञातं संघेन [यस्मात्] तूष्णीमेवमेतद्धारयामि।

स पारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्। स एतत्प्रकरणं भिक्षूणामारोचयति। [अहमस्मि] आयुष्मन्त उदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम्। तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासोयाचितः। दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः
G.M. 35 संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः अर्धमासं [परिवासः]। सोऽहं पारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्। किं मया करणीयमिति। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। ददत यूयं भिक्षव उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेरन्तरापत्तेः पूर्वापत्ति [प्रति] रूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासमिति। यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः।

एवं च पुनर्दातव्यः। शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून्समनुयुज्य सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतिते उदायिना भिक्षुणा वृद्धान्ते उत्कुटुकेन स्थित्वा अंजलिं प्रगृह्य इदं स्याद्वचनीयम्।

शृणोतु भदन्तः संघः। अहमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम्। [तेन मया] उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः। दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः। सोऽहं पारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्। सोऽहमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया आपत्तेरन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलपरिवासं [याचे]। ददातु भदन्तः संघो ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः आपत्तेरन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूल- G.M. 36 परिवासमनुकम्पयानुकम्पामुपादाय। एवं द्विरपि त्रिरपि। ततः पश्चादेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम्।

शृणोतु भदन्तः संघः। अयमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम्। तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः। दत्तः संघेनास्योदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः। सोऽयं पारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्। सोऽयमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलपरिवासं याचते। स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेरन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासं दद्यादिति। एषा ज्ञप्तिः। कर्म कर्तव्यम्।

शृणोतु भदन्तः संघः। अयमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्ति[मापन्नः] संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम्। तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषा [या] आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः। दत्तः संघेनास्योदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया G.M. 37 आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासं परिवासः। सोऽयं पारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्। सोऽयमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलपरिवासं

याचते । तत्संघ उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासं ददाति । येषामायुष्मतां क्षमन्ते उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया [आपत्ते] रन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासं दातुं ते तूष्णीम् । न क्षमन्ते भाषन्ताम् । इयं प्रथमा कर्मवाचना । एवं द्वितीया तृतीया कर्मवाचना वक्तव्या । दत्तः संघेन उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेरन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः । क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात्तूष्णीमेवमेतद्धारयामि ।

स मूलपारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । स एतत्प्रकरणं भिक्षूणामारोचयति । अहमस्यायुष्मन्त उदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः । दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षो- G.M. 38 रस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितायाः अर्धमासं परिवासः । सोऽहं पारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलपरिवासो याचितः । दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः । सोऽहं मूलपारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिम् [अन्तरापत्तिप्रति]रूपां प्रतिच्छन्नाम् । किं मया करणीयमिति । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षव उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

एवं च पुनर्दातव्यः । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून्समनुयुज्य सर्वसंघे सन्निषण्णे सन्निपतिते उदायिना भिक्षुणा वृद्धान्ते उत्कुटुकेन स्थित्वा अञ्जलिं प्रगृह्य इदं स्याद्वचनीयम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अहमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः । दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य

शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः। सोऽहं पारिवासिक G. M. 39 एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्। तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया [अन्तरा]पत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलपरिवासो याचितः। दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः। सोऽहं मूलपारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्। सोऽहमस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलापकर्षं याचे। ददातु भदन्तः संघो ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षमनुकम्पयानुकम्पामुपादाय। एवं द्विरपि त्रिरपि। ततः पश्चादेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम्।

श्रृणोतु भदन्तः संघः। अयमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम्। तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः। दत्तः संघेनास्योदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः। सोऽयं पारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्ति [प्रतिरूपां] प्रतिच्छन्नाम्। तेनानेन G. M. 40 उदायिना भिक्षुणा[स्याः] संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलपरिवासो याचितः। दत्तोऽस्य संघेनोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्ति[प्रति]रूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः। सोऽयं मूलपारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्। सोऽयमस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलापकर्षं याचते। स चेत् संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षं दद्यादिति। एषा ज्ञप्तिः। कर्म कर्तव्यम्।

श्रृणोतु भदन्तः संघः। अयमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः सञ्चिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम्। तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः। दत्तः संघेनास्योदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः। सोऽयं पारिवासिक एव

संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेरन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूल-
G. M. 41 परिवासो याचितः । दत्तः संघेनास्योदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः । सोऽयं मूलपारिवासिक एव संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्ति[मन्तरा]पत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । सोऽयमस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलापकर्षं याचते । तत्संघः उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षं ददाति । येषामायुष्मतां क्षमन्ते उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षं दातुं ते तूष्णीम् । न क्षमन्ते भाषन्ताम् । इयं प्रथमा कर्मवाचना । एवं द्वितीया तृतीया कर्मवाचना कर्तव्या । दत्तः संघेन उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षः । क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात्तूष्णीमेवमेतद्धारयामि ।

सोऽपरेण समयेन संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासः अन्तरापत्तेः पर्युषितमूलपरिवासः प्रत्यन्तरापत्तेर्मूलापकर्षपर्युषितो भिक्षूणामारोचयति । अहमस्म्यायुष्मन्त उदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः । दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः
G. M. 42 संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः । सोऽहं पारिवासिक एव संघावशेषामपत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलपरिवासो याचितः । दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः । सोऽहं मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलापकर्षो याचितः । दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोर[स्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्त]रापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षः । सोऽहमस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासः । अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया

मूलपरिवासपर्युषितः । प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपाया मूलापकर्षपर्युषितः । किं मया करणीयम् । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षव उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासपर्युषितपरिवासस्यान्तरापत्तेर्मूलपरिवासपर्युषितस्य प्रत्यन्तरा- G. M. 43 पत्तेर्मूलापकर्षपर्युषितस्य षड्रात्रं मानाप्यमिति । यो वा पुनरन्योप्येवंजातीयः ।

एवं च पुनर्दातव्यः । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून्समनुयुज्य सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतिते उदायिना भिक्षुणा वृद्धान्ते उत्कुटुकेन स्थित्वा अंजलिं प्रगृह्य इदं स्याद्वचनीयम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अहमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः । दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः । सोऽहं पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नान् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलपरिवासो याचितः । दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः । सोऽहं मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलापकर्षो याचितः । दत्तः संघेन G. M. 44 ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षः ।

सोऽहमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासः अन्तरापत्तेर्मूलपरिवासपर्युषितः प्रत्यन्तरापत्तेर्मूलापकर्षपर्युषितः संघात् षड्रात्रं मानाप्यं याचे । ददातु भदन्तः संघो ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासस्य अन्तरापत्तेर्मूलपरिवासपर्युषितस्य प्रत्यन्तरापत्तेर्मूलापकर्षपर्युषितस्य षड्रात्रं मानाप्यमनुकम्पयानुकम्पामुपादाय । एवं द्विरपि त्रिरपि । ततः पश्चादेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्त्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । अयमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः । दत्तोऽस्य संघेनोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः । सोऽयं पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया G. M. 45 मूलपरिवासो याचितः । दत्तः संघेनास्योदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया [मूलपरिवासः । सोऽयं] मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्ति [मन्तरापत्ति] प्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेनानेनोदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलापकर्षो याचितः । दत्तः संघेनास्योदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षः ।

सोऽयमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासः अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः मूलापकर्षपर्युषितः षड्रात्रं मानाप्यं याचते । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासस्यान्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितस्य प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितस्य षड्रात्रं मानाप्यं दद्यादिति । एषा ज्ञप्तिः । एवं च कर्म कर्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । अयमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य G. M. 46 शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्र[ति]च्छन्नाम् । तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः । दत्तोऽस्य संघेनोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः । सोऽयं पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्ति [प्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः [प्रतिच्छन्नायाः] संघान्मूलपरिवासो याचितः । दत्तः संघेनास्योदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया

अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः । सोऽयं मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः प्रत्यन्तरापत्ते[रन्तरापत्ति] प्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलापकर्षो याचितः । दत्तः संघेनास्योदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तरेन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षः । सोऽयमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासः अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितः षड्रात्रं मानाप्यं याचते । तत्संघः उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टि- G. M. 47
समुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासस्यान्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितस्य प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितस्य षड्रात्रं मानाप्यं ददाति । येषामायुष्मतां क्षमन्ते उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासस्यान्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितस्य प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितस्य षड्रात्रं मानाप्यं दातुं ते तूष्णीम् । न क्षमन्ते भाषन्ताम् । इयं प्रथमा कर्मवाचना । एवं द्वितीया तृतीया कर्मवाचना वक्तव्या । दत्तं संघेनोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासस्यान्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितस्य प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितस्य षड्रात्रं मानाप्यम् । क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात्तूष्णीमेवमेतद्धारयामि ।

सोऽपरेण समयेन संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासः अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितः षड्रात्रं चीर्णं मानाप्यं भिक्षूणामारोचयति । अहमस्यायुष्मन्नुदायी भिक्षुः संघावशेषा- G. M. 48
मापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासं परिवासो याचितः । दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः । सोऽहं

पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेरन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलपरिवासो याचितः । दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः । सोऽहं मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्ति[मन्तरापत्ति]प्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलापकर्षो याचितः । दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षः । तेन मया उदायिना भिक्षुणा संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासेनान्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितेन प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया
G. M. 49 मूलापकर्षपर्युषितेन संघात् षड्रात्रं मानाप्यं याचितम् । दत्तं संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासस्यान्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितस्य प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितस्य षड्रात्रं मानाप्यम् । सोऽहमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासः । अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितः । प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितः । षड्रात्रं चरितमानाप्यम् । किं मया करणीयम् । एतत् प्रकरणम् भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । आवर्हत यूयं भिक्षव उदायिनं भिक्षुमस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासम् । अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितम् । प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितम् । षड्रात्रं चरितमानाप्यमिति । यो वा पुनरन्योप्येवंजातीयः ।

एवं च पुनरावर्हितव्यः । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून्समनुयुज्य सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतिते उदायिना भिक्षुणा वृद्धान्ते उत्कुटुकेन स्थित्वा चाञ्जलिं प्रगृह्य इदं स्याद्वचनीयम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अहमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य
G. M. 50 शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः

संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः। दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शु [क्र] विसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः। सोऽहं पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्। तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलपरिवासो याचितः। दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः। सोऽहं मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्। तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलापकर्षो याचितः। दत्तः संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षः। तेन मया उदायिना भिक्षुणास्याः, संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासेनान्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितेन प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितेन षड्रात्रं मानाप्यं याचितम्। दत्तं संघेन ममोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासस्यान्तरापत्तेः G. M. 51 पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितस्य प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितस्य षड्रात्रं मानाप्यम्। सोऽहमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासः अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितः षड्रात्रं चीर्णमानाप्यं संघादावर्हणं याचे। आवर्हतु मां भदन्तः संघः उदायिनं भिक्षुमस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः परिवासपर्युषितमन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितं प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितं षड्रात्रं चीर्णमानाप्यमनुकम्पयानुकम्पामुपादायेति। एवं द्विरपि त्रिरपि। ततः पश्चादेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम्।

शृणोतु भदन्तः संघः। अयमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम्। तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो

याचितः । दत्तोऽस्य संघेन उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः । सोऽयं पारिवासिक G. M. 52 एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासो याचितः । दत्तोऽस्य संघेन उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः । सोऽयं मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः संघान्मूलापकर्षो याचितः ।

दत्तोऽस्य संघेन उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षः । तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासेन अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितेन प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितेन संघात् षड्रात्रं मानाप्यं याचितम् । दत्तमस्य संघेनोदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासस्यान्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितस्य प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपाया मूलापकर्षपर्युषितस्य षड्रात्रं चीर्णमानाप्यम् । सोऽयमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य G. M. 53 शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासः अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितः षड्रात्रं चरितमानाप्यम् संघादावर्हणं याचते । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः उदायिनं भिक्षुमस्याः संघावशेषायाः आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासमन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितं प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितं षड्रात्रं चरितमानाप्यमावर्हेदिति । एषा ज्ञप्तिः ।

ततः पश्चादवसादयितव्यः । न साधूदायि [न्] कृतम् । न सुष्ठु कृतम् । कथमिदानीं त्वं तस्य भगवतस्तथागतस्यार्हतः सम्यक्संबुद्धस्यैवं [धर्मे] रागविरागाय चेतोविमुक्तः । प्रज्ञाविमुक्ते धर्मे देश्यमाने द्वेषविरागाय मोहविरागाय चेतोविमुक्तः । प्रज्ञाविमुक्ते धर्मे देश्यमाने इदमेवंरूपमप्रासादिकमकार्षीः । वरं खलु ते

मोहपुरुष आशीविषो घोरविषः कृष्णसर्पस्तीक्ष्णविषः उभाभ्यां पाणिभ्यां [प्रतिगृहीतोऽभविष्यत् न त्वेवमिदमेवंरूपमप्रासादिकं कृतम् ।

द्वाविमौ धर्मोल्कां निर्वापयतो धर्मालोकं धर्माभां धर्मप्रभासं धर्मप्रदीपं धर्मप्रद्योतम् । कतमौ द्वौ । यश्चापत्तिमापद्यते । यश्चापत्तिमापन्नो यथाधर्मं न प्रतिकरोति । द्वावघमूलं G. M. 54 न खनतः प्रतिस्रोतो [न] व्यायच्छतो न सरितां लतां शोषयतो न मारं योधयतो न मारध्वजं पातयतो न धर्मध्वजमुच्छ्रापयतो न तथागतस्य धर्म्यं धर्मचक्रं प्रव[र्तय]तः [न] तमनुप्रवर्तयतः । कतमौ द्वौ । यश्चापत्तिमापद्यते । यश्चापत्तिमापन्नो यथाधर्मं न प्रतिकरोति ।

अनया त्वमुदायिन्नापत्त्या अदेशितया अप्रतिदेशितया अभव्योऽनित्यसंज्ञाया अनित्ये दुःखसंज्ञाया दुःखे अनात्मसंज्ञाया आहारे अप्रतिरूपसंज्ञायाः सर्वलोके अनभिरतिसंज्ञाया आदीनवसंज्ञायाः प्रहाणसंज्ञाया विरागसंज्ञाया निरोधसंज्ञाया मरणसंज्ञाया विनीलकसंज्ञाया विपूयकसंज्ञाया व्याध्मातकसंज्ञाया विपटुमुकसंज्ञाया विखादितकसंज्ञाया विलोहितकसंज्ञाया अस्थिसंज्ञाया विक्षिप्तकसंज्ञायाः शून्यताप्रत्यवेक्षणसंज्ञायाः । अभव्यः प्रथमस्य ध्यानस्य द्वितीयस्य तृतीयस्य ध्यानस्य चतुर्थस्य मैत्र्याः करुणाया मुदिताया उपेक्षाया आकाशानन्त्यायतनस्य विज्ञानानन्त्यायतनस्य आकिंचन्यायतनस्य नैवसंज्ञानासंज्ञायतनस्य स्रोतआपत्तिफलस्य सकृदागामिफलस्य अनागामिफलस्य ऋद्धिविषयस्य दिव्यस्य श्रोत्रस्य चेतःपर्यायस्य पूर्वनिवासस्य च्युत्युपपादस्यास्रवक्षयस्य । अनया ते उदायिन्नापत्त्या अदेशितया अप्रतिदेशितया द्वयोर्गत्योरन्यतरान्यतरा गतिः प्रतिकांक्षितव्या । नरका वा तिर्यञ्चो वा । उक्तं भगवता । द्वे प्रतिच्छन्नकर्मान्तस्य गती । नरका वा तिर्यञ्चो वा । ये मे भाषितं न श्रद्धास्यन्ति ते प्रतिच्छादयितव्यं मंस्यन्ते । G. M. 55

शृणोतु भदन्तः संघः । अयमुदायी भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः संघादर्धमासं परिवासो याचितः । दत्तोऽस्य संघेन उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासः । सोऽयं पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तेनानेन उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासो याचितः । दत्तोऽस्य संघेन उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया अन्तरा-

पत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासः। सोऽयं मूलपारिवासिक एव
सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्। तेनानेन
उदायिना भिक्षुणास्याः संघावशेषायाः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नायाः
संघान्मूलापकर्षो याचितः। दत्तोऽस्य संघेन उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषायाः
प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षः। तेनानेन उदायिना
भिक्षुणास्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रति-
G. M. 56 च्छन्नायाः पर्युषितपरिवासेन अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवास-
पर्युषितेन प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितेन संघात्
षड्रात्रं मानाप्यं याचितम्। दत्तमस्य संघेन उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः
संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासस्यान्तरापत्तेः
पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितस्यान्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः
प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितस्य प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया
मूलापकर्षपर्युषितस्य षड्रात्रं मानाप्यम्। सोऽयमुदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः
संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासः अन्तरापत्तेः
पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रति-
रूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितः षड्रात्रं चरितमानाप्यं संघादावर्हणं याचते।
तत्संघः उदायिनं भिक्षुमस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टि-
समुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासमन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः
प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितं प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया
मूलापकर्षपर्युषितं षड्रात्रं चरितमानाप्यमावर्हति। येषामायुष्मतां क्षमन्ते उदायिनं भिक्षु-
मस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः
G. M. 57 पर्युषितपरिवासमन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया [मूलपरिवासपर्युषितं-
प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया] मूलापकर्षपर्युषितं षड्रात्रं चरित-
मानाप्यमावर्हितुं ते तूष्णीम्। न क्षमन्ते भाषन्ताम्। इयं प्रथमा कर्मवाचना। [एवं]
द्वितीया तृतीया कर्मवाचना कर्तव्या। आवर्हितः संघेन उदायी भिक्षुरस्याः संघावशेषाया
आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नायाः पर्युषितपरिवासः अन्तरा-
पत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलपरिवासपर्युषितः प्रत्यन्तरापत्तेरन्तरापत्ति-
प्रतिरूपायाः प्रतिच्छन्नाया मूलापकर्षपर्युषितः षड्रात्रं चरितमानाप्यम्। क्षान्तमनुज्ञातं
संघेन। यस्मात्तूष्णीमेवमेतद्धारयामि।

ततः पश्चादुत्साहयितव्यः । साधूदायिन् कृतम् । सुष्ठु कृतम् । द्वौ पण्डितौ द्वौ व्यक्तौ द्वौ सत्पुरुषौ । यश्चापत्तिं नापद्यते यश्चापत्तिमापन्नो यथाधर्मं प्रतिकरोति । द्वौ धर्मोल्कां प्रज्वालयतो धर्मालोकं धर्माभां धर्मप्रभां धर्मावभासं धर्मप्रदीपं धर्मप्रद्योतम् । कतमौ द्वौ । यश्चापत्तिं नापद्यते । यश्चापत्तिमापन्नो यथाधर्मं प्रतिकरोति ।

द्वावघमूलं खनतः प्रतिस्रोतो व्यायच्छतः सरितां लतां शोषयतो मारं योधयतो मारध्वजं पातयतो धर्मध्वजमुच्छ्रापयतः पापीयसः स्रोतः [छेदयतः] तथागतस्य धर्म्यं धर्मचक्रं प्रव[र्तय]तोऽनुप्रवर्तयतः । कतमौ [द्वौ] यश्चापत्तिं नापद्यते । यश्चापत्तिमापन्नो यथाधर्मं प्रतिकरोति ।

अनया त्वमुदायिन्नापत्त्या देशितया भव्योऽनित्यसंज्ञाया अनित्ये दुःखसंज्ञाया दुःखे अनात्मसंज्ञाया आहारे अप्रतिकूलसंज्ञायाः सर्वलोके अनभिरतिसंज्ञाया आदीनवसंज्ञाया (G. M. 58) प्रहाणसंज्ञाया विरागसंज्ञाया निरोधसंज्ञाया मरणसंज्ञाया अशुभसंज्ञाया विनीलकसंज्ञाया विपूयकसंज्ञाया विपट्टुमकसंज्ञाया व्याध्मातकसंज्ञाया विखादितकसंज्ञाया विलोहितकसंज्ञाया विक्षिप्तकसंज्ञाया अस्थिसंज्ञायाः शून्यताप्रत्यवेक्षणसंज्ञायाः । भव्यः प्रथमस्य ध्यानस्य द्वितीयस्य तृतीयस्य चतुर्थस्य मैत्र्याः करुणाया मुदिताया उपेक्षाया आकाशानन्त्यायतनस्य विज्ञानानन्त्यायतनस्य आकिंचन्यायतनस्य नैवसंज्ञानासंज्ञायतनस्य स्रोतआपत्तिफलस्य सकृदागामिफलस्य अनागामिफलस्य ऋद्धिविषयस्य दिव्यस्य श्रोत्रस्य चेतःपर्यायस्य पूर्वनिवासस्य च्युत्युपपादस्यास्रवक्षयस्य । अनया ते उदायिन्नापत्त्या देशितया प्रतिदेशितया द्वयोर्गत्योरन्यतरान्यतरा गतिः प्रतिकांक्षितव्या । देवा वा मनुष्या वा ।

उक्तं भगवता । द्वे अप्रतिच्छन्नकर्मान्तस्य गती । देवा[वा] मनुष्या वा । ये मे भाषितमभिश्रद्धास्यन्ति । न ते प्रतिच्छादयितव्यं मन्यन्त इति । पुनश्चोक्तम् ।

छन्नमेवाभिवर्षति विवृतं नाभिवर्षति ।
तस्माच्छन्नं विवृणुयादेवं तं नाभिवर्षति ॥ ६ ॥

आवर्हितस्त्वमुदायिन् संघेन । अप्रमादेन सम्पादय ।

॥ पाण्डुलोहितकवस्तु समाप्तम् ॥

पुद्गलवस्तु

G. M. 61 पिण्डोद्दानम् ।

उदायी समुच्छ्रयः पर्यन्तोऽथापरेण भवति पश्चिमम् ।

उद्दानम् ।

उदायी अन्येन स्मरन्ति लज्जित
इदानीं जानामि द्वय द्वय कृतम् ।
सुदत्त दुर्दत्त चतुष्कभाषितम्
स्मृतिप्रमोषेण चत्वारः प्रकाशिताः ॥ १ ॥

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन उदायी संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । [ए] तत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवः उदायिनो भिक्षोरस्याः संघावशेषाया आपत्तेः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नाया अर्धमासं परिवासमिति । यो वा पुनरन्योप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नाम् । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवोऽस्य पुद्गलस्यास्याः संघावशेषाया आपत्तेरप्रतिच्छन्नायाः षड्रात्रं मानाप्यमिति । यो वा पुनरन्योप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्गलः संधावशेषामापत्तिमापन्नः । स ते द्वे आपत्ती द्वौ मासौ न
G. M. 62 जानाति । द्वयोर्मासयोरत्ययाज्ज्ञात्वा द्वौ मासौ प्रतिच्छाद्य एकां भिक्षूणामारोचयति । [एकां नारोचयति] तस्य संघेन द्वौ मासौ परिवासो दत्तः । स पारिवासिक एव सन् तामन्यापत्तिं प्रतिजानाति या अनेन संघमध्ये नारोचिता । स एतत्प्रकरणं भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्यापत्तेस्तावेव द्वौ मासौ परिवासमिति । यो वा पुनरन्योप्येवंजातीयः । यथा प्रतिजानात्येवं स्मरति ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषे द्वे आपत्ती आपन्नः । स ते द्वे आपत्ती द्वौ मासौ न जानाति । द्वयोर्मासयोरत्ययाज्ज्ञात्वा द्वौ मासौ प्रतिच्छाद्य एकां भिक्षूणामारोचयति । एकां नारोचयति । तस्य संघे [न] द्वौ मासौ परिवासो दत्तः ।

स पारिवासिको लज्जी धर्ममवक्रान्तः। स एतत्प्रकरणं भिक्षूणामारोचयति। अहमस्म्यायुष्मन्तः संघावशेषे द्वे आपत्ती आपन्नः। सोऽहं ते द्वे आपत्ती द्वौ मासौ न जानामि द्वयोर्मासयोरत्ययाज्ज्ञात्वा द्वौ मासौ प्रतिच्छाद्य एकां भिक्षूणामारोचयामि। तस्य मम संघेन द्वौ मासौ परिवासो दत्तः। सोऽहं पारिवासिको लज्जी धर्ममवक्रान्तः। तस्य तत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तस्या आपत्तेर्यथाप्रतिच्छन्नायाः परिवासमिति। यो वा पुनरन्योप्येवं जातीयः। यथा जानात्येवं स्मरति।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः। स त्वर्धमासं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश G. M. 63
उद्दिश्यमाने एवमाह ‘इदानीमहमायुष्मन्तो जाने यथा[यं] धर्मः सूत्रगतः सूत्रपर्यापन्न’ इति। तं चेद्भिक्षवो जानीरन् संनिषण्णः पूर्वोऽयमायुष्मान् द्वे त्रीणि वा पोषधकर्माणि कः पुनर्वादो भूय इति तस्यायुष्मतो नैवाज्ञानान्मुक्तिः। स यां चापत्तिमापन्नस्तां च यथाधर्मं कारयितव्यः। उत्तरे च संवेजयितव्यः। यथा जानात्येवं स्मरति।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः। स त्वर्धमासं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्दिश्यमाने एवमाह ‘इदानीमहमायुष्मन्तो जाने यथायं धर्मः सूत्रगतः सूत्रपर्यापन्न’ इति। तं चेद्भिक्षवो न जानीरन् संनिषण्णः पूर्वोऽयमायुष्मान् द्वे त्रीणि वा पोषधकर्माणि कः पुनर्वादो भूय इति। तस्यैवायुष्मतो नैवाज्ञानान्मुक्तिः। स [यां] चापत्तिमापन्नस्तां यथाधर्मं कारयितव्यः। यथा जानात्येवं स्मरति।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः। स तां मासं न जानाति। मासस्यात्ययाज्ज्ञात्वा मासं प्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति। तस्य संघेन द्वौ मासौ परिवासो दत्तः। स पारिवासिकः सन्नागतागतानां भिक्षूणामारोचयति। अहमस्म्यायुष्मन्तः संघावशेषामापत्तिमापन्नः। सोऽहं तामापत्तिमापन्नो जानामि मासस्यात्ययाज्ज्ञात्वा मासं प्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयामि। तस्य मम संघेन द्वौ मासौ परिवासो दत्तः। मासमायुष्मन्तः सुदत्तो मासं दुर्दत्तः। तत्कस्य हेतोः। अधर्मत्वात् कोप्यत्वात्कर्मणः। G. M. 64
यथा जानात्येवं स्मरति।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः। स तामापत्तिं मासं न जानाति। मासस्यात्ययाज्ज्ञात्वा अप्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति। तस्य संघेन मासं परिवासो दत्तः। स आगतागतानां भिक्षूणामारोचयति। अहमस्म्यायुष्मन्तः संघावशेषामापत्तिमापन्नः। सोऽहं तामापत्तिं मासं न जानामि। मासस्यात्ययाज्ज्ञात्वा अप्रतिच्छाद्य

भिक्षूणामारोचयामि । तस्य मम संघेन मासं परिवासो दत्तः । दुर्दत्तः आयुष्मन्न सुदत्तः । तत्कस्य हेतोः । मानाप्यार्हं आयुष्मन् । यथा जानात्येवं स्मरति ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नां देशयिष्यामीति न स्मरति । स तामापत्तिं स्मृत्वाप्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तस्या आपत्तेरुभयसंततेः परिवासं पूर्विकायाः पश्चिमकाया इति । यो वा पुनरन्योप्येवंजातीयः ।

G. M. 65 अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नां देशयिष्यामीति न स्मरति । स तां स्मृत्वा अप्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तस्याः आपत्तेः पूर्विकायाः संततेः परिवासमिति । यो वा पुनरन्योप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्न [स्ताम] प्रतिच्छन्नां देशयिष्यामीति न स्मरति । स तां स्मृत्वा प्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य [तस्या आ] पत्तेः पश्चिमकायाः परिवासमिति । यो वा पुनरन्योप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नस्तामप्रतिच्छन्नां देशयिष्यामीति न स्मरति । स तां स्मृत्वा अप्रतिच्छाद्यैव भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तस्या आपत्तेः षड्रात्रं मानाप्यमिति । यो वा पुनरन्योप्येवंजातीयः ।

उद्दानम् ।

समुच्छ्रयेण षोडश द्वे पञ्च अष्टविंशके ।
त्रिभिस्त्रिभिरष्टकाभिस्तिसृभिश्चतु[श्चतुर] अष्टकाः ।
G. M. 66 उत्क्षिप्ता अष्टकास्तिस्रो मुखाः पञ्च समुद्दिताः ॥ २ ॥

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नां विभ्रान्तः । स आगत्य पुनरुपसंपन्नः । स तामापत्तिं प्रतिच्छाद्यैव भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तस्या आपत्तेः [उभय] संततेः परिवासमिति । यो वा पुनरन्योप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नां विभ्रान्तः। स आगत्य पुनरुपसंपन्नः। स तामापत्तिमप्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति। भिक्षवो भगवतः। भगवानाह। ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तस्या आपत्तेः पूर्विकायाः सन्ततेः परिवासमिति। यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः।

[अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नां विभ्रान्तः। स आगत्य पुनरुपसंपन्नः। स तामापत्तिं प्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति। भिक्षवो भगवतः। भगवानाह। ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तस्या आपत्तेः पश्चिमिकायाः सन्ततेः परिवासमिति। यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः।]

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नां विभ्रान्तः। स आगत्य G. M. 67
पुनरुपसंपन्नः। स तामापत्तिमप्रतिच्छाद्यैव भिक्षूणामारोचयति। भिक्षवो भगवतः। भगवानाह। ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तस्या आपत्तेः षड्रात्रं मानाप्यमिति। यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः।

यथा शुद्धकेन चत्वारि एवं जानतश्चत्वारि। स्मरतश्चत्वारि। वैमतिकेन चत्वारि। अनेनाकारेण अपरापि चतुष्किका। किन्तु पेयालविशेषः।

अथापरः [पुद्गलः] एवं पारिवासिक एव वक्तव्यः। यथा पारिवासिकः एवं पर्युषितपरिवासो मानाप्यचारिकश्चरितमानाप्यः शिक्षादत्तकश्चतुष्किकायां योजयितव्याः। यथा विभ्रान्तः एवं श्रमणोद्देशकत्वं प्रतिजानाति। उन्मत्तकत्वं विक्षिप्तचित्तकत्वं वेदनाभिन्नकत्वमदर्शनायोत्क्षेपकत्वमप्रतिकर्मायोत्क्षेपकत्वमप्रतिनिसृष्टे च पापके दृष्टिगते उत्क्षेपकत्वमिति विस्तरेण योजयितव्यम्।

अथापरः पुद्गलो द्वे संघावशेषे आपत्ती आपन्नः प्रतिच्छन्नां चाप्रतिच्छन्नां च विभ्रान्तः। स आगत्य पुनरुपसंपन्नः। स यां प्रतिच्छाद्य विभ्रान्तस्तां प्रतिच्छाद्यैव भिक्षूणामारोचयति। यामप्रतिच्छाद्य [तां प्रतिच्छाद्य] भिक्षूणामारोचयति। भिक्षवो भगवतः। भगवानाह। ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्योभयसन्ततेः परिवासम्। एकस्याः पूर्विकाया द्वितीयस्याः पश्चिमकाया इति। यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषे द्वे आपत्ती आपन्नः प्रतिच्छन्नां चाप्रतिच्छन्नां च
विभ्रान्तः। स आगत्य पुनरुपसंपन्नः। स यां प्रतिच्छाद्य विभ्रान्तस्तामप्रतिच्छाद्यैव G. M. 68
भिक्षूणामारोचयति। यामप्रतिच्छाद्य तामप्रतिच्छाद्यैव भिक्षूणामारोचयति। भिक्षवो

भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्‌गलस्यैकस्या आपत्तेः पूर्विकायाः सन्ततेः परिवासम् । एकस्याः पश्चिमिकायाः षड्रात्रं मानाप्यमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्‌गलः संघावशेषे द्वे आपत्ती आपन्नः प्रतिच्छन्नां चाप्रतिच्छन्नां च विभ्रान्तः । स आगत्य पुनरुपसंपन्नः । स यां प्रतिच्छाद्य विभ्रान्तस्तामप्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति । यां त्वप्रतिच्छाद्य तां प्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्‌गलस्यैकस्या आपत्तेः पूर्विकायाः सन्ततेः परिवासम् । एकस्याः पश्चिमिकायाः [परिवास]-मिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्‌गलः [संघावशेषे द्वे आपत्ती आपन्नः] प्रतिच्छन्नां चाप्रतिच्छन्नां च विभ्रान्तः । स आगत्य पुनरुपसंपन्नः । स यां प्रतिच्छाद्य विभ्रान्तस्तामप्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति । यां त्वप्रतिच्छाद्य तामप्रतिच्छाद्यैव भिक्षूणामारोचयति ।
G. M. 69 भिक्षवो भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्‌गलस्यैकस्या आपत्तेः पूर्विकायाः सन्ततेः परिवासम् । एकस्याः पश्चिमिकायाः षड्रात्रं मानाप्यमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्‌गलः एवं पारिवासिकः पर्युषितपरिवासो मानाप्यचारिकश्चरितमानाप्यः शिक्षादत्तकश्च वक्तव्यः । यथा विभ्रान्तः एवं श्रमणोद्देशकत्वं प्रतिजानाति । उन्मत्तकत्वं प्रतिजानाति । विक्षिप्तचित्तकत्वं वेदनाभिन्नकत्वमदर्शनायोत्क्षिप्तकत्वमप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षिप्तकत्वमिति विस्तरेण वाच्यम् ।

अथापरः पुद्‌गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । परिमाणवतीः प्रतिच्छन्नाः । स संघेनादर्शनायोत्क्षिप्तः । ओसारितः स ता आपत्तीः प्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्‌गलस्य तासामापत्तीनां परिमाणवत्य इति कृत्वा उभयसन्ततेः परिवासं पूर्विकायाः पश्चिमकायाश्चेति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्‌गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । परिमाणवतीः प्रतिच्छन्नाः । स संघेनादर्शनायोत्क्षिप्तः । ओसारितः स ता आपत्तीरप्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्‌गलस्य तासामापत्तीनां परिमाणवत्य इति कृत्वा पूर्विकायाः सन्ततेः परिवासमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः। परिमाणवतीरप्रतिच्छन्नाः। स संघेनादर्शनायोत्क्षिप्तः। ओसारितः स ता आपत्तीः प्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति। G. M. 70 भिक्षवो भगवतः। भगवानाह। ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तासामापत्तीनां परिमाणवत्य इति कृत्वा पश्चिमिकायाः सन्ततेः परिवासमिति। यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः। परिमाणवतीरप्रतिच्छन्नाः। स संघेनादर्शनायोत्क्षिप्तः। ओसारितः स ता आपत्तीरप्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति। भिक्षवो भगवतः। भगवानाह। ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तासामापत्तीनां परिमाणवत्य इति कृत्वा षड्रात्रं मानाप्यमिति। यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः।

यथा परिमाणवतीरेवमपरिमाणवतीः। यथा अदर्शनायोत्क्षिप्तकेनाष्टावेवमप्रतिकर्मायोत्क्षिप्तकेनाष्टावेवमप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षिप्तकेनाष्टौ।

पारिवासिकः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नो विभ्रान्तः। स आगत्य पुनरुपसंपन्नः। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। अपर्युषितपरिवासं [परिवस]तु। पर्युषितपरिवासो भविष्यतीति।

यथा विभ्रान्त एवं श्रमणोद्देशकत्वं प्रतिजानाति। उन्मत्तकत्वं [वि]क्षिप्तचित्तकत्वं वेदनाभिन्नकत्वमदर्शनायोत्क्षिप्तकत्वमप्रतिकर्मायोत्क्षिप्तकत्वम्।

पर्युषितपरिवासः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नो विभ्रान्तः। स आगत्य पुनरुपसंपन्नः। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। पर्युषितपरिवास एवासौ G. M. 71 भिक्षवः पुद्गलः। ददतास्य मानाप्यमिति।

यथा विभ्रान्तः [एवं श्रमणोद्देश]कत्वं प्रतिजानाति। पूर्ववदेव पेयालो यावदप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षिप्तकत्वम्।

मानाप्यचारिकः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नो विभ्रान्तः। स आगत्य पुनरुपसंपन्नः। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। अचरितं चरतु। चरितमानाप्यो भविष्यतीति। यथा विभ्रान्तः पूर्ववत्। एष एव पेयालः।

चरितमानाप्यः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नो विभ्रान्तः। स आगत्य पुनरुपसंपन्नः। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। चरितमानाप्य एवासौ भिक्षवः। आवर्हतैनमिति। यथा विभ्रान्तः पूर्ववत्। एष एव पेयालः।

अदर्शनायोत्क्षिप्तकः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नाम् । [स] संघेनादर्शनायोत्क्षिप्तः । ओसारितः स तामापत्तिं [प्रतिच्छाद्य] भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तस्या आपत्तेः पश्चिमकायाः सन्ततेः परिवासमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

अदर्शनायोत्क्षिप्तकः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नाम् । स संघेनादर्शनायोत्क्षिप्तः । ओसारितः स तामापत्तिमप्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवतः । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य षड्रात्रं मानाप्यमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

G. M. 72 यथा शुद्धकेन द्वे एवं जानतो द्वे स्मरतो द्वे वैमतिकेन द्वे । यथादर्शनायोत्क्षिप्तकेनाष्टौ एवमप्रतिकर्मायोत्क्षिप्तकेनाष्टौ अप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षिप्तकेनाष्टौ ।

उद्दानम् ।

पर्यन्तेन द्वादशिका नविकाः सार्वकालिकाः ।
यामिकां नविकां कृत्वा पदानि दश पंच च ॥ २ ॥

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । अपरिमाणवतीः प्रतिच्छन्नाः । स तासामापत्तीनामापत्तिपर्यन्तं जानाति नो तु रात्रिपर्यन्तम् । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तासामापत्तीनामपरिमाणवत्य इति कृत्वा शुद्धान्तिकं परिवासमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । अपरिमाणवतीः प्रतिच्छन्नाः । स तासामापत्तीनां रात्रिपर्यन्तं जानाति नो त्वापत्तिपर्यन्तम् । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तासामापत्तीनामपरि-
G. M. 73 माणवत्य इति कृत्वा यथा प्रतिच्छन्नानां परिवासमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । [अ]परिमाणवतीः प्रतिच्छन्नाः । स तासां नैवापत्तिपर्यन्तं जानाति न रात्रिपर्यन्तमिति । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तासामापत्तीनामपरिमाणवत्य इति कृत्वा शुद्धान्तिकं परिवासमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । अपरिमाणवतीः प्रतिच्छन्नाः । स तासामापत्तिपर्यन्तं जानाति रात्रिपर्यन्तमिति । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तासामापत्तीनामपरिमाणवत्य इति कृत्वा

यथा प्रतिच्छन्ना[नां] परिवासमिति । यो वा पुनरन्योऽप्येवंजातीयः । यथा जानतश्चत्वारि एवं स्मरतश्चत्वारि वैमतिकश्चत्वारि ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन परिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स पारिवासिक एव [सन्]संघावशेषा- G. M. 74
मापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलपरिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलापकर्षो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । मानाप्यमप्यधर्मेण । आव्रूढोऽप्यधर्मेण । अयमुच्यते सर्वकालकः पुद्गलः अशुद्धः अव्युत्थितस्तस्या आपत्तेर्न परिमुच्यते ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन परिवासो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलपरिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलापकर्षो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । मानाप्यमप्यधर्मेण । आव्रीढोऽप्यधर्मेण । G. M. 75
अयमुच्यते यद्भूयस्कालकः पुद्गलः अशुद्धः अव्युत्थितस्तस्या आपत्तेर्न परिमुच्यते ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन परिवासो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । [स] पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलपरिवासो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । [स] मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलापकर्षो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । मानाप्यमप्यधर्मेण । आव्रीढोऽप्यधर्मेण । अयमुच्यते उपार्धकालकः पुद्गलः अशुद्धः अव्युत्थित[स्त]स्या [आपत्तेर्न परि]मुच्यते ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन परिवासो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलपरिवासो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषा[मापत्ति]

मापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलापकर्षो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । मानाप्य[मप्य]धर्मेण । आव्रीढोऽप्यधर्मेण । अयमुच्यते एकदेशकालकः पुद्गलः अशुद्धोऽव्युत्थितस्तस्या [आ]पत्तेर्न परिमुच्यते ।

G. M. 76 अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन परिवासो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलापकर्षो दत्तः धर्मेण [कर्मणा] कोप्येनास्थापनार्हेण । स मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलापकर्षो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । मानाप्यमपि धर्मेण । आव्रीढस्त्वधर्मेण । अयमुच्यते प्रदेशकालकः पुद्गलः अशुद्धोऽव्युत्थितस्तस्या [आ]पत्तेर्न परिमुच्यते ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन परिवासो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलपरिवासो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलापकर्षो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । मानाप्यमपि धर्मेण । आव्रीढोऽपि धर्मेण । अयमुच्यते अपगतकाल[कः] पुद्गलः शुद्धो व्युत्थितस्तस्या [आ]पत्तेः परिमुच्यते ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन
G. M. 77 मानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स मानाप्यचारिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलमानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा [कोप्येन] स्थापनार्हेण । स मूलमानाप्यचारिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलापकर्षमानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । आव्रीढोऽप्यधर्मेण । अयमुच्यते सर्वकालकः पुद्गलः अशुद्धः अव्युत्थितस्तस्या [आ]पत्तेर्न परिमुच्यते ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मानाप्यं दत्तं धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स मानाप्यचारिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलमानाप्यं

दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स मूलमानाप्यचारिक एव सन् संघावशे-
षामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन
मूलापकर्षमानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । आव्रीढोऽप्यधर्मेण ।
अयमुच्यते यद्भूयस्कालकः पुद्गलः अशुद्धः अव्युत्थितस्तस्या [आ]पत्तेर्न परिमुच्यते ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन
मानाप्यं दत्तं धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स मानाप्यचारिक एव सन् संघा-
वशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलमानाप्यं
दत्तं धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स मूलमानाप्यचारिक एव सन् संघावशेषा- G. M. 78
मापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरा[पत्तिमन्तरा]पत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन
[मूलापकर्षमानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थाप]नार्हेण । आव्रीढोऽप्यधर्मेण ।
अयमुच्यते उपार्धकालकः पुद्गलः अशुद्धः अव्युत्थितस्तस्या [आ]पत्तेर्न परिमुच्यते ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन
मानाप्यं दत्तं धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स मानाप्यचारिक एव सन्
संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन
मूलमानाप्यं दत्तं धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । [स] मूलमानाप्यचारिक एव
सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन
मूलापकर्षमानाप्यं दत्तं धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । आव्रीढस्त्वधर्मेण । अयमुच्यते
एकदेशकालकः पुद्गलः अशुद्धः अव्युत्थितस्तस्या [आ]पत्तेर्न परिमुच्यते ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः [अ]प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन
मानाप्यं दत्तं धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स मानाप्यचारिक एव सन् संघावशेषा-
मापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलमानाप्यं
दत्तं धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । स मूलमानाप्यचारिक एव सन् संघावशेषामापत्ति-
मापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मूलापकर्षमानाप्यं
दत्तं धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । आव्रीढोऽपि धर्मेण । अयमुच्यते अपगतकालकः G. M. 79
पुद्गलः शुद्धो व्युत्थितस्तस्या [आ]पत्तेः परिमुच्यते ।

द्वौ पुद्गलौ संघावशेषामापत्तिमापन्नौ देशयिष्यावो देशयिष्याव इति । तत्रैको
देशयति द्वितीयो न देशयति । तत्र योऽसौ न देशयति तं संबहुला विनयातिसारिणी-
र्दुष्ठुला आपत्तीर्देशयित्वा पश्चात्परिवासो देयः मूलपरिवासो मानाप्यम् । आवर्हितव्यश्च ।

द्वौ पुद्गलौ संघावशेषामापत्तिमापन्नौ । तावस्मिन्नेवावासे पुद्गलस्यान्तिके देशयिष्यावो देशयिष्याव इति । तत्रैको देशयति द्वितीयो न देशयति । तत्र योऽसौ न देशयत्ति तं संबहुला विनयातिसारिणीर्दुष्ठुला आपत्तिर्देशयित्वा पश्चात्परिवासो देयः मूलपरिवासो मानाप्यम् । आवर्हितव्यश्च । यथा पुद्गलस्यान्तिके एवं द्वाभ्यां संबहुलानां संघस्य । यथास्मिन्नावासे एवमन्यस्मिन्नावासे ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन परिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स पारिवासिक एव सन्नन्यापत्तिं जानाति यानेन संघमध्ये नारोचिता । स तामापत्तिं जानाति । तामप्यापत्तिं जानाति यानेन संघमध्ये नारोचिता । स भिक्षूणामारोचयति । अहमस्म्यायुष्मन्तः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नाम् । तस्य मम संघेन परिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन
G. M. 80 स्थापनार्हेण । सोऽहं पारिवासिक एव सन्नन्यापत्तिं जानामि या मे संघमध्ये नारोचिता । सोऽहं तामापत्तिं न जानामि यस्या मम संघेन परिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । साधु मे आयुष्मन्तस्तस्याः पूर्विकाया आपत्तेरपि परिवासं ददतु धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । अस्याश्च पश्चिमिकायाः । तस्यास्ते भिक्षवः पूर्विकाया आपत्तेः परिवासं ददति धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । तस्यास्तु पश्चिमिकायाः परिवासं ददति अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । स तामन्तरापत्तिं जानाति । तामप्यापत्तिं जानाति यस्या अस्य संघेन परिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स भिक्षूणामारोचयति । अहमस्म्यायुष्मन्तः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नाम् । तस्य मम संघेन परिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । सोऽहं पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । सोऽहं तामन्तरापत्तिं जानामि यस्या मम संघेन परिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । साधु मे आयुष्मन्तस्तस्याः पूर्विकाया आपत्तेर्मूलपरिवासं ददतु धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनर्हेण । तस्याश्चान्तरापत्तेर्मूलपरिवासमिति । तस्यास्ते भिक्षवः पूर्विकाया आपत्तेः परिवासं ददति धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । तस्यास्त्वन्तरापत्तेर्मूलपरिवासमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण ।
G. M. 81 स मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । स तां प्रत्यन्तरापत्तिं जानाति । तामप्यन्तरापत्तिं जानाति यस्या अस्य संघेन मूलपरिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स भिक्षूणामारोचयति ।

अहमस्यायुष्मन्तः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् ।
तस्य मम संघेन मूलपरिवासो दत्तः धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । सोऽहं
मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां
प्रतिच्छन्नाम् । सोऽहं तां प्रत्यन्तरापत्तिं जानामि । तामप्य[न्तरा]पत्तिं जानामि
यस्या मम संघेन मूलपरिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । साधु मे
आयुष्मन्तस्तस्या अन्तरापत्तेर्मूलपरिवासं ददतु धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण ।
अस्याश्च प्रत्यन्तरापत्तेर्मूलापकर्षमिति । तस्यास्ते भिक्षवः पूर्विकाया आपत्तेर्मूलपरिवासं
ददति । तस्यास्तु प्रत्यन्तरापत्तेर्मूलापकर्षं धर्मेण [कर्मणा]कोप्येनास्थापनार्हेण ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मानाप्यं
दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स मानाप्यचारिक एव [सन्] संघावशेषा-
मापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपामप्रतिच्छन्नाम् । स तामन्तरापत्तिं जानाति
यस्या अस्य संघेन मानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स भिक्षूणामा- G. M. 82
रोचयति । अहमस्यायुष्मन्तः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नाम् । तस्य मम
संघेन मानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । सोऽहं मानाप्यचारिक एव
सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपामप्रतिच्छन्नाम् । सोऽहं
तामन्तरापत्तिं जानामि यस्या मम संघेन मानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापना-
र्हेण । साधु मे आयुष्मन्तस्तस्याः पूर्विकाया आपत्तेर्मानाप्यं ददतु धर्मेण कर्मणाको-
प्येनास्थापनार्हेण । अस्याश्चान्तरापत्तेर्मूलमानाप्यमिति । तस्यास्ते भिक्षवः पूर्विकाया
आपत्तेर्मानाप्यं ददति धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । अस्यास्त्वन्तरापत्तेर्मूलमाना-
प्यमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स मूलमानाप्यचारिक एव सन् संघावशेषा-
मापत्तिमापन्नः प्रत्यन्परापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपामप्रतिच्छन्नाम् । स तां प्रत्यन्तरापत्तिं
जानाति । तामप्यन्तरापत्तिं जानाति यस्या अस्य संघेन मूलमानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा
कोप्येन स्थापनार्हेण । स भिक्षूणामारोचयति । अहमस्यायुष्मन्तः संघावशेषामापत्ति-
मापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपामप्रतिच्छन्नाम् । तस्य मम संघेन मूलमानाप्यं
दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । सोऽहं मूलमानाप्यचारिक एव सन् संघाव-
शेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरुपामप्रतिच्छन्नाम् । सोहं तां प्रत्यन्तरापत्तिं
जानामि । तामप्यन्तरापत्तिं जानामि यस्या मम संघेन मूलमानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा
कोप्येन स्थापनार्हेण । साधु साधु मे आयुष्मन्तस्तस्याः पूर्विकाया अन्तरापत्तेर्मूलमानाप्यं G. M. 83

ददतु धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । अस्याश्च प्रत्यन्तरापत्तेर्मूलापकर्षमानाप्यमिति । तस्यास्ते भिक्षवः पूर्विकाया अन्तरापत्तेर्मूलमानाप्यं ददति धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । अस्याश्च प्रत्यन्तरापत्तेर्मूलापकर्षमानाप्यम् । यथा जानता पञ्च एवं स्मरता पञ्च वैमतिकेन पञ्च ।

उद्दानम् ।

अथापरेण द्वादशिका, वस्तु शोधयित्वा च षट्किकाः ।
महाभूर्मि शोधयित्वा पुद्गलवस्तु समुद्यतम् ॥ ४ ॥

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन परिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । स तामन्तरापत्तिं जानाति । तामप्यापत्तिं जानाति यस्या अस्य संघेन परिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स भिक्षूणामारोचयति । अहमस्यायुष्मन्तः संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रतिच्छन्नाम् । तस्य मम संघेन परिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । सोऽहं पारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । सोऽहं तामन्तरापत्तिं जानामि । तामप्यापत्तिं जानामि यस्या मम संघेन परिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । साधु मे आयुष्मन्तस्तस्याः
G. M. 84 पूर्विकाया आपत्तेः परिवासं ददतु धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । तस्याश्चान्तरापत्तेर्मूलपरिवासमिति । तस्य ते भिक्षवस्तस्याः पूर्विकाया आपत्तेः परिवासं ददति धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । अस्यास्त्वन्तरापत्तेर्मूलपरिवासमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । स तां प्रत्यन्तरापत्तिं जानाति । तामप्यन्तरापत्तिं जानाति यस्या अस्य संघेन मूलपरिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स भिक्षूणामारोचयति । अहमस्यायुष्मन्तः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । तस्य मम संघेन मूलपरिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । सोऽहं मूलपारिवासिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम् । सोऽहं तां प्रत्यन्तरापत्तिं जानामि । तामप्यन्तरापत्तिं जानामि यस्या मम संघेन मूलपरिवासो दत्तः अधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । साधु मे आयुष्मन्तस्तस्याः पूर्विकाया अन्तरापत्तेर्मूलपरिवासं

ददतु धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । अस्याश्च प्रत्यन्तरापत्तेर्मूलापकर्षमिति । तस्य ते भिक्षवः पूर्विकाया अन्तरापत्तेर्मूलपरिवासं ददति धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । तस्यास्तु प्रत्यन्तरापत्तेर्मूलापकर्षं धर्मे[ण कर्म]णाकोप्येनास्थापनार्हेण ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नाम् । तस्य संघेन मानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स मानाप्यचारिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपामप्रतिच्छन्नाम् । स तामन्तरापत्तिं G.M. 85
जानाति । तामप्यापत्तिं जानाति यस्या अस्य संघेन मानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स भिक्षूणामारोचयति । अहमस्यायुष्मन्तः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अप्रतिच्छन्नाम् । तस्य मम संघेन षड्रात्रं मानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । सोऽहं मानाप्यचारिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपामप्रतिच्छन्नाम् । सोऽहं तामन्तरापत्तिं जानामि । तामप्यापत्तिं जानामि यस्या मम संघेन मानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । साधु मे आयुष्मन्तस्तस्याः पूर्विकाया आपत्तेर्मानाप्यं ददतु धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । अस्याश्चान्तरापत्तेर्मूलमानाप्यमिति । तस्य ते भिक्षवः पूर्विकाया आपत्तेर्मानाप्यं ददति धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । अस्यास्त्वन्तरापत्तेर्मूलमानाप्यमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स मूलमानाप्यचारिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपामप्रतिच्छन्नाम् । स तां प्रत्यन्तरापत्तिं जानाति । ताम[प्य]न्तरापत्तिं जानाति यस्या अस्य संघेन मूलमानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । स भिक्षूणामारोचयति । अहम[स्या]युष्मन्तः संघावशेषामापत्तिमापन्नः अन्तरापत्तिं पूर्वापत्तिप्रतिरूपामप्रतिच्छन्नाम् । तस्य मम संघेन मूलमानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । सोऽहं मूलमानाप्यचारिक एव सन् संघावशेषामापत्तिमापन्नः प्रत्यन्तरापत्तिमन्तरापत्तिप्रतिरूपामप्रतिच्छन्नाम् । सोऽहं तां G. M. 86
प्रत्यन्तरापत्तिं जानामि । तामप्यन्तरापत्तिं जानामि यस्या मम संघेन मूलमानाप्यं दत्तमधर्मेण कर्मणा कोप्येन स्थापनार्हेण । साधु मे आयुष्मन्तस्तस्याः पूर्विकाया अन्तरापत्तेर्मूलमानाप्यं ददतु धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापमार्हेण । अस्याश्च प्रत्यन्तरापत्तेर्मूलापकर्षमानाप्यमिति । तस्य ते भिक्षवः पूर्विकाया आपत्तेर्मूलमानाप्यं ददति धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण । अस्यास्तु प्रत्यन्तरापत्तेर्मूलापकर्षमानाप्यमिति । यथा जानता चत्वारि एवं स्मरता चत्वारि वैमतिकेन चत्वारि ।

पारिवासिकः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत

आरोचयन्ति । भगवानाह । वस्तु शोधयित्वा विनयातिसारिणीं [च] दुष्ठुलामापत्तिं देशयित्वा पारिवासिक एव सन् ।

उपार्धपारिवासिकः [पुद्गलः] संघावशेषामापत्तिमापन्नः । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । वस्तु शोधयित्वा विनयातिसारिणीं च दुष्ठुलामापत्तिं देशयित्वा उपार्धपारिवासिक एव सन् ।

यद्भूयःपारिवासिक एव पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । एतत्प्रकरणं G. M. 87 भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । वस्तु शोधयित्वा विनयातिसारिणीं च दुष्ठुलामापत्तिं देशयित्वा यद्भूयःपारिवासिक एव सन् ।

मानाप्यचारिकः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । वस्तु शोधयिप्वा विनयातिसारिणीं च दुष्ठुलामापत्तिं देशयित्वा मानाप्यचारिक एव सन् ।

उपार्धमानाप्यचारिकः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । वस्तु शोधयित्वा विनयातिसारिणीं च दुष्ठुलामापत्तिं देशयित्वा उपार्धमानाप्यचारिक एव सन् ।

यद्भूयोमानाप्यचारिकः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । वस्तु शोधयित्वा विनयातिसारिणीं च दुष्ठुलामापत्तिं देशयित्वा यद्भूयोमानाप्यचारिक एव सन् ।

अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामेकरात्रिप्रतिच्छन्नाम् । उद्ग्रहसमुत्थितां द्विरात्रिप्रतिछन्नाम् । मैथुन [संलाप] समुत्थितां त्रिरात्रिप्रतिच्छान्नाम् । परिचर्यासमुत्थितां चतूरात्रिप्रतिच्छन्नाम् । सांचरित्रसमुत्थितां G. M. 88 पञ्चरात्रिप्रतिच्छन्नाम् । कुटिकासमुत्थितां षड्रात्रिप्रतिच्छन्नाम् । महल्लकसमुत्थितां सप्तरात्रिप्रतिच्छन्नाम् । अमूलकसमुत्थितामष्टरात्रिप्रतिच्छन्नाम् । लेशिसमुत्थितां नवरात्रिप्रतिच्छन्नाम् । संघभेदसमुत्थितां दशरात्रिप्रतिच्छन्नाम् । तस्यानुवर्त्तितसमुत्थितामेकादशरात्रिप्रतिच्छन्नाम् । कुलदूषिकसमुत्थितां द्वादशरात्रिप्रतिच्छानाम् । दौर्वंचस्य समुत्थितां त्रयोदशरात्रिप्रतिच्छन्नाम् । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । या ध्यासामापत्तीनां खरतरा च गुरुतरा च तीव्रेण चातिनिवेशेन कृता तस्या वशेन परिवासो दातव्यो मूलपरिवासो मूलापकर्षो मानाप्यं चावर्हितव्यश्चेति ।

॥ पुद्गलवस्तु समाप्तम् ॥

वस्तुत्रयस्य पिण्डोद्दानम् । G. M. 89

अभिवादनं च षष्टिश्च अशुद्धश्चोदनाहि च ।
अधार्मिकश्च शाक्यश्च ग्लानकः कलहेन च ॥

पारिवासिकवस्तु

पारिवासिकवस्तूद्दानम् । G. M. 9

अभिवादनं चंक्रमणमासनानि कुलानि च ।
एकच्छदने न संवसेत् न प्रव्राजयेदपि ।
न गच्छेदपि, अभिक्षुकमावासमधोदेशश्च सर्वलाभिकम् ॥ १ ॥

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डदस्यारामे । असति वैराग्ये भिक्षवः संघावशेषामापत्तिमापद्यन्ते । ते विप्रतिसारजाताः संलक्षयन्ति । कथमिदानीं वयं सापत्तिकाः सन्तः सकौकृत्याः सविलोलाः सकरणीयाः खण्डकारिणः शवलकारिणः कल्मषकारिणः आपत्तिमूलादव्युत्थिताः प्रकृतिस्थकानां भिक्षूणामन्तिकादभिवादनवन्दनप्रत्युत्थानांजलिसामीचीकर्म स्वीकरिष्यामः । श्राद्धानां च ब्राह्मणगृहपतीनां सकाशादग्रासनमग्रोदकमग्रपिण्डपातं परिभोक्ष्यामः । अल्पकालिकस्य च सुखस्यार्थाय बहुकालिकं दुःखमाविशामो नरकतिर्यक्प्रेतेभ्यः परिभ्रमन्तः । यत्तु वयं शिक्षां प्रत्याख्याय हानायावर्तामह इति ते शिक्षां प्रत्याख्याय हानायावर्तन्ते । प्रव्रज्याभिलषितं च जनं विप्रलम्भयन्ति । भवन्तो दुश्चरं ब्रह्मचर्यमलं प्रव्रज्ययेति । तेषामप्रव्रजिता[ना]मप्रव्राज[य]तां चाल्पीभूता भिक्षवः । क्षयमापन्नश्छिद्रीभूतस्तनुभूतो भिक्षुसंघः । जानकाः पृच्छका बुद्धं G. M. 94
भगवन्तं पृच्छन्ति । बुद्धो भगवानायुष्मन्तमानन्दम् । कः आनन्द हेतुः कः प्रत्ययः येनेतर्ह्यल्पीभूता भिक्षवः । क्षयमापन्नश्छिद्रीभूतस्तनुभूतो भिक्षुसंघ इति । स एतत्प्रकरणं भगवते विस्तरेणारोचयति ।

अथ भगवत एतदभवत् । यत्त्वहं संघावशेषामापत्तिमापन्नानां भिक्षूणां हस्तोद्धारमनुप्रदद्यामनुग्रहमनेनेति विदित्वा [भिक्षु]संघं संनिपात्य पुरस्ताद्भिक्षुसंघस्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः । निषद्य भगवान्भिक्षूनामन्त्रयतेस्म । श्रुतं मया भिक्षवः संघावशेषामापत्तिमापन्ना विप्रतिसारजाताः शिक्षां प्रत्याख्याय हानायावृत्ता इति । तस्मादायुष्मभिः शासनस्थितये तेषां चानुकम्पया संघावशेषामापत्तिमापन्नानां भिक्षूणां परिवासो देयो मूलापकर्षो मानाप्यं मूलमानाप्यं मूलापकर्षमानाप्यमावर्हितव्यश्च ।

एवं च पुनर्देयः । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून् समनुयुज्य सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतिते अपश्चिमकेन भिक्षूणा परिवासो देयश्चतुर्वर्ग-

मण्डलकेन । संघावशेषकेण भिक्षुणा यथावृद्धिकया सामीचीं कृत्वा वृद्धान्ते उत्कुटुकेन स्थित्वाञ्जलिं प्रगृह्य परिवासो याचितव्यः । एवं च पुनर्याचितव्यः ।

G. M. 95 शृणोतु भदन्तः संघः । अहमेवंनामा भिक्षुः संबहुलाः संघावशेषा आपत्तीरापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । सोऽहमेवंनामा भिक्षुस्तासां संबहुलानां संघावशेषाणामापत्तीनां संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नां संघादर्धमासं परिवासं याचे । ददातु मे भदन्तः संघो ममैवंनाम्नो भिक्षोरासां संबहुलानां संघावशेषाणामापत्तीनां संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितानामर्धमासप्रतिच्छन्नानामर्धमासं परिवासमनुकम्पयानुकम्पामुपादाय । एवं द्विरपि त्रिरपि । ततः पश्चादेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अयमेवंनामा भिक्षुः संबहुलाः संघावशेषा आपत्तीरापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितामर्धमासप्रतिच्छन्नाम् । सोऽयमेवंनामा भिक्षुरासां [सं]बहुलानां संघावशेषाणामापत्तीनां संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितानामर्धमासप्रतिच्छन्नानां संघादर्धमासं परिवासं याचते । स चेत्संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघः एवंनाम्नोर्भिक्षोरासां संबहुलानां संघावशेषाणामापत्तीनां संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितानामर्धमासप्रतिच्छन्नानामर्धमासं परिवासं दद्यात् । इत्येषा ज्ञप्तिः । कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः अयमेवंनामा भिक्षुः संबहुलाः संघावशेषा आपत्तीरापन्नः संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थिता अर्धमासप्रतिच्छन्नाः । सोऽयमेवंनामा भिक्षुरासां
G. M. 96 संबहुलानां संघावशेषाणामापत्तीनां संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितानामर्धमासप्रतिच्छन्नानां संघादर्धमासं परिवासं याचते । तत्संघः एवंनाम्नोर्भिक्षोरासां [सं]बहुलानां संघावशेषाणामापत्तीनां संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितानामर्धमासं परिवासं ददाति । एषामायुष्मतां क्षमन्ते एवंनाम्नोर्भिक्षोरासां संबहुलानां संघावशेषाणामापत्तीनां संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितानामर्धमासप्रतिच्छन्नानामर्धमासं परिवासं दातुं ते तूष्णीम् । न क्षमन्ते भाषन्ताम् । इयं प्रथमा कर्मवाचना वक्तव्या । दत्तः संघेन एवंनाम्नोर्भिक्षोरासां संबहुलानां संघावशेषाणामापत्तीनां संचिन्त्य शुक्रविसृष्टिसमुत्थितानामर्धमासप्रतिच्छन्नानामर्धमासं परिवासः । क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात्तूष्णीमेवमेतद्धारयामि । उक्तं भगवता । परिवासो दातव्यो मूलपरिवास इति विस्तरः ।

षड्वर्गिका भिक्षवः पारिवासिकमानाप्यचारिकाः सन्तः प्रकृतिस्थकानां भिक्षूणामन्तिकादभिवादन-वन्दन-प्रत्युत्थानाञ्जलिसामीचीकर्म स्वीकुर्वन्ति । अल्पार्था भिक्ष-

वोऽवध्यायन्ति क्षिपन्ति विवाचयन्ति तदिदं न च्छेकं न प्रतिरूपं यत्रेदानीं पारिवासिकमानाप्यचारिका भिक्षवः प्रकृतिस्थकानां भिक्षूणामन्तिकादभिवादन-वन्दन-प्रत्युत्थानांजलिसामीचीकर्म स्वीकुर्वन्तीति। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। पारिवासिकमानाप्यचारिकाणामहं भिक्षवो भिक्षूणामासमुदाचारिकान्धर्मान्प्रज्ञपयामि। पारिवासिकमानाप्यचारिकैर्भिक्षुभिः प्रकृतिस्थकानां भिक्षूणामन्तिकादभिवादन-वन्दन-[प्रत्यु]त्थानांजलिसामीचीकर्म [न] स्वीकर्तव्यम्। नैकासने निषत्तव्यम्। नापि G. M. 97
समासते। सचेन्निषीदन्ति नीचतरमासनं गृहीत्वा निषत्तव्यम्। न चंक्रमे युगपच्चंक्रमितव्यम्। नाप्यग्रतः। स चेच्चंक्रमे चंक्रमन्ति पदपरिहाणिकया। न ब्राह्मणकुलानि उपसंक्रमितव्यम्। स चेदुपसंक्रमन्ति पश्चाच्छ्रमणन्यायेन। नैकच्छदने वस्तव्यम्। न प्रव्राजयितव्यम्। नोपसंपादयितव्यम्। न निश्रयो देयः। न श्रमणोद्देशी उपस्थापायितव्यः। न कर्म कर्तव्यम्। न कर्मकारकः संमन्तव्यः। न भिक्षुण्योऽववदितव्याः। न भिक्षुण्यववादकः संमन्तव्यः। न पूर्वसंमतेन भिक्षुण्योऽववदितव्याः। न भिक्षुश्चोदयितव्यः स्मारयितव्यः शीलविपत्त्या दृष्टिविपत्त्या आचारविपत्त्या आजीवविपत्त्या। नानेनाववादः स्थापयितव्यः। न पोषधो न प्रवारणा न ज्ञप्तिर्न ज्ञप्तिद्वितीयं न ज्ञप्तिचतुर्थं कर्म। काल्यमेवोत्थाय द्वारं मोक्तव्यम्। दीपस्थालक उद्धर्तव्यः। विहारः सेक्तव्यः। संमार्ष्टव्यः। सुकुमारी गोमयकार्षी अनुप्रदातव्या। प्रस्रावोच्चारकुटी धावयितव्या। मृत्तिका उपस्थापयितव्या पात्राणि पानीयं शीतलं वा कालानुरूपतः। प्रणाडिकामुखानि धावयितव्यानि। कालं ज्ञात्वासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा धूपकटच्छुके धूपश्चोपस्थापयितव्यः। स चेत्प्रतिबलो भवति शास्तुर्गुणसंकीर्तनं कर्तुं स्वयमेव कर्तव्यम्। नो चेद्भाषणकः प्रष्टव्यः। उपान्वाहारं प्रत्यवेक्ष्योपान्वाहृतं चेच्छरणपृष्ठमभिरुह्य गण्डिर्दातव्या। निदाघकाले भिक्षूणां व्यजनं ग्रहीतव्यम्। ततः सर्वोपसंपन्नानां चोप- G. M. 98
रिष्टाच्छान्तेनेर्यापथवर्तिना भिक्षुसंघमुपस्थाप्य भोक्तव्यम्। कृतभक्तकृत्येन शयनासनं छन्ने गोपयितव्यम्। पात्राधिष्ठानं छोरयितव्यम्। कालं ज्ञात्वा तथागतकेशनखस्तूपाः संमार्ष्टव्याः सुकुमारी गोमयकार्षी अनुप्रदातव्या। सामग्रीवेलायां पुनः शयनासनप्रज्ञप्तिः कर्तव्या। धूपकटच्छुके [धूप] उपस्थापयितव्यः। शास्तुर्गुणसंकीर्तनं पूर्ववत् कर्तव्यम्। दिवस आरोचयितव्यः। शृणोतु भदन्तः संघः। अद्य पक्षस्य दशमीत्येवमादि यथा उपधिवारिका आरोचयन्ति। ततः परिवास आरोचयितव्यः। शृणोतु भदन्तः संघः। अहमेवंनामा भिक्षुरेवंरूपां चैवंरूपां च संघावशेषामापत्तिमापन्न इयत्कालप्रतिच्छन्नाम्। तस्य मम संघेन इयत्कालं परिवासो दत्तः। ततो मया इयच्चरितं शिष्टं चरितव्यम्।

पारिवासिकं मां भदन्तः संघो धारयतु मानाप्यचारिकं चेति ।

उक्तं भगवता । परिवास आरोचयितव्यः । इत्यागन्तुकानां नारोचयति । भगवानाह । आगन्तुकानामारोचयितव्यमिति । उक्तं भगवता । आगन्तुकानामप्यारोचयितव्यमिति । अन्यतमश्च भिक्षुरागन्तुक आगतः । स यावन्न पात्रचीवरं स्थापयति तावत् G. M. 99 पारिवासिकोऽस्य पुरतः स्थित्वा कथयति । समन्वाहर मामायुष्मन्नहमेवंनामा भिक्षुः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । पूर्ववद्यावत् पारिवासिकं मामायुष्मान्धारयत्विति ।

स तस्यान्तिके पर्यवस्थितः कथयति । अपेहि मम पुरस्तान्मोहपुरुष मा परिवासो मा त्वमिति । स लज्जापरिगतहृदयोऽवाङ्मुखो मन्दगतिप्रचारतया तस्य भिक्षोः सकाशात्प्रक्रान्तः । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । आगन्तुकस्य भिक्षोः पात्रचीवरे अप्रतिशामिते नारोचयितव्यम् । अपि तु न एकैकस्यारोचयितव्यम् । किन्तु सर्वसंघे संनिषण्णे संनिपतित इति । भगवानाह । गण्ड्यामाकोटितायां यथा संनिहितानामारोचयितव्यम् ।

न चानेनाभिक्षुकं विहारं गन्तव्यम् । स चेद्गच्छति न तत्र वस्तव्यम् ।

विकाले भिक्षूणामुष्णेन शीताम्बुना वा यथाकालं पादाः शोचितव्याः । म्रक्षयितव्याः । न चेदिच्छन्ति । स्नेहलाभोपसंहारः कर्तव्यः । ततः स्मृतिमुपस्थाप्य उत्थानसंज्ञिना शय्या कल्पयितव्या ।

पारिवासिकमानाप्यचारिका भिक्षवो यथा प्रज्ञप्तानासमुदाचारिकान्धर्मान्न समादाय वर्तन्ते सातिसारा भवन्ति ।

तस्य विहारं नोद्दिशन्ति । लाभं नानुप्रयच्छन्ति । भगवानाह । सर्वपश्चात्तस्य विहार उद्देष्टव्यः । सर्वपश्चाच्च लाभो देयः ।

G. M. 100 उद्दानम् ।

षष्टिशतं कुर्यात्पुद्गलश्चैव विंशिकात् ।
संघे मानाप्यं चरितव्यमागताः प्रतिवैकारिकाः ॥ २ ॥

षड्वर्गिकाः पारिवासिकमानाप्यचारिकाः सन्तो भिक्षूणां [परिवासं] प्रददति । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । न चतुर्भिः पारिवासिकैर्भिक्षोः परिवासो दातव्यः । न त्रिभिः पारिवासिकैरेकेन प्रकृतिस्थेन । न द्वाभ्यां पारिवासि-

काभ्यां द्वाभ्यां प्रकृतिस्थकाभ्याम् । नैकेन पारिवासिकेन न त्रिभिः प्रकृतिस्थकैः । किन्तु सर्वैः परिशुद्धैः समानदृष्टिभिर्भिक्षोः परिवासो दातव्यः ।

यथा पारिवासिकैरेवं मूलपारिवासिकैर्मानाप्यचारिकैश्चरितमानाप्यैः ।

यथा परिवासमेवं मूलपरिवासं मूलापकर्षं मानाप्यं मूलमानाप्यं मूलापकर्षमानाप्यं च ।

षड्वर्गिका भिक्षवः पारिवासिकमानाप्यचारिकाः सन्तो भिक्षूनावर्हन्ति । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । न विंशत्या पारिवासिकैर्भिक्षुरावर्हितव्यः । न एकोनविंशत्या पारिवासिकैरेकेन प्रकृतिस्थकेन । नाष्टादशभिः पारिवासिकैर्द्वाभ्यां प्रकृतिस्थकाभ्यामेवं यावन्न एकोनविंशत्या प्रकृतिस्थकैरेकेन [पारिवासिकेन] ।

यथा पारिवासिकैरेवं पर्युषितपरिवासैर्मानाप्यैश्चारितमानाप्यैः शिक्षादत्तकैश्च । G. M. 101

षड्वर्गिका भिक्षवः पारिवासिकमानाप्यचारिकाः सन्तः पारिवासिकानां भिक्षूणामन्तिके परिवासं चरन्ति । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । न भिक्षुणा चतुर्णां पारिवासिकानामन्तिकात् परिवासश्चरितव्यः । न त्रयाणां पारिवासिकानामेकस्य प्रकृतिस्थकस्य । न द्वयोः पारिवासिकयोर्द्वयोः प्रकृतिस्थ[क]योः । न त्रयाणां प्रकृतिस्थकानामेकस्य पारिवासिकस्य । अपि तु सर्वेषां परिशुद्धानां समानदृष्टिकानामन्तिकात्परिवासश्चरितव्यः ।

यथा पारिवासिकानामेवं पर्युषितपारिवासिकानां मानाप्यचारिकाणां चरितमानाप्यानां शिक्षादत्तकानां च ।

यथा परिवासमेवं मूलपरिवासं मूलापकर्षं मानाप्यं मूलमानाप्यं मूलापकर्षमानाप्यं चरन्ति ।

षड्वर्गिका भिक्षवः पारिवासिकमानाप्यचारिकाः सन्तः शून्यविहारं गत्वा परिवासं चरन्ति । ते भिक्षुभिर्दृष्टा उक्ताश्च । आयुष्मन्तः किमेष विहारो युष्माभिरावासितः । ते कथयन्ति । नायमस्माभिरावासितः । किंतु परिवासं चराम इति । ते कथयन्ति । यूयं परिवासं चरथ । किं तर्हि प्रच्छाद्यन्ते । तैरभ्याहतास्तूष्णीमवस्थिताः । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । न भिक्षवः शून्यागारे परिवासश्चरितव्यो नापि यत्रैको भिक्षुर्द्वौ त्रयो वा । अपि तु यत्र चत्वारो भिक्षवः परिशुद्धाः समानदृष्टयः प्रतिवसन्ति तत्र परिवासश्चरितव्यः । G. M. 102

यथा परिवास एवं मूलपरिवासो मूलापकर्षो मानाप्यं मूलमानाप्यं मूलापकर्षमानाप्यं च ।

अथायुष्मानुदाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति । यथापि तद्भदन्त पारिवासिकमानाप्यचारिकैः[श्रुतं]भिक्षव आगच्छन्ति कलहकारका भण्डनकारका विग्रहकारका विवादकारका आधिकरणिकाः । तेऽस्मांश्चोदयिष्यन्ति अलज्जितेन वा वैतरिकेण वा इति । तैस्तेषां कथं प्रतिपत्तव्यमिति । भगवानाह । पारिवासिकमानाप्यचारिकैरुदालिन् भिक्षुभिः कलहकारका भिक्षव आगच्छन्तीति श्रुत्वा स परिवासो भिक्षोः पुरस्तात्प्रतिनिस्रष्टव्यः । एवं च पुनः प्रतिनिस्रष्टव्यः । सामीचीं कृत्वा उत्कुटुकेन स्थित्वाञ्जलिं प्रगृह्य इदं स्याद्वचनीयम् । समन्वाहरायुष्मन्नहमेवंनामा एवंरूपां चैवंरूपां च संघावशेषामापत्तिमापन्नः इयच्चिरकालप्रतिच्छन्नाम् । तस्य मम संघेन इयन्तं कालं परिवासो दत्तः । तेन मया पारिवासिकेन सता श्रुतं भिक्षव आगच्छन्ति कलहकारका भण्डनकारका विग्रहकारका विवादकारका आधिकरणिकास्ते मां चोदयिष्यन्ति स्मारयिष्यन्ति अलज्जितेन वा वैतरिकेण वा । सोऽहमेवंनामा पारिवासिको भिक्षुस्तं परिवासमायुष्मतः पुरस्तात्प्रतिनिसृजामि । इयत्कालं मे चरितमियत्कालं तु चरितव्यम् । प्रकृतिस्थकं
G. M. 103 मामायुष्मन्धारयत्विति । ततः पुनरपि गतवेगैर्हतवेगैर्गतप्रत्यर्थिकैस्तथैव प्रकृतिस्थकस्य भिक्षोः पुरस्तात्परिवासः समादातव्यः । एवं च पुनः समादातव्यः । सामीचीं कृत्वा उत्कुटुकेन स्थित्वा अञ्जलिं प्रगृह्य इदं स्याद्वचनीयम् । समन्वाहरायुष्मन्नहमेवंनामा भिक्षुरेवंरूपां चैवंरूपां च संघावशेषामापत्तिमापन्नः इयच्चिरकालप्रतिच्छन्नाम् । तस्य मम संघेन इयन्तं कालं परिवासो दत्तः । तेन मया पारिवासिकेन श्रुतं भिक्षव आगच्छन्ति कलहकारका भण्डनकारका विग्रहकारका विवादकारका आधिकरणिकास्ते मां चोदयिष्यन्ति स्मारयिष्यन्ति अलज्जितेन वैतरिकेणेति । तन्मया पारिवासिकवृत्तं भिक्षोः पुरस्तात्प्रतिनिसृष्टम् । सोऽहमेवं नामा भिक्षुस्तं परिवासमायुष्मतः पुरस्तात् समाददे । इयत्कालं मे चरितमियत्कालं मे कर्तव्यं भविष्यति । पारिवासिकं मामायुष्मन्धारयतु ।

यथा परिवास एवं मूलपरिवासो मूलापकर्षो मानाप्यं च ।

पारिवासिकवस्तु समाप्तम् ॥

पोषधस्थापनवस्तु

[पोषधस्थापनवस्तूद्दानम् ।] G. M. 107

अशुद्धपोषधाद्भिक्षुर्मौद्गल्यायनेन नाशितः ।
ततः शास्त्राणि विगर्हित्वा संघेन पृष्टः पोषधः ॥ १ ॥
एषा उद्दानगाथा चम्पायां पोषधसूत्रे विस्तरेण ।
तच्च पोषधसूत्रं मध्यमागमे संगीतनिपाते पठ्यते ॥ २ ॥

उद्दानम् ।

चोदनात्स्मारणाच्चैव अवकाशोऽवचनीयतः ।
अववादः प्रस्थापनं पोषधश्च प्रवारणा ॥ ३ ॥

उक्तं भगवता संघस्थविरेण त्वर्धमासं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्य इति । उपधिवारिकः संघस्थविरस्य पुरस्तात् स्थित्वा कथयति । स्थविर प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशेति । स कथयति । आयुष्मन्न शुद्धा तावद्भिक्षुपर्षत् । कोऽत्र स्थविरेणापरिशुद्धो दृष्टः । त्वमेव तावत् । कथमहं स्थविरेण दृष्टः । दिव्येन चक्षुषा । हन्तेदानीं नष्टाः स्मः । यत्र भिक्षवो दिव्येन चक्षुषा दृष्ट्वा चोदयन्ति स्मारयन्ति । इत्येतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । असंव्यवहार्यं भिक्षवो दिव्यचक्षुः । तस्मान्न भिक्षुणा दिव्येन चक्षुषा दृष्ट्वा भिक्षुश्चोदयितव्यः स्मारयितव्यः । भिक्षुर्दिव्येन चक्षुषा दृष्ट्वा भिक्षुं चोदयति स्मारयति सातिसारो भवति ।

यथा दिव्येन चक्षुषा एवं दिव्येन श्रोत्रेण ।

पुनरप्यसावुपधिवारिकः संघस्थविरस्य पुरतः स्थित्वा कथयति । स्थविर प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशेति । स कथयति । आयुष्मन्नपरिशुद्धा तावद्भिक्षुपर्षत् । स्थविर G. M. 108
कोऽत्रापरिशुद्धः । त्वमेव तावत् । स्थविर कथं नाम त्वया संघमध्ये मम शिरसि मुष्टिर्निपातिता । अहो वताहं त्वया एकान्ते चोदितः स्यामिति । स तूष्णीमवस्थितः । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । एकान्ते चोदयितव्यो न संघमध्ये । सचेदेकान्ते चोद्यमानो न स्मरति स्मारयितव्यः । स्मारितश्चेत्कोपमापद्यते । अवकाशः कारयितव्यः । अवकाशं कार्यमाणोऽन्येनान्यं प्रतिसरति । भगवानाह । अवचनीयः कर्तव्यः । अवचनीयः कृतः । तथाप्यन्येनान्यं प्रतिसरति । भगवानाह । अववादोऽस्य स्थापयितव्यः पोषधः प्रवारणा च ।

एकमधार्मिकं पोषधस्थापनमेकं धार्मिकम् । द्वे अधार्मिके [द्वे धार्मिके] । त्रीण्यधार्मिकाणि त्रीणि धार्मिकाणि । चत्वार्यधार्मिकाणि चत्वारि धार्मिकाणि । पंचाधार्मिकाणि पञ्च धार्मिकाणि । षडधार्मिकाणि षड् धार्मिकाणि । सप्ताधार्मिकाणि सप्त धार्मिकाणि । अष्टावधार्मिकाणि अष्टौ धार्मिकाणि । नवाधार्मिकाणि नव धार्मिकाणि । दशाधार्मिकाणि दश धार्मिकाणि पोषधस्थापनानि ।

एकमधार्मिकं पोषधस्थापनमेकं धार्मिकम् । अधार्मिकं कतरत् । अमूलकेन कृतेन पोषधं स्थापयति अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । धार्मिकं पोषधस्थापनं [कतरत् ।] समूलकेन
G. M. 109 कृतेन पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । इदमेकमधार्मिकं पोषधस्थापनमेकं धार्मिकम् ।

द्वे अधार्मिके पोषधस्थापने द्वे धार्मिके । कतमे । अमूलकेनाकृतेनामूलकेन कृतेन पोषधं स्थापयति अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । समूलकेनाकृतेन समूलकेन कृतेन पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । इमे द्वे अधार्मिके पोषधस्थापने द्वे धार्मिके ।

त्रीण्यधार्मिकाणि त्रीणि धार्मिकाणि पोषधस्थापनानि । कतमानि। अमूलकेन कृतेन अमूलकेनाकृतेन अमूलकेन कृताकृतेन पोषधं स्थापयति अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । समूलकेन कृतेन समूलकेनाकृतेन समूलकेन कृताकृतेन पोषधं स्थापयति धार्मिकं पोषधस्थापनम् । इमानि त्रीण्यधार्मिकाणि पोषधस्थापनानि त्रीणि धार्मिकाणि ।

चत्वार्यधार्मिकाणि चत्वारि धार्मिकाणि पोषधस्थापनानि । कतमानि । अमूलिकया शीलविपत्त्या दृष्टिविपत्त्या आचारविपत्त्या आजीवविपत्त्या पोषधं स्थापयत्यधार्मिकं पोषधस्थापनम् । समूलिकया शीलविपत्त्या दृष्टिविपत्त्या आचारविपत्त्या आजीवविपत्त्या पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । इमानि चत्वार्यधार्मिकाणि पोषधस्थापनानि चत्वारि धार्मिकाणि ।

पंचाधार्मिकाणि पंच धार्मिकाणि पोषधस्थापनानि । कतमानि । अमूलिकया पाराजिकया संघावशेषया पायन्तिकया प्रतिदेशनिकया दुष्टतया पोषधं स्थापयत्यधार्मिकं
G. M. 110 पोषधस्थापनम् । समूलिकया पाराजिकया संघावशेषया पायन्तिकया प्रतिदेशनिकया दुष्कृतया पोषधं स्थाप[यति धार्मिकं पोषधस्थाप]नम् । इमानि पञ्चाधार्मिकाणि पोषधस्थापनानि पञ्च धार्मिकाणि ।

षडधार्मिकाणि पोषधस्थापनानि षड् धार्मिकाणि पोषधस्थापनानि। कतमानि। अमूलकेन कृतेन अमूलकेनाकृतेन अमूलकेन कृताकृतेन। अमूलकेन कृतेन सावशेषेण अमूलके[नाकृतेन सावशेषेण अमूलके]न कृताकृतेन सावशेषेण पोषधं स्थापयत्यधार्मिकं पोषधस्थापनम्। समूलकेन कृतेन समूलकेनाकृतेन समूलकेन कृताकृतेन। [समूलकेन कृतेन सावशेषेण] समूलकेनाकृतेन सावशेषेण समूलकेन कृताकृतेन सावशेषेण पोषधं स्थापयति धार्मिकं पोषधस्थापनम्। इमानि षडधार्मिकाणि पोषधस्थापनानि षड् धार्मिकाणि।

सप्ताधार्मिकाणि पोषधस्थापनानि। सप्त धार्मिकाणि पोषधस्थापनानि। कतमानि। अमूलिकया शीलविपत्त्या दृष्टिविपत्त्या आचारविपत्त्या आजीवविपत्त्या [अमूलकेन] दृष्टेन श्रुतेन परिशंकितेन पोषधं स्थापयत्यधार्मिकं पोषधस्थापनम्। समूलिकया शीलविपत्त्या दृष्टिविपत्त्या आचारविपत्त्या आजीवविपत्त्या समूलकेन दृष्टेन श्रुतेन परिशंकितेन पोषधं स्थापयति धार्मिकं पोषधस्थापनम्। इमानि सप्ताधार्मिकाणि सप्त धार्मिकाणि पोषधस्थापनानि।

अष्टावधार्मिकाणि अष्टौ धार्मिकाणि पोषधस्थापनानि। कतमानि। अमूलिकया पाराजिकया संघावशेषया पायन्तिकया प्रतिदेशनिकया दुष्टतया अमूलकेन दृष्टेन श्रुतेन G. M. 111 परिशंकितेन पोषधं स्थापयत्यधार्मिकं पोषधस्थापनम्। समूलिकया पाराजिकया संघावशेषया पायन्तिकया प्रतिदेशनिकया दुष्टतया समूलकेन दृष्टेन श्रुतेन परिशंकितेन पोषधं स्थापयति। धार्मिकं पोषधस्थापनम्। इमान्यष्टावधार्मिकाणि पोषधस्थापनानि अष्टौ धार्मिकाणि।

नवाधार्मिकाणि नव धार्मिकाणि पोषधस्थापनानि। कतमानि। अमूलकेन कृतेन अमूलकेनाकृतेन अमूलकेन कृताकृतेन। अमूलकेन कृतेन सावशेषेण अमूलकेनाकृतेन सावशेषेण अमूलकेन कृताकृतेन सावशेषेण। अमूलकेन कृतेन निरवशेषेण अमूलकेनाकृतेन निरवशेषेण अमूलकेन कृताकृतेन निरवशेषेण पोषधं स्थापयति। अधार्मिकं पोषधस्थापनम्। समूलकेन कृतेन समूलकेनाकृतेन समूलकेन कृताकृतेन। समूलकेन कृतेन सावशेषेण समूलकेनाकृतेन सावशेषेण समूलकेन कृताकृतेन सावशेषेण। समूलकेन कृतेन निरवशेषेण [समूलकेनाकृतेन निरवशेषेण] समूलकेन कृताकृतेन निरवशेषेण पोषधं स्थापयति। धार्मिकं पोषधस्थापनम्। इमानि नवाधार्मिकाणि पोषधस्थापनानि नव धार्मिकाणि।

दशाधार्मिकाणि दश धार्मिकाणि पोषधस्थापनानि । कतमानि । पाराजिको न भवति । पाराजिककथा न विप्रकृता भवति । शिक्षा न प्रत्याख्याता भवति । शिक्षा-
G. M. 112 प्रत्याख्यानकथा न विप्रकृता भवति । संघो न प्रत्याख्यातो भवति । संघप्रत्याख्यानकथा न विप्रकृता भवति । शीलविपन्नो [न] भवति न दृष्टिविपन्नो नाचारविपन्नो नाजीवविपन्नः ।

कथं पाराजिको न भवति । यैराकारैर्यैर्लिङ्गैर्यैर्निमित्तैः पाराजिकामापत्तिमापद्यते तं च भिक्षुः पश्यति न तैराकारैर्न तैर्लिङ्गैर्न तैर्निमित्तैः पाराजिकामापत्तिमापद्यमानम् । स चादृष्ट्वा अश्रुत्वा अपरिशंक्य पोषधं स्थापयति । अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं पाराजिको न भवति ।

कथं पाराजिककथा न विप्रकृता भवति । यथापि तत्संबहुला भिक्षवः संनिषण्णा भवन्ति संनिपतिताः । सा च कथा न तज्जा भवति न तन्मया न विप्रकृता । ते च भिक्षवः उत्थायासनेभ्यो नाना विप्रक्रामन्ति । स चादृष्ट्वा अश्रुत्वा अपरिशंक्य च पोषधं स्थापयति । अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं पाराजिककथा न विप्रकृता भवति ।

कथं शिक्षा न प्रत्याख्याता भवति । यैराकारैर्यैर्लिङ्गैर्यैर्निमित्तैः शिक्षाप्रत्याख्यानं क्रियते तं च भिक्षुः पश्यति न तैराकारैर्न तैर्लिङ्गैर्न तैर्निमित्तैः शिक्षाप्रत्याख्यानं कुर्वाणम् । स चादृष्ट्वा अश्रुत्वा अपरिशंक्य पोषधं स्थापयति । अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं शिक्षा प्रत्याख्याता न भवति ।

कथं शिक्षाप्रत्याख्यानकथा न विप्रकृता भवति । यथापि तत्संबहुला भिक्षवः संनिषण्णा भवन्ति संनिपतिताः । सा च कथा न तज्जा भवति न तन्मया न
G. M. 113 विप्रकृता भवति । ते च भिक्षव उत्थायासनेभ्यो नाना विप्रक्रामन्ति । स चादृष्ट्वा अश्रुत्वा अपरिशंक्य पोषधं स्थापयति । अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । [एवं] शिक्षाप्रत्याख्यानकथा न विप्रकृता भवति ।

कथं संघो न प्रत्याख्यातो भवति । यैराकारैर्यैर्लिङ्गैर्यैर्निमित्तैः संघः प्रत्याख्यायते तं च भिक्षुः पश्यति न तैराकारैर्न तैर्लिङ्गैर्न तैर्निमित्तैः संघप्रत्याख्यानं कुर्वन्तम् । स चादृष्ट्वा अश्रुत्वा अपरिशंक्य पोषधं स्थापयति । अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं संघो न प्रत्याख्यातो भवति ।

कथं संघप्रत्याख्यानकथा न विप्रकृता भवति । यथापि तत्संबहुला भिक्षवः संनिषण्णा भवन्ति संनिपतिताः सा च कथा न तज्जा भवति न तन्मया न विप्रकृता ।

ते च भिक्षव उत्थायासनेभ्यो नाना विप्रक्रामन्ति । स चादृष्ट्वा अश्रुत्वा अपरिशंक्य पोषधं स्थापयति । अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं संघप्रत्याख्यानकथा न विप्रकृता भवति ।

कथं न शीलविपन्नो भवति । चतुर्णां पाराजिकानाम [न्यतमा]-न्यतमामापत्तिमापन्नो भवति । तस्य च भिक्षुरदृष्ट्वा अश्रुत्वा अपरिशंक्य पोषधं स्थापयति । अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं न शीलविपन्नो भवति ।

कथं न दृष्टिविपन्नो भवति । द्वाषष्टेर्दृष्टिगतानामन्यतरान्यतरां दृष्टिमनभिनिविष्टो भवति । तस्य च भिक्षुरदृष्ट्वा अश्रुत्वा अपरिशंक्य पोषधं स्थापयति । अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं न दृष्टिविपन्नो भवति ।

कथं नाचारविपन्नो भवति । आनुलोमिकैः शिक्षानुकूलैर्वचनपथैरुच्यमानः सम्यक् G. M. 114 प्रतिपद्यते । तस्य च भिक्षुरदृष्ट्वा अश्रुत्वा अपरिशंक्य पोषधं स्थापयति । अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं नाचारविपन्नो भवति ।

कथं नाजीवविपन्नो भवति । आजीवोऽस्य परिशुद्धो भवति । तस्य च भिक्षुरदृष्ट्वा अश्रुत्वा अपरिशंक्य पोषधं स्थापयति । अधार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं नाजीवविपन्नो भवति ।

शुक्लपक्षे पाराजिको भवति । पाराजिककथा विप्रकृता भवति । शिक्षा प्रत्याख्याता भवति । शिक्षाप्रत्याख्यानकथा विप्रकृता भवति । संघः प्रत्याख्यातो भवति । संघप्रत्याख्यानकथा विप्रकृता भवति । शीलविपन्नो भवति दृष्टिविपन्न आचारविपन्न आजीवविपन्नश्च ।

कथं पाराजिको भवति । यैराकारैर्यैर्लिङ्गैर्यैर्निमित्तैः पाराजिकामापत्तिमापद्यते । तं च भिक्षुः पश्यति तैराकारैस्तैर्लिङ्गैस्तैर्निमित्तैः पाराजिकामापत्तिमापद्यमानम् । स दृष्ट्वा श्रुत्वा परिशंक्य पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं पाराजिको भवति ।

कथं पाराजिककथा विप्रकृता भवति । यथापि तत्संबहुला भिक्षवः संनिषण्णा भवन्ति संनिपतिताः । सा च कथा तज्जा भवति तन्मया विप्रकृता । ते च भिक्षवस्तथा संनिषण्णा एव । स च दृष्ट्वा श्रुत्वा परिशंक्य पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषध- G. M. 115 स्थापनम् । एवं पाराजिककथा विप्रकृता भवति ।

कथं शिक्षा प्रत्याख्याता भवति । यैराकारैर्यैर्लिङ्गैर्यैर्निमित्तैः शिक्षाप्रत्याख्यानं क्रियते तं च भिक्षुः पश्यति तैराकारैस्तैर्लिङ्गैस्तैर्निमित्तैः शिक्षाप्रत्याख्यानं कुर्वाणम् । स च दृष्ट्वा श्रुत्वा परिशंक्य पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं शिक्षा प्रत्याख्याता भवति ।

कथं शिक्षाप्रत्याख्यानकथा विप्रकृता भवति । यथापि तत्संबहुला भिक्षवः संनिषण्णा भवन्ति संनिपतिताः । सा च कथा तज्जा भवति तन्मया विप्रकृता । ते च भिक्षवस्तथा संनिषण्णा एव । स च दृष्ट्वा श्रुत्वा परिशंक्य पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं शिक्षाप्रत्याख्यानकथा विप्रकृता भवति ।

कथं संघः प्रत्याख्यातो भवति । यैराकारैर्यैर्लिङ्गैर्यैर्निमित्तैः संघः प्रत्याख्यायते तं च भिक्षुः पश्यति तैराकारैस्तैर्लिङ्गैस्तैर्निमित्तैः संघप्रत्याख्यानं कुर्वाणम् । स च दृष्ट्वा श्रुत्वा परिशंक्य पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं संघः प्रत्याख्यातो भवति ।

कथं संघप्रत्याख्यानकथा विप्रकृता भवति । यथापि तत्संबहुला भिक्षवः संनिषण्णा भवन्ति संन्निपतिताः । सा च कथा तज्जा भवति तन्मया विप्रकृता । ते च भिक्षवस्तथा [सं]निषण्णा एव । स च दृष्ट्वा [श्रुत्वा] परिशंक्य पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं संघप्रत्याख्यानकथा विप्रकृता भवति ।

G. M. 116 कथं शीलविपन्नो भवति । चतुर्णां पाराजिकानामन्यतमान्यतमामापत्तिमापन्नो भवति । तस्य च भिक्षुर्दृष्ट्वा श्रुत्वा परिशंक्य पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं शीलविपन्नो भवति ।

कथं दृष्टिविपन्नो भवति । द्वाषष्टेर्दृष्टिगतानामन्यतरान्यतरां दृष्टिमभिनिविष्टो भवति । तस्य च भिक्षुर्दृष्ट्वा श्रुत्वा परिशंक्य पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवं दृष्टिविपन्नो भवति ।

कथमाचारविपन्नो भवति । आनुलोमिकैः शिक्षानुकूलैर्वचनपथैरुच्यमानो न सम्यक् प्रतिपद्यते । तस्य [च] भिक्षुर्दृष्ट्वा श्रुत्वा परिशंक्य पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवमाचारविपन्नो भवति ।

कथमाजीवविपन्नो भवति । आजीवोऽस्यापरिशुद्धो भवति । तस्य [च] भिक्षुर्दृष्ट्वा श्रुत्वा परिशंक्य पोषधं स्थापयति । धार्मिकं पोषधस्थापनम् । एवमाजीवविपन्नो भवति ।

इमानि दशाधार्मिकाणि दश धार्मिकाणि पोषधस्थापनानि। यथा पोषधस्थापनमेवं प्रवारणास्थापनम्।

पंचेमे भिक्षवः संघाः। कतमे पंच। अलज्जिसंघः एड[मू]कसंघः गणसंघः संवृतिसंघः परमार्थसंघश्च।

अलज्जिसंघः कतमः। यत्र सर्वे भिक्षवो दुःशीलाः पापधर्माणः। एडमूकसंघः कतमः। यत्र न सूत्रधरो न विनयधरो न मातृकाधरः। गणसंघः कतमः। यत्र गणसंबन्धेन कर्माणि क्रियन्ते। संवृतिसंघः कतमः। सर्वे पृथग्जनकल्याणकाः। G. M. 117 परमार्थसंघः कतमः। शैक्षाशैक्षा अष्टौ महापुरुषपुद्गलाः। तत्र ये पूर्वकास्त्रयः संघाः अलज्जि[नः]संघः एडमूकसंघः गणसंघश्च लभ्यमेभिरधर्मेण कर्मणा कर्तुम्। योऽयं संवृतिसंघो लभ्यमनेन धर्मसंज्ञिना अधर्मेण कर्मणा कर्तुम्। यस्त्वयं परमार्थसंघो न लभ्यमनेनाधर्मेण कर्मणा कर्तुम्।

पोषधस्थापनवस्तु समाप्तम्॥

शयनासनवस्तु

G.M. 121 [शयनासनवस्तूद्दानम् ।]

शाक्याः पंचकाधश्च साङ्घिकं पौद्गलिकं च वस्तुभङ्गेन ।
कारयेत् प्रतिसंस्तरणभूमिमरण्यं च त्रिचीवरम् ।
उच्छेद्यमरण्यं भिक्षुस्थविरो लाभयाष्टौ भवति पश्चिमम् ॥ १ ॥

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवने अनाथपिण्डदस्यारामे । तेन खलु समयेन संबहुलानां भिक्षूणामुपस्थानशालायां संनिषण्णानां संनिपतितानामयमेवंरूपोऽभूदन्तराकथासमुदाहारः । कोऽस्माभिरायुष्मन्तः सत्कर्तव्यो गुरुकर्तव्यो मानयितव्यः पूजयितव्यः । कस्य चास्माभिरभिवादन-वन्दन-प्रत्युत्थानांजलिसामीचीकर्म कर्त्तव्यम् । कोऽस्माकमर्हति अग्रासनमग्रोदकमग्रपिण्डपातं परिभोक्तुमिति । तत्रैके एवमाहुः शाक्यः प्रव्रजित इति । अन्ये त्वेवमाहुः यो ब्राह्मणः प्रव्रजित इति । अपरे यः क्षत्रियः
G.M. 122 प्रव्रजितः । अपरे यो वैश्यः प्रव्रजितः । अपरे यः शूद्रः प्रव्रजितः । अपरे उच्चात्कुलात्प्रव्रजितोऽन्यूनात् । आढ्यात्कुलात्प्रव्रजितोऽदीनात् । अपरे योऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः कल्याणवाक्यो वाक्करणेनोपेतो ज्ञातो महापुण्यः सूत्रधरो विनयधरो मातृकाधरो बहुश्रुतो धार्मकथिकः स्थविरो राजन्यः आरण्यकः त्रैचीवरिको नामतिकः पांसुकुलिकः पिण्डपातिकः एकासनिकः खलुपश्चाद्भक्तिको वृक्षमूलिकः श्माशानिकोऽभ्यवकाशिकः नैषदिको यथासंस्तरिको यो लाभी अनित्यसंज्ञायाः पूर्ववद्यावत् योऽर्हन्नष्टविमोक्षध्यायीति । अपरे एवमाहुः सर्वेषामस्माकमायुष्मन्तो न समेति यदुत नाना प्रज्ञप्त्या । एते वयं येन भगवांस्तेनोपसंक्रमामः । उपसंक्रम्य भगवन्तमेतमर्थं परिपृच्छामः । यथास्माकं स भगवान् व्याकरिष्यति तथैनं धारयिष्याम इति ।

अथ संबहुला भिक्षवो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा एकान्ते निषण्णाः । एकान्तनिषण्णाः संबहुला भिक्षवो भगवन्तमिदमवोचन् । इहास्माकं भदन्त संबहुलानां भिक्षूणामुपस्थानशालायां संनिषण्णानां संनिपतितानामयमेवंरूपोऽभूदन्तराकथासमुदाहारः । पूर्ववद्यावत् । यथास्माकं भगवान्व्याकरिष्यति

तथैनं धारयिष्याम इति । ते वयं भदन्त भगवन्तमेतमेवार्थं परिपृच्छामः। कोऽस्माभिः सत्कर्तव्यो गुरुकर्तव्यो मानयितव्यः पूजयितव्यः । पूर्ववद्यावद् अग्रपिण्डपातं परिभोक्तु- G. M. 123
मिति । भगवानाह । वृद्धतरको युष्माभिर्भिक्षवः सत्कर्तव्यो गुरुकर्तव्यो मानयितव्यः पूजयितव्यः । अभिवादन-वन्दन-प्रत्युत्थानांजलिसामीचीकर्म कर्तव्यम् । स च युष्माकमर्हत्यग्रासनमग्रोदकमग्रपिण्डपातं परिभोक्तुमिति ।

उक्तं भगवता । वृद्धतरको भिक्षुर्युष्माभिः सत्कर्तव्यः । पूर्ववद्यावदग्रासनं परिभोक्तुमिति । भिक्षवः आगारिकान् वृद्धान् सत्कुर्वन्ति मानयन्ति पूजयन्ति । श्रुत्वा ब्राह्मणगृहपतयोऽवध्यायन्ति क्षिपन्ति विवाचयन्ति । आर्या वयं कामभोगिनः कामपंकनिमग्नाः । कथं यूयमस्माकं सत्कुर्वथ । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । प्रव्रजितान् भिक्षवो मया सन्धायोक्तं नो त्वागारिकानिति ।

भिक्षवः अन्यतीर्थिकान्वृद्धान् दृष्ट्वा सत्कुर्वन्ति गुरुकुर्वन्ति मानयन्ति पूजयन्ति । भगवानाह । इह धार्मिकान्मया सन्धायोक्तं नो तु बाह्यकानिति ।

ते श्रामणेरकान्वृद्धप्रव्रजितान् दृष्ट्वा सत्कुर्वन्ति गुरुकुर्वन्ति मानयन्ति पूजयन्ति । भगवानाह । उपसंपन्नान्भिक्षवो मया सन्धायोक्तं नो तु श्रामणेरकानिति ।

ते नवोपसंपन्नान् वृद्धान् सत्कुर्वन्ति गुरुकुर्वन्ति मानयन्ति पूजयन्ति । भगवानाह । अन्योन्यं वर्षाग्रं पृष्ट्वा वन्दितव्यम् । ते पृष्टाः सन्तो जन्मवर्षाणि कथयन्ति । भगवानाह । उपसंपद्वर्षाग्रं प्रष्टव्यमिति । भिक्षवो न जानते [कति वर्षाग्राणीति] । भगवानाह । सामयिकमारोचयितव्यम् । भिक्षवो न जानते कति सामयिकानिति । G. M. 124
भगवानाह । पंचेमे भिक्षवः समयाः । हैमन्तिकं ग्रैष्मिकं वार्षिकं मृतवार्षिकं दीर्घवार्षिकमिति । तत्र हैमन्तिकं चत्वारो मासाः । ग्रैष्मिकं चत्वारो मासाः । [वार्षिकमेको मासः] । मृतवार्षिकमेकं रात्रिन्दिवसम् । दीर्घवार्षिकं रात्र्यूनास्त्रयो मासाः । इत्येवं सामयिकमारोचयित्वा यः पूर्वोपसंपन्नः स वन्दितव्यः ।

अपरे भिक्षवश्चत्वारो वन्द्याः । कतमे चत्वारो वन्द्याः । सदेवकस्य तावल्लोकस्य समारकस्य सब्रह्मकस्य सश्रमणब्राह्मणिकाया [प्रजा]याः सदेवमानुषायास्तथागतार्हत्सम्यक्संबुद्धो वन्द्यः । सर्वेषां गृहिणः प्रव्रजिता वन्द्याः । सर्वेषामुपसंपन्नानां पूर्वोपसंपन्ना वन्द्याः स्थापयित्वा भिक्षुणीम् । तस्या वर्षशतोपसंपन्नाया अपि तदहः उपसंपन्नो भिक्षुर्वन्द्यः सर्वस्योपसंपन्नको वन्द्यः ।

दशावन्द्याः । कतमे । पारिवासिको मूलपारिवासिकः पर्युषितपरिवासः मानाप्यचारिकश्चरितमानाप्योऽदर्शनायोत्क्षिप्तकः अप्रतिकर्मायोत्क्षिप्तकः अप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षिप्तकः स चो गृही चानुपसंपन्नः ।

यदा भगवता यथावृद्धिकया प्रज्ञप्तास्तदा भिक्षवोऽन्योन्यं सत्कुर्वन्ति गुरुकुर्वन्ति मानयन्ति पूजयन्ति । तेऽन्योन्यं सत्कुर्वन्तो मानयन्तः पूजयन्तो वर्धन्ते कुशलैर्धर्मैरुत्पलं G. M. 125 वा यथोदके । भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः । पश्य भदन्त यदा भगवता यथावृद्धिकया प्रज्ञप्तास्तदा भिक्षवोऽन्योन्यं सत्कुर्वन्ति गुरुकुर्वन्ति मानयन्ति पूजयन्ति । तेऽन्योन्यं सत्कुर्वन्तो गुरुकुर्वन्तो मानयन्तः पूजयन्तो वर्धन्ते कुशलैर्धर्मैरुत्पलं वा यथोदके इति । भगवानाह । किमत्र भिक्षवः आश्चर्यं यदिदानीं मया विगतरागेण विगतद्वेषेण विगतमोहेन परिमुक्तेन जातिजराव्याधिमरणशोकपरिदेवदुःखदौर्मनस्योपायासैः सर्वज्ञेन सर्वाकारज्ञेन सर्वज्ञानज्ञेयवशिप्राप्तेन यथावृद्धिकायां प्रज्ञप्तायां यथावृद्धिकामागम्य भिक्षवोऽन्योन्यं सत्कुर्वन्ति गुरुकुर्वन्ति पूर्ववद्यावदुत्पलं वा यथोदके इति । यत्तु मया सरागेण सद्वेषेण समोहेनापरिमुक्तेन जातिजराव्याधिमरण-शोक-परिदेव-दुःख-दौर्मनस्योपायासैर्विनिपतितशरीरेण यथावृद्धिकायां प्रज्ञप्तायां यथावृद्धिकामागम्य सकलो जम्बूद्वीपनिवासी जनकायो यद्भूयसा प्रणीते त्रयस्त्रिंशे देवनिकाये उपपन्नस्तच्छ्रूयताम् ।

भूतपूर्वं भिक्षवः काशीषु जनपदे अन्यतमस्मिन्वनगहने चत्वारः प्राणिनः प्रतिवसन्ति कपिञ्जलः शशो मर्कटो गजाश्चः । ते च परस्परं सख्येनावस्थिताः सहिताः समग्राः संमोदमाना अविवदमाना अशंकिनो यथेष्टविहारतया कालमतिनामयन्ति । G.M. 126 यावदपरेण समयेन तेषां बुद्धिरुत्पन्ना । अस्ति वयं भवन्तः परस्परं सख्येनावस्थिताः सहिताः समग्राः संमोदमाना अविवदमानाः । किन्तु न जानीमः कोऽस्माभिः सत्कर्तव्यो गुरुकर्तव्यो मानयितव्यः पूजयितव्यः इति । यत्तु वयं यथावृद्धिकां प्रज्ञपयेम इति । ते परस्परं संजल्पं कर्तुमारब्धा इति । कोऽस्माकं वृद्ध इति । ततः कपिंजलेन वटवृक्षो दर्शितः । भवन्तः एष वटवृक्षः केन कियत्प्रमाणो दृष्ट इति । हस्ती कथयति । मया यूथेन सहानेन पथा गच्छता अयं दृष्टो मत्प्रमाण एव उच्चत्वेनेति । मर्कटः कथयति । मया यूथेन सहानेन पथा गच्छता अयं दृष्टो मम तुल्य एवोच्चत्वेनेति । ते कथयन्ति । त्वमस्य वृद्ध इति । शशः कथयति । मयाप्यस्य द्विपत्रकस्य पत्रेष्वेवावश्यायबिन्दवो जिह्वया निर्लीढा इति । ते कथयन्ति । त्वमप्यनयोर्वृद्ध इति । कपिञ्जलः कथयति ।

पश्यत यूयमेनं वटवृक्षं महत्प्रमाणाकारम्। ते कथयन्ति। पश्यामः। एतस्मान्मया फलानि भक्षयित्वास्मिन्प्रदेशे उच्चारः कृतस्तस्मादयं जात इति। ते कथयन्ति। यद्येवं त्वमस्माकं सर्वेषां वृद्ध इति। ततो हस्ती सर्वेषां सत्कर्तुमारब्धः। मर्कटः शशः कपिंजलं च। शशः कपिंजलमेव। ते एवं यथावृद्धिकया सत्कुर्वन्तस्तस्मिन्वनगहने इतश्चामुतश्च परिभ्रमन्ति। यदा विषमनिम्नाः प्रदेशा गन्तव्या भवन्ति तदा हस्तिनं मर्कटोऽभिरोहति मर्कटं शशः शशमपि कपिंजलः।

तेषामेवं प्रवृद्धस्नेहानां सगौरवाणां च बुद्धिरुत्पन्ना। अस्ति वयं भवन्तः प्रवृद्धस्नेहाः सगौरवाश्च। अन्यदपि तावत्किंचित्कुशलं समादाय वर्तेमहीति। किं कुर्मः। G. M. 127 कपिंजलः कथयति। प्राणातिपातात्प्रतिविरमामः। कीदृशोऽस्माकं प्राणातिपातः। कपिंजलः कथयति। सन्ति तृणपुष्पफलानि सप्राणकानि सन्ति निष्प्राणकानि। तदस्माभिरद्याग्रेण सप्राणकानि परित्यज्य निष्प्राणकानि परिभोक्तव्यानि। ते सप्राणकानि परित्यज्य निष्प्राणकानि परिभोक्तुमारब्धाः।

तेषामेतदभवत्। अस्ति वयं प्राणातिपातात्प्रतिविरता नो त्वदत्तादानात्प्रतिविरमामः। कीदृशोऽस्माकमदत्तादानम्। कपिंजलः कथयति। सन्ति सपरिग्रहाणि तृणपत्रपुष्पफलानि सन्ति निष्परिग्रहाणि। तदस्माभिरद्याग्रेण सपरिग्रहाणि परित्यज्य निष्परिग्रहाणि परिभोक्तव्यानि। ते सपरिग्रहाणि परित्यज्य निष्परिग्रहाणि [परि] भोक्तुमारब्धाः।

तेषामेतदभवत्। अस्ति वयमदत्तादानात्प्रतिविरताः। नो तु काममिथ्याचारात्। यन्नु वयं काममिथ्याचारात् प्रतिविरमामः। कीदृशोऽस्माकं काममिथ्याचारः। कपिंजलः कथयति। वयं गम्या अपि गच्छामः। अगम्या अपि गच्छामः। तदस्माभिरद्याग्रेण गम्यैव गन्तव्या नागम्या। ते गम्यां गच्छन्ति ;नागम्याम्।

तेषामेतदभवत्। अस्ति वयं काममिथ्याचारात्प्रतिविरताः। नो तु मृषावादात्। यन्नु वयं मृषावादात्प्रतिविरमामः। कीदृशोऽस्माकं मृषावादः। कपिंजलः कथयति। वयं यद्वा तद्वा विप्रलपामः। तदस्माभिरद्याग्रेण न यद्वा तद्वा विप्रलपितव्यम्। विचार्य विचार्य काले वागुदीरयितव्या। ते न यद्वा तद्वा [वि] प्रलपन्ति किंतु विचार्य विचार्य G.M. 128 कालेन वागुदीरयन्ति।

तेषामेतदभवत्। अस्ति वयं मृषावादात्प्रतिविरताः। नो तु सुरामैरेयमद्यप्रमादस्थानात्प्रतिविरताः। यन्नु वयं सुरामैरेयमद्यप्रमादस्थानात्प्रतिविरमामः। कीदृशमस्माकं

सुरामैरेयमद्यप्रमादस्थानम् । कपिंजलः कथयति । सन्ति मादनीयानि फलानि सन्त्यमादनीयानि । तदस्माभिरद्याग्रेण मादनीयानि फलानि परित्यज्यामादनीयानि फलानि परिभोक्तव्यानि । ते मादनीयानि फलानि परित्यज्यामादनीयानि फलानि परिभोक्तुमारब्धाः ।

यदा ते पंचसु व्रतपदेषु प्रतिष्ठापितास्तदा कपिंजलः कथयति । अस्ति वयं भवन्तः पंचसु व्रतपदेषु प्रतिष्ठिताः । यन्नु वयमन्यानपि पंचसु व्रतपदेषु प्रतिष्ठापयामः । तदा कपिंजलः कथयति । अस्ति वयं भवन्तः पंचसु व्रतपदेषु प्रतिष्ठिताः । यन्नु वयमन्यानपि पंचसु व्रतपदेषु प्रतिष्ठापयामः । ते कथयन्ति । एवं कुर्मः । को युष्माकं प्रतिष्ठापयति । मर्कटः कथयति । अहं सर्वान् शाखामृगान्प्रतिष्ठापयामि । ततः शशः कथयति । अहं सर्वान् शशान् लोमशान् मृगांश्च प्रतिष्ठापयामि । हस्ती कथयति । अहं सर्वान् हस्तिनः सिंहान् व्याघ्रद्वीपिनश्च प्रतिष्ठापयामि । कपिंजलः कथयति । यद्येवमेतत्तु संक्षेपय युष्माकमविनीया अपदा द्विपदाश्चतुष्पदाः पक्षिणश्च । तानहं सर्वान् G.M 129 पंचसु व्रतपदेषु प्रतिष्ठापयामीति । ततस्ते काशीविषये यावत्तिर्यग्योनिगताः प्राणिनस्ते सर्वे पंचसु व्रतपदेषु प्रतिष्ठापिताः । ते अन्योन्यमव्याबाधमानास्तस्मिन् वनषण्डे संप्रजानविहारिणो यथेष्टं विहरन्ति । तेषामनुभावाद्देवः कालवर्षी संवृत्तः । सदा पुष्पफला वृक्षाः शस्यवती वसुमती । तैर्मनुष्यैर्दृष्टा अन्योन्यमव्याबाधमाना विहरन्तः । सदा पुष्पफला वृक्षाः शस्यवती वसुमती । राजा कथयति । अहं धर्मेण राज्यं कारयामि ममैषोऽनुभाव इति । अन्तःपुरं कुमारामात्या भटबलाग्रं नैगमजानपदाश्च । राजा संलक्षयति । सर्वं एते कथयन्ति । ममानुभावो ममानुभाव इति । तन्न ज्ञायते कस्यानुभाव इति । स कुतूहलजातो नैमित्तिकानाहूय पृष्टवान् । तैरपि न ज्ञातम् । यावद्वाराणस्यां नातिदूरे उद्यानम् । तत्र पञ्चाभिज्ञ ऋषिः प्रतिवसति सकलस्य वाराणसीनिवासिनो जनकायस्य पूज्यो मान्योऽभिवाद्यश्च । ततो राजा तस्य ऋषेः सकाशमुपसंक्रान्तः पादयोर्निपत्य कथयति । महर्षे मम विजिते यावत्तिर्यग्योनिगताः प्राणिनस्ते सर्वे अन्योन्यमव्याबाधमानाः संप्रजानविहारिणो यथेष्टं विहरन्ति । देवः कालवर्षी सदा पुष्पफला वृक्षाः शस्यवती च वसुमती । तस्मान्ममैतदभवत् । अहं धर्मेण राज्यं कारयामि । ममैषोऽनुभाव इति । अन्तःपुरं कुमारामात्या भटबलाग्रं नैगमजानपदाश्च संलक्षयन्ति । अस्मा [क]मेषोऽनुभाव इति । तन्न ज्ञायते कस्यायमनुभाव इति । कौतुकश्च मे महान् । त्वमर्हसि संशयं छेत्तुम् । कस्यायमनुभाव इति । स कथयति । महाराज न तवैषोऽनुभावो

नान्तःपुरस्य न कुमाराणां नामात्यानां न भटबलाग्रस्य न नैगमजानपदानाम्। G. M. 130 तु तव विजिते चत्वारः प्राणिनः प्रतिवसन्ति। तेषामयमनुभाव इति। राजा कथयति। गच्छामि तान् पश्यामीति। ऋषिः कथयति। महाराज किं तव तैर्दृष्टैरपि तु यत्ते समादाय वर्तन्ते तत्समादाय वर्तस्वेति। किं ते समादाय वर्तन्ते। पञ्च व्रतपदानि। महर्षे कीदृशानि पञ्च व्रतपदानि। महाराज ते प्राणिनं जीवितान्न व्यवरोपयन्ति। परस्वं नापहरन्ति। अगम्यागमनं न कुर्वन्ति। मृषावादं न भाषन्ते। मद्यपानं च नाध्याचरन्ति। राजा कथयति। महर्षे यद्येवमहमप्येतानि पञ्च व्रतपदानि समादाय वर्तेम। अथ स राजा पञ्च व्रतपदानि समादाय वर्तितुमारब्धः। राजा पञ्च व्रतपदानि समादाय वर्तत इति देव्योऽपि पञ्च व्रतपदानि समादाय वर्तितुमारब्धाः। कुमारा अमात्या भटबलाग्रं नैगमजानपदा अपि पञ्च व्रतपदानि समादाय वर्तितुमारब्धानि। प्रातिसीमैः कोट्टराजभिः श्रुतम्। राजा ब्रह्मदत्तः पञ्च व्रतपदानि समादाय वर्तते सार्धमन्तःपुरेण कुमारैरमात्यैर्भटबलाग्रैर्नैगमजानपदैरिति। श्रुत्वा च पुनस्तेऽपि पञ्चव्रतपदानि समादाय वर्तितुमारब्धाः सार्धमन्तःपुरेण कुमारैरमात्यैर्भटबलाग्रैर्नैगमजानपदैरिति। भूयसा सर्व एव जनकायः पञ्च व्रतपदानि समादाय वर्तितुमारब्धः।

तेन खलु समयेन जम्बूद्वीपे यः कालं करोति स कायस्य भेदात्प्रणीतेषु देवेषु त्रयस्त्रिंशेषूपपद्यते। ततः शक्रो देवेन्द्रः आपूर्यमाणं देवपर्षदं दृष्ट्वा च पुनर्गाथां भाषते।

सगौरवाः सप्रतीशा विहरन्ति तयोर्वने। G. M. 131
कपिंजलं ब्रह्मचर्यं पृथग्लोकप्रकाशितम्॥ २॥ इति।

भगवानाह। किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ कपिंजलः अहमेव सः। तेन कालेन तेन समयेन शशः शारिपुत्रो भिक्षुर्मर्कटो मौद्गल्यायनो भिक्षुर्गज आनन्दः। तदापि मया यथावृद्धिकायां यथाप्रज्ञप्तायां यथावृद्धिकामागम्य सकलो जम्बूद्वीपनिवासी जनकायो भूयसा त्रयस्त्रिंशे देवनिकाये उपपन्नः। एतर्ह्यपि मया यथावृद्धिकायां[यथा]प्रज्ञप्तायां यथावृद्धिकामागम्य भिक्षवोऽन्योन्यं सत्कुर्वन्तो गुरुकुर्वन्तो मानयन्तः पूजयन्तो वर्धन्ते कुशलैर्धर्मैरुत्पलं वा यथोदके। तस्मात्तर्हि भिक्षवः सगौरवा विहरत सप्रतीशाः सभयवशवर्तिनः सब्रह्मचारिषु स्थविरेषु मध्येषु नवकेषु। तत्कस्य हेतोः। स तावद्भिक्षवो भिक्षुरगौरवो विहरन्नप्रतीशः अभयवशवर्ती स्थविरेषु मध्येषु नवकेषु आसमुदाचारिकान् धर्मान्

परिपूरयिष्यति नेदं स्थानं विद्यते। आसमुदाचारिकान् धर्मानपरिपूर्य शैक्षान् धर्मान् परिपूरयिष्यति नेदं स्थानं विद्यते। शैक्षान्धर्मानपरिपूर्य शीलस्कन्धं समाधिस्कन्धं प्रज्ञास्कन्धं विमुक्तिस्कन्धं विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्धं परिपूरयिष्यति नेदं स्थानं विद्यते। विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्धमपरिपूर्यानुपादाय परिनिर्वास्यति नेदं स्थानं विद्यते। स तावद्भिक्षवो भिक्षुः सगौरवो विहरन् सप्रतीशः सभयवशवर्ती सब्रह्मचारिषु स्थविरेषु G. M. 132 मध्येषु नवकेषु आसमुदाचारिकान् धर्मान् पूरयिष्यति स्थानमेतद्विद्यते। आसमुदाचारिकान् धर्मान् परिपूर्य शैक्षान् धर्मान् परिपूरयिष्यति स्थानमेतद्विद्यते। शैक्षान् धर्मान् परिपूर्य शीलस्कन्धं समाधिस्कन्धं प्रज्ञास्कन्धं विमुक्तिस्कन्धं विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्धं परिपूरयिष्यति स्थानमेतद्विद्यते। विमुक्तिज्ञानदर्शनस्कन्धं परिपूर्यानुपादाय परिनिर्वास्यति स्थानमेतद्विद्यते। तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यम्। यत्सगौरवा विहरिष्यामः सप्रतीशाः सभयवशवर्तिनः [सब्रह्मचारिषु] स्थविरेषु मध्येषु नवकेषु। इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्।

यदा भगवतः पञ्चका विनीतास्ते अरण्ये प्रतिवसन्ति। ते अरण्ये प्रतिवसन्तोऽगम्या भवन्ति सिंहानां व्याघ्राणां द्वीपिनां तरक्षूणाम्।

भगवान् संलक्षयति। कुत्र पूर्वकाणां सम्यक्संबुद्धानां श्रावकावासं कल्पितवन्तः। पश्यति विहारे। देवताभिरप्येवं भगवत आरोचितम्।

तेन खलु समयेन वाराणस्यां कल्याणभद्रो नाम गृहपतिः प्रतिवसति। तस्य कुशलमूलप्रतिबोधितसन्ततेरेतदभवत्। अहो बताहं भगवतः श्रावकाणां विहारं कारयेयमिति। स काल्यमेवोत्थाय येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णः। एकान्तनिषण्णं कल्याणभद्रिकं गृहपतिं भगवान्धर्म्यया कथया संदर्शयति समादापयति समुत्तेजयति संप्रहर्षयति। अनेकपर्यायेण धर्म्यया G. M. 133 कथया संदर्श्य समादाप्य समुत्तेज्य संप्रहर्ष्य तूष्णीम्। अथ कल्याणभद्रिको गृहपतिरुत्थायासनादेकांसमुत्तरासंगं कृत्वा येन भगवांस्तेनांजलिं प्रणम्य भगवन्तमिदमवोचत्। यदि भगवाननुजानीयादहं भगवतः श्रावकाणां विहारं कारयेयमिति। भगवानाह। तस्माद् गृहपते अनुजानामि कारय इति। स न जानीते कीदृशः कारयितव्य इति। भगवानाह। यदि त्रिलयनं कारयसि मध्ये गन्धकुटिः कारयितव्या द्वयोः पार्श्वयोर्द्वे लयने। एवं त्रिशाले नव लयनानि। चतुःशाले मध्ये द्वारकोष्ठकाभिमुखं

गन्धकुटिः । द्वारकोष्ठकपार्श्वयोर्द्वे लयने । स न जानीते कति पुराः कर्तव्या इति । भगवानाह । भिक्षूणां पंचपुरा विहाराः कर्तव्याः । सप्तपुरा गन्धकुटिः । सप्तपूरा बालाग्रपूतिकाः । भिक्षूणीनां तु त्रिपुरा विहाराः कर्तव्याः । पंचपुरा गन्धकुटिः । पंचपुरा बालाग्रपूतिका इति ।

तेन खलु समयेन श्रावस्त्यां दत्तो नाम गृहपतिः प्रतिवसति आढ्यो महाधनो महाभोगो विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनसमुदितो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्धी । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः कालान्तरेण पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । सा चाष्टानां वा नवानां G. M. 134
वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातः । तस्य त्रीणि सप्तकान्येकविंशतिदिवसान्विस्तरेण जातस्य जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थाप्यते । किं भवतु दारकस्य नामेति । ज्ञातय ऊचुः । अयं दारको दत्तस्य गृहपतेः पुत्रस्तस्माद्भवतु दारकस्य सुदत्त इति नामेति । तस्य सुदत्त इति नामधेयं व्यवस्थापितम् । सुदत्तो दारकोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यो दत्तः । द्वाभ्यामंसधात्रीभ्याम् । द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्याम् । द्वाभ्यां मलधात्रीभ्याम् । द्वाभ्यां क्रीडनकाभ्यां धात्रीभ्याम् । सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्धते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैराशु वर्धते ह्रदस्थमिव पंकजम् । सोऽपरेण समयेन सर्वालंकारविभूषितो धात्र्यंसगतो निषण्णो बहिर्निर्गतः । याचनकेनालंकारं प्रार्थितः । कुमाराहमलंकारेणार्थी । प्रयच्छ मे अलंकारमिति । तेन प्रमुदितमनसा असावलंकारो दत्तः । स गृहं प्रविष्टः । पित्रा चास्य धात्री पृष्टा । कुत्र कुमारस्यालंकार इति । सा कथयति । दत्तः कुमारेण याचनकायेति । सोऽन्येनालंकारेण विभूषितः । सोऽपि दत्तः । भूयोऽप्यलंकृतः । सोऽपि तेन दत्तः । स गृहपतिः पत्नीमामन्त्रयते । भद्रे शोभनोऽस्माकं पुत्रो जातः । नित्यं दानाभिरत इति । सा कथयति आर्यपुत्र यद्येवं नैनं भूयोऽप्यलंकरिष्यामि । स कथयति । भद्रे अस्त्यस्माकं सुवर्णमप्रमेयं रत्नानि च । किन्तु अलंकारघटका न सन्ति । सर्वथा नायं बहिर्निष्कासयितव्य इति । सोऽभ्यन्तर एव लाड्यते । यावदपरेण समयेन सुदत्तो गृहपतिर्भृत्यजनपरिवृतो नदीमजीरवतीं स्नातुं संप्रस्थितः । सुदत्तो दारकः कथयति । G. M. 135
तात अहमपि गच्छामीति । स तं विप्रलम्भयितुमारब्धः । पुत्र इहैव शोभनं सलिलम् । नदी ग्राहाकुला । इयं ते धात्री स्नापयिष्यतीति । स रोदितुं प्रवृत्तः । मातास्य कथयति । आर्यपुत्र किमर्थमयं दारको रौतीति । तेन यथावृत्तं समाख्यातम् ।

सा कथयति । आर्यपुत्र त्वया सार्धं गच्छतु । कोऽत्र विरोधः । सुतरां गुप्तो भविष्यतीति । स तमादाय नदीं गतः । स्नापयित्वा कूले स्थापितः कथयति । तात किमर्थं मम रक्षा क्रियते । पुत्र तव दोषोऽस्ति । कथम् । दत्तमलंकारं याचनकेभ्योऽनुप्रयच्छसि । किं तातो द्रव्येणार्थी पुत्रकेनार्थी । तात यद्येवमवतारय माम् । स तेनावतारितः । ततस्तेनोभौ पाणी नद्यामाप्लाव्य सुवर्णपूर्णाश्चत्वारो लोहसंघाटा उद्धृताः । कथयति तात अतस्त्वं यावदाप्तधनेन धनकार्यं कृत्वावशिष्टमत्रैव प्लावय । पुत्र किं त्वं जलगतान्निधीन् पश्यसि । तात न केवलं जलगतान् स्थलगतानपि सस्वामिकानस्वामिकानपि येऽपि दूरे येऽप्यन्तिके । दत्तो गृहपतिर्विस्मयोत्फुल्ललोचनः संलक्षयति । सत्यमेवंविधेन दानपतिना दानं दातुमिति विदित्वा कथयति । पुत्र यद्येवं देहि दानं यथेष्टमिति । धर्मता ह्येषा । न तावत्पुत्रो यशस्वी भवति यावदस्य पिता जीवतीति ।

यावदपरेण समयेन दत्तो गृहपतिः कालगतः । सुदत्तो गृहस्वामी संवृत्तः । सततमनाथेभ्यः पिण्डकमनुप्रयच्छतीति समन्ताच्छब्दो विश्रुतः । दत्तस्य गृहपतेः पुत्रः सुदत्तो गृहस्वामी संवृत्तः । सोऽनाथेभ्यः पिण्डकमनुप्रयच्छतीति । तस्यानाथपिण्डदो
G. M. 136 गृहपतिरिति संज्ञा संवृत्ता । ततस्तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातः । एवं यावत् सप्त पुत्रा जाताः । तेन षण्णां निवेशः कृतः । सप्तमः सुजातो नाम्ना । तस्य सदृशं कुलं समन्वेषते । न आरागयति । स करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः । तस्य मधुस्कन्धो नाम मानवो वयस्यः । तेनासौ दृष्टस्तथा चिन्तापरः । स कथयति । कस्मात्त्वं गृहपते करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरस्तिष्ठसीति । स कथयति । मया षण्णां पुत्राणां निवेशः कृतः । सप्तमस्य सुजातस्य सदृशकुलं चिन्तयामि कतरत्तत्कुलं यतोऽस्य निवेशं करिष्यामीति । स कथयति । अल्पोत्सुकस्तिष्ठ अहमस्य सदृशं कुलं गवेषयामि । कतरस्मिन्देशे । स कथयति । मगधविषयं तावद्गच्छामि । एवं कुरु । स राजगृहं गतः । राजगृहे अन्यतमो गृहपतिराढ्यो महाधनो महाभोगोऽनाथपिण्डदस्य प्रतिरूपः । स तस्य गृहं प्रविष्टो द्वारशालायां स्थित्वा कथयति । स्वस्ति स्वस्तीति । तस्य गृहजनाः कथयन्ति । ब्राह्मण किं प्रार्थयसि । कन्याभिक्षाम् । कस्यार्थाय । श्रावस्त्यामनाथपिण्डदो गृहपतिस्तस्य पुत्रः सुजातो नाम्ना । ते कथयन्ति सदृशोऽस्माकं कुलेन । अपि तु प्रभूतमस्माकं कुलशुल्कम् । कियत्प्रभूतम् । शतमश्वानां शतं निष्काणां शतमश्वतरीरथानां
G. M. 137 शतं काम्बोजिकानां कन्यानामिति । मधुस्कन्धेन मानवेनानाथपिण्डदस्य गृहपतेरनेनार्थेन

लेखो दत्तः । तेनापि वाचयित्वा प्रतीच्छ सर्वं मया देयमिति । तेन दिवसमुहूर्तयोगेन प्रतीष्ठम् ।

ततस्तैः शुचिना प्रणीतेन प्रभूतेनाहारेण संतर्पितो मानवकः शालां गत्वा वासमुपगतो विषूचितः । अपरिचितो ब्राह्मणः । स तैरशुचिभयाद्बहिर्निष्कासयित्वा च्छोरितः । दैवादायुष्मन्तौ शारिपुत्रमौद्गल्यायनौ तं प्रदेशमागतौ । स ताभ्यां दृष्टः । ततस्ताभ्यां वंशविदलिकया निर्लिख्य पाण्डुमृत्तिकया उद्धर्त्य स्नापितः । तस्यैव धर्मं देशयित्वा प्रक्रान्तौ । तस्य प्रवाहिका नावतिष्ठते । स तयोरन्तिके चित्तमभिप्रसाद्य कालगतः । चातुर्महाराजिकेषु देवेषूपपन्नः । स वैश्रवणस्य महाराजस्य सकाशं गत्वा भवनं प्रार्थयते । स कथयति । गच्छ तदेव ते शिविकद्वारं भवनमिति । स तत्र गत्वा नैवासिकः संवृत्तः ।

विदेहराजेन राज्ञो बिंबिसारस्य हैमवतानां नागानां शतमनुप्रेषितम् । तेन राज्ञा प्रसेनजितः कोसलस्य सन्दिष्टम् । मम विदेहराजेन हैमवतानां नागानां शतमनुप्रेषितम् । यद्यर्थी भवसि प्रेषय इति ।

अनाथपिण्डदो गृहपतिर्येन राजा प्रसेनजित्कोसलस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य राजानं प्रसेनजितं कोसलमिदमवोचत् । देव मम राजगृहे किंचित्प्रयोजनम् । तत्र गत्वा आगमिष्यामीति । राजा कथयति । शोभनं गच्छ ममापि तस्मात् हस्तिशतमानेयं तदानेष्यसीति । स कथयति । देव यदि मम तत्र प्रयोजनं भवति ग्रहीष्यामीति । इहागत्य G. M. 138 देवस्य चित्तग्राहं करिष्यामीति । राजा कथयति । शोभनमेवं भवत्विति । ततोऽनाथपिण्डदो गृहपतिः प्रभूतं कुलशुल्कमादाय राजगृहं गतः । स यस्य गृहपतेर्गृहे वासमुपगतः स गृहपतिः सरात्रमेवोत्थायान्तर्जनमामंत्रयते । उत्तिष्ठार्या उत्तिष्ठ । भद्रमुखाः काष्ठानि पाटयत । समितिं प्रज्वालयत । भक्तं पचत । सूपिकं पचत । खाद्यकान्युल्लाड्डयत । प्रतिजाग्रत मण्डलवाटमिति । अथानाथपिण्डदस्य गृहपतेरेतदभवत् । किं पुनरस्य गृहपतेरावाहो वा विवाहो वा भविष्यति । राष्ट्रं वानेन भक्तेनोपनिमंत्रितम् । श्रेणी वा पूगो वा पर्षदो वा राजा वानेन मागधश्रेण्यो बिंबिसारो भक्तेनोपनिमंत्रित इति विदित्वा तं गृहपतिमिदमवोचत् । किं पुनस्ते गृहपते आवाहो वा भविष्यति विवाहो वा राष्ट्रं वा त्वया भक्तेनोपनिमन्त्रितं श्रेणी वा पूगो वा पर्षदो वा राजा वा ते मागधश्रेण्यो बिंबिसारो भक्तेनोपनिमन्त्रित इति । स कथयति । गृहपते न मे आवाहो भविष्यति न विवाहो वा नापि मया राष्ट्रं भक्तेनोप-

निमन्त्रितम् । न श्रेणी न पूगो न पर्षदो नापि राजा मागधश्रेण्यो बिंबिसारो भक्तेनोपनिमन्त्रितः । अपि तु बुद्धप्रमुखो भिक्षुसंघो भक्तेनोपनिमन्त्रित इति ।

अनाथपिण्डदस्य गृहपतेर्बुद्ध इत्यश्रुतपूर्वं घोषं श्रुत्वा सर्वरोमकूपान्याहृष्टानि । स आहृष्टरोमकूपस्तं गृहपतिमिदमवोचत् । क एष गृहपते बुद्धो नाम । अस्ति गृहपते G. M. 139 श्रमणो गौतमः शाक्यपुत्रः शाक्यकुलात्केशश्मश्रूण्यवतार्य काषायाणि वस्त्राण्याच्छाद्य सम्यगेव श्रद्धया आगारादनागारिकं प्रव्रजितः सोऽनुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबुद्धः । स एष गृहपते बुद्धो नाम । क एष गृहपते संघो नाम । सन्ति गृहपते क्षत्रियकुलादपि कुलपुत्राः केशश्मश्रूण्यवतार्य काषायाणि वस्त्राण्याच्छाद्य सम्यगेव श्रद्धया तमेव भगवन्तं प्रव्रजितमनुप्रव्रजिताः । ब्राह्मणकुलादपि वैश्यकुलादपि शूद्रकुलादपि कुलपुत्राः केशश्मश्रूण्यवतार्य काषायाणि वस्त्राण्याच्छाद्य सम्यगेव श्रद्धया आगारादनागारिकं तमेव प्रव्रजितमनुप्रव्रजिताः । स एष गृहपते संघो नाम । स मया बुद्धप्रमुखो भिक्षुसंघोऽन्तर्गृहे भक्तेनोपनिमंत्रितः । कुत्र गृहपते स भगवानेतर्हि विहरति । अस्मिन्नेव राजगृहे शीतवने श्मशाने । लभ्यं गृहपते सोऽस्माभिर्भगवान् द्रष्टुम् । तेन हि गृहपते आगमय[स्व] तावत्त्वम् । स्थानमेतद्विद्यते यदिहागतं श्वो द्रक्ष्यसि । अनाथपिण्डदो गृहपतिस्तां रात्रिं बुद्धालम्बनया स्मृत्या मिद्धमवक्रान्तः । सोऽप्रभाते प्रभातसंज्ञी येन शिविकद्वारं तेनोपसंक्रान्तः । तेन खलु समयेन शिविकद्वारं रात्र्यां द्वौ यामौ विवृतं तिष्ठति पूर्वकं पश्चिमकं चेति । मा हैवागन्तुकानां गमिकानां च दूतानां विघ्नो भविष्यतीति । यावत्पश्यति शिविकद्वारं विवृतमालोकेन च स्फुटं तस्यैतदभवत् । नूनं प्रभाता रजनी । तथापि शिविकद्वारं विवृतं तिष्ठतीति विदित्वा तेनैवालोकेन नगरान्निष्क्रान्तः । G. M. 140 समनन्तरनिष्क्रान्तस्य चास्य य आलोकः सोऽन्तर्हितोऽन्धकारं प्रादुर्भूतम् । तस्माद्भयमभूत् स्तम्भितमभूद् रोमहर्षः । मा हैव कश्चिद्विहेठयेन्मनुष्यो वा अमनुष्यो वा धूर्तको वा असंप्राप्तं चास्मात्प्रभूतं कुलशुल्कमिति विदित्वा प्रतिनिवर्तितुकामो मधुस्कन्धस्य देवपुत्रस्य स्थण्डिलं प्रदक्षिणीकरोति नमस्करोति च । अथ मधुस्कन्धस्य देवपुत्रस्यैतदभवत् । अद्यैवानाथपिण्डदेन गृहपतिना सत्यदर्शनं कर्तव्यम् ।

अद्यैवायं बुद्धं भगवन्तमपास्यान्यदेवता नमस्करिष्यतीति विदित्वा यावच्च शिविकद्वारं यावच्च शीतवनं श्मशानमत्रान्तरादुदारेणावभासेनावभास्य अनाथपिण्डदं गृहपतिमिदमवोचत् । अभिक्राम गृहपते मा प्रतिक्राम । अभिक्रामतस्ते श्रेयो भविष्यति न प्रतिक्रामतः । तत्कस्य हेतोः ।

[शतमश्वाः सुवर्णालंकृताश्वाश्वतरीरथाः ।
शतञ्च वाडवा रथा नानामणिविभूषिताः ।
पदा विहारस्यैकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् । ॥ ३ ॥

अभिक्राम गृहपते मा प्रतिक्राम । अभिक्रामतस्ते श्रेयो भवति न प्रतिक्रामतः । तत् कस्य हेतोः ।]

शतं हैमवता नागाः सुवर्णमणिकल्पिताः ।
एषा दत्ता महाकाया व्यूढवन्तो महागजाः ।
पदा विहारस्यैकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ४ ॥

अभिक्राम गृहपते मा प्रतिक्राम । अभिक्रामतस्ते श्रेयो भवति न प्रतिक्रामतः । G. M. 141
तत्कस्य हेतोः ।

शतं काम्बोजिका कन्या आमुक्तमणिकुण्डला ।
सुवर्णकेयूरधरा निष्कग्रीवाः स्वलंकृताः ।
पदा विहारस्यैकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ५ ॥

अभिक्राम गृहपते मा प्रतिक्राम । अभिक्रामतस्ते श्रेयो भवति न प्रतिक्रामतः ।

[अथानाथपिण्डदो गृहपतिर्देवपुत्रमिदमवोचत् । कस्त्वं भद्रमु]ख । अहमस्मि गृहपते मधुस्कन्धो नाम मानवस्तवैव पुराणो गृहसखा । सोऽहं शारिपुत्रमौ [द्गल्यायनयोरन्तिके चित्तमभिप्रसाद्य कालगतः । अतश्चातुर्महाराजिकेषु देवेषूपपन्नः इदं शिविकद्वारं च भवनमुपगतः । ततस्त्वमुक्तः । अभिक्राम] गृहपते मा प्रतिक्राम । अभिक्रामतस्ते श्रेयो भविष्यति न प्रतिक्रामत इति ।

अथानाथपिण्डदस्य गृहपते[रेतदभवत् अहो बत बुद्धो भगवाननुत्तरः । धर्मोऽप्यनुत्तरः । तस्य देवोऽपि आतापयति आराग]यति विदित्वा येन शीतवनं श्मशानं तेनोपसंक्रान्तः । तेन खलु समयेन भगवान् बहिर्विहारस्याभ्यवकाशे चंक्रमे चंक्रम्यते यद्भूयसा[नाथपिण्डदस्य गृहपतेरागमनापेक्षया । अथानाथपिण्डदो दूरतो भगवन्तमपश्यत् । दृष्ट्वा च येन भगवान्] तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवन्तं प्रतिसंमोदनया प्रतिसंमोदते । कच्चिद् भगवन् सुखं शायित इति । अथ भगवां[स्तेन G. M. 142
समयेन इमां गाथामभाषत ।

सर्वदा वा सुखं शेते ब्राह्मणः परिनिर्वृतः ।
यो न लिप्यति कामेषु शीतीभूतो निरुपधिः] ॥ ६ ॥
छित्त्वेह सर्वमासक्तिं विनीय हृदयज्वरम् ।
उपशान्तः सुखं शेते शान्तिप्राप्तेन चेतसा ॥ ७ ॥

अथ भगवाननाथपिण्डदं गृहपतिं [विनीय विहारे निषण्णः । अनाथपिण्डदो गृहपतिर्भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा] एकान्ते निषण्णः । एकान्ते निषण्णमनाथपिण्डदं भगवान् धर्म्यया कथया सन्दर्शयति समादापयति समुत्तेजयति [संप्रहर्षयति । बुद्धो भगवान् तं धर्म्यकथामानुपूर्विकां कथयति तद्यथा दानकथां शीलकथां] स्वर्गकथां कामानामास्वादादीनवसंक्लेशन्यवदानं नैष्कम्यप्रविवेकानुशंसं व्यवदानपक्ष्यान् धर्मान् विस्तरेण संप्रकाशयति । यदा चैनं भगवान् प्र[जानीते शुद्धचित्तमुदग्रचित्तं विनिवरणचित्तं कल्यमलं सामुत्कर्षिकीं] धर्मदेशनामाज्ञातुं तदा यासौ बुद्धानां भगवतां सामुत्कर्षिकी धर्मदेशना तद्यथा दुःखं समुदयो निरोधो मार्गश्चत्वार्य्यसत्यानि विस्तरेण संप्रकाशयति । अथानाथपिण्ड[दस्य गृहपतेर्धर्माभिसमयोऽभूत् । त]द्यथा दुःखं समुदयो निरोधो मार्गः । तद्यथा शुद्धं वस्त्रमपगतकालकं रंजनोपगं रंगे प्रक्षिप्तं सम्यगेव रंङ्गं प्रतिगृह्णीयात् एवमेवानाथपिण्डदो गृहपतिस्तस्मिन्नेवासने निषण्ण[श्चतुरार्यसत्यमभिसमेति ।

G. M. 143 अथानाथपिण्डदो गृहपतिर्दृष्टधर्मा प्राप्तधर्मा विदितधर्मा पर्यवगाढधर्मा तीर्णकांक्षस्तीर्णविचिकित्सोऽपरप्रत्ययोऽनन्यनयः शास्तुः शासने धर्मेषु वैशारद्यप्राप्त उत्थायासनादेकां [समुत्तरासंगं कृत्वा येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमिदमवोचत् । अभिक्रान्तो भदन्त ।] अभिक्रान्तो भदन्त । एषोऽहं भगवन्तं शरणं गच्छामि धर्मं च भिक्षुसंघं च । उपासकं मां धारयत्वद्याग्रेण यावज्जीवं प्राणोपेतं शरणगतमभिप्रसन्नम् ।

अथ भग[वाननाथपिण्डदमिदमवोचत् । केन नाम्ना त्वमभिहितो] गृहपते । अहमस्मि भदन्त सु[दत्तः] । अपि त्वनाथेभ्यः पिण्डकमनुप्रयच्छामि ततो मामनाथपिण्डदो गृहपतिरिति जनः संजानीते । कुतोभूमिकस्त्वं गृहपते । अस्ति भदन्त प्राचीनेषु जन[पदेषु कोशलेषु श्रावस्ती नाम । तत्र मे संवासः ।] भगवान् श्रावस्ती [मागच्छतु । अहं भगवन्तमु]पस्थास्यामि यावज्जीवं चीवरपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभैषज्यपरिष्कारैः सार्द्धं भिक्षुसंघेन । सन्ति गृहपते श्रावस्त्यां विहाराः ।

नो भदन्त । [गृहपते यत्र विहाराः सन्ति तत्रैव भिक्षूणां गन्तव्यं वस्तव्यं मन्यते । किं श्रावस्त्यां भगवान् नागमिष्यति भिक्षवश्च । आगन्तव्यमिति विचिन्त्य तत्र मया विहारो मापेतव्य इति । श्रावस्त्यां विहारा भविष्यन्ति भिक्षवश्चागन्तव्यं वस्तव्यं मन्यन्त इत्यधिवासयति भगवाननाथपिण्डदस्य गृहपतेस्तूष्णींभावेन ।

[अथानाथपिण्डदो भगवतस्तूष्णींभावेनाधिवासनं विदित्वा भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा] भगवतोऽन्तिकात् प्रक्रान्तः । ततोऽस्य यद्राजगृहे कृत्यं वा करणीयं तत् सर्वं कृत्वा परिप्राप्य पुनर्येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । [उपसंक्रम्य भगवतः पादौ G. M. 144 शिरसा वन्दित्वा भगवन्तमिदमवोचत् ।

भगवन् मम सहायकं भिक्षुमेकं प्रयच्छ । तेन सार्धमेव]-महं श्रावस्त्यां भगवतोऽर्थाय विहारं कारयामीति । भगवान् संलक्षयति । कतरस्य भिक्षोरनाथपिण्डदं गृहपतिं सपरिवारं [श्रावस्तीनिवासिनं च जनकायं समन्वाहर्तुं शक्यमिति विचिन्त्य भिक्षुं शारिपुत्रमामन्त्र]यते । समन्वाहर शारिपुत्रानाथपिण्डदं गृहपतिं सपरिवारं श्रावस्तीनिवासिनं च जनकायमिति । अधिवासयत्यायुष्मान् [शारिपुत्रस्तूष्णींभावेन ।

अथानाथपिण्डद आयुष्मतः शारिपुत्रस्य तूष्णींभावेनाधिवासनं विदित्वा भगवतः पादौ साञ्जलिः प्रणम्य भगवतोऽन्तिकात् प्रक्रान्तः ।

अथ] आयुष्मान् शारिपुत्रस्तस्या एव रात्रेरत्ययात् पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय राजगृहं पिण्डाय प्राविक्षत् ।

राजगृहं पिण्डाय चरित्वा [कृतकरणीयं कृत्वा पश्चाद्भक्तं शयनासनार्थाय पात्रचीवरमादाय प्र]क्रान्तः ।

अथानाथपिण्डदो गृहपतिः प्रभूतं सम्बलमादाय एकैकरात्रिदिवसेन श्रावस्तीमनुप्राप्तः । [श्रावस्त्यामप्रविश्य आरामत आरामं वनतो वनमुद्यानत उद्यानं चंक्रमणतश्चंक्रमणं पर्येषणां कृत्वेदमवोचत् । भगवतोऽर्थाय विहारमेवंरूपे] नातिदूरे नात्यासन्ने दिवाल्पाकीर्णे रात्रावल्पशब्दे ।

प्रव्रज्यावस्तु

G. M. 3 [नमो रत्नत्रयाय । नमो विच्छिन्नबन्धनाय ।
नमः सर्वतीर्थिकमारसेनप्रमर्दनाय ।
नमो बोधिप्राप्ताय ।

आगारं हित्वा दुष्करा प्रव्रज्या । प्रव्रज्य च पुनर्दुष्करो जनपदचर्याधिगमानन्दः । कथमानन्दोत्पत्तिः । दुष्करा सम्यक्क्रिया । दुष्करं काषायवस्त्रधारणम् । सुदुष्करं कुशलशीलकर्मचित्तमिति ।

अथ विनयवस्तुविभागाः । प्रव्रज्यावस्तु प्रवारणावस्तु चर्मवस्तु भैषज्यचीवर-कठिनवस्तु कोशाम्बककर्मवस्तु पाण्डुलोहितकवस्तु पुद्गलवस्तु पारिवासिकवस्तु पोषध-स्थापनवस्तु शयनासनवस्तु संघभेदवस्तु चेति ।

अथ प्रव्रज्यावस्तुनः संविभागाः । शारीपुत्रतीर्थिकः । द्वौ श्रामणेरौ । अर्हद्घातकः । कुण्डः । सर्वमिदं समासतः शारिपुत्रप्रव्रज्या इति । उपसम्पन्नविधानम् । उपसेनादि इति समासतः पञ्च विभागाः ।

अथ बोधिसत्त्वस्तुषितालये वसति स्म । तेन समयेन अङ्गदेशे राजाधिराज इति
G. M. 4 नाम राजा राज्यं करोति स्म ऋद्धं च स्फीतं च सुभिक्षं बहुजनाकीर्णम् । मगधदेशे महापद्म इति नाम राजा राज्यं करोति स्म ऋद्धं च स्फीतं च सुभिक्षं बहुजनाकीर्णम् । एकस्मिन् समये अङ्गराजस्य बलकायो महान् संवृत्त एकस्मिन् समये च राज्ञो महापद्मस्य बलकायः । यदा अङ्गराजस्य बलकायो महान् संवृत्तो हस्तिकायोऽश्वकायो रथकायः पत्तिकाय इति चतुरङ्गसमन्वितस्तदा राजगृहं स्थापयित्वा मगधदेशमभिभूय निवर्तते स्म । पुनर्यदा राज्ञो महापद्मस्य बलकायो महान् संवृत्तो हस्तिकायोऽश्वकायो रथकायः पत्तिकाय इति चतुरङ्गसमन्वितस्तदा चम्पां स्थापयित्वा अङ्गमभिभूय निवर्तते स्म । अपरेण समयेन अङ्गराजस्य चतुरङ्गबलकायो मगधदेशमाक्रमितुमारब्धः । मगधदेशवासिनो राजानं महापद्ममारोचयामासुः 'देव अङ्गराजेन चतुरङ्गबलकायसमन्वितेन मगधदेशः समाक्रान्तः' । राजा महापद्म एतद्वचनं श्रुत्वा चतुरङ्गबलकायपरिवृतोऽङ्गराजदेशाभिमुखं प्रयातः । अथ महापद्मस्य हस्त्यश्वरथपत्तिकाया अङ्गराजेन गृहीताः । राजा महापद्मोऽपि पराजितो भयाभिभूतः । अपरेऽपि क्षत्रिया राजगृहे प्रत्यागता राजगृहं प्रविश्य तस्य द्वारं बद्ध्वा तत् प्राकारैः परिवेष्टयामासुः । अङ्गराजेन महापद्मस्य लेखोऽनुप्रेषितः

'त्वं चेद् बहिरागच्छसि इति कुशलं नोचेद् बहिरागच्छसि आकाशपथे गमिष्यसि शरेण पातयिष्यामि। त्वं चेत् पृथिव्यन्तरं प्रवेक्ष्यसि शक्त्या उद्ग्रहीष्यामि। त्वं चेत् पर्वतशिखरे तिष्ठसि तत्रापि ते नात्मरक्षणमिति'। राजा महापद्मः लेखं G.M. 5 पठित्वा व्यथितः करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः। अथ सोऽमात्यानामन्त्र्य एतदुवाच 'भवन्त एषोऽङ्गराजः परन्तपो निष्ठुरो महाबलकायप्रभावाद् अस्माकमेतं लेखं प्रेषितवान्। किमिदानीं विधेयमिति'। ते गाथया अभाषन्त।

संशयमाप्ते विषये प्राणेषु च रक्ष्याः प्राणाः सर्वैः।
इत्याहुर्बुधा यतः पुनरपि विषयो न तु प्राणाः ॥१॥

एतद्वचनं श्रुत्वा राजा कण्ठे असिं बद्ध्वा बहिर्गतः। अथाङ्गराजस्तस्य वार्षिकं शुल्कं निर्धार्य प्रक्रान्तः।

तेन समयेन बोधिसत्त्वस्तुषितालये निषण्णः पञ्चमहाविलोकितानि विलोकयति स्म। कामावचरान् षड्देवनिकायान् त्रिःकृत्वो ज्ञापयित्वा स गजवरमहाप्रमाणं मातुः कुक्षिमवक्रामति स्म। समनन्तरावक्रान्ते च बोधिसत्त्वे महान् भूमिचालः अभूत्। सर्वमिदं लोकधातुस्त्रयस्त्रिंशद्देवाश्च तस्य वर्णरूपतेजसा अवभासिता अभूवन् परिस्फुटाश्च। यत्र लोकधातौ अनयोश्चन्द्रसूर्ययोरेवंमहानुभावयोरेवंमहर्धिकयोराभया वर्णेन च अन्धकारतमिस्रा न स्फुटास्तत्र ये सत्त्वा उपपन्नास्ते स्वकानपि बाहून् प्रसारितान् न पश्यन्ति तेन अवभासेन ते चान्योन्यं पश्यन्ति स्म अन्योन्यं संजानते स्म। एवञ्चाहुः। अन्येऽपि किल भोः सत्त्वा इहोपपन्ना इति।

बोधिसत्त्वस्य जन्मकालसमये चतुर्महानगरेषु चत्वारो महाराजा अभूवन्। तद्यथा राजगृहे महापद्मस्य पुत्रः। श्रावस्त्यां ब्रह्मदत्तस्य पुत्रः। उज्जयिन्यां राज्ञोऽनन्तनेमेः G. M. 6 पुत्रः। कौशाम्ब्यां राज्ञः शतानीकस्य पुत्रः।

राजा महापद्मोऽचिन्तयत्। मम पुत्रो जातो लोकधातौ उद्यद्भास्कर इव समुज्ज्वलः। अयं महिष्या बिम्बायास्तनयः। अतोऽस्य बिम्बिसार इति नाम कार्यम्। राजा ब्रह्मदत्तोऽचिन्तयत्। मम पुत्रे जाते लोकधातुः प्रकटपरिस्फुटोऽवभाषितश्चाभवत्। अतोऽस्य प्रसेनजिदिति नाम कार्यम्। राजा अनन्तनेमिरचिन्तयत्। मम पुत्रो जातो लोकधातौ उद्यद्भास्कर इव समुज्ज्वलः। अतोऽस्य प्रद्योत इति नाम कार्यम्। राजा शतानिकोऽचिन्तयत्। मम पुत्रो जातो लोकधातौ भास्कर इव समुज्ज्वलः। अतोऽस्य उदयन इति नाम कार्यम्।

अथ पञ्चभिरमात्यैर्बिम्बिसारस्य जातिमहं कृत्वा गोत्रानुरूपं नामधेयं] व्यवस्थापितम् । बिम्बिसारः कुमारोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्योऽनुप्रदत्तः । द्वाभ्यामंकधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्रीडनिकाभ्यां धात्रीभ्याम् । [ताभिर्धात्रीभिर्दुग्धेन दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्च उत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषै]राशु वर्ध्यते ह्रदस्थमिव पंकजम् । यदा स महान् संवृत्तस्तदा लिप्यामुपन्यस्तः । संख्यायां गणनायां मुद्रायां यानि च तानि राज्ञां क्षत्रियाणां शिल्पस्थानकर्मस्थानानि तद्यथा हस्तिग्रीवायामश्वपृष्ठे रथेत्सरौ
G. M. 7 धनुषि पर्याणे निर्याणे अंकुशग्राहे पाशग्राहे तोमरग्राहे छेद्ये भेद्ये वेध्ये [तद्यथा दूरवेध्ये शब्दवेध्ये मर्मवेध्ये अक्षुण्णवेध्ये दृढप्रहारितायां चेति] पंचसु स्थानेषु कृतावी संवृत्तः । तान्यपि पंचामात्यपुत्रशतानि पंचसु स्थानेषु कृतावीनि संवृत्तानि । स पित्राष्टादशसु श्रेणीष्ववतारितः । अतोऽस्य श्रेण्यो [बिम्बिसार इति ख्यातिः । ततोऽपरेण समयेन स] हस्तिस्कन्धाधिरूढो जनपदान्निर्गच्छति । तेन ते दृष्टा अङ्गस्य राज्ञः पौरुषेयाः करप्रत्याया-नुद्ग्राहयन्तः । स कथयति । भवन्तः कस्यैते करप्रत्यायान् उद्ग्राहयन्ति । [ते कथयन्ति । अङ्गराजस्येति । स कथयति । किं नास्माकमिति । ते कथयन्ति ।] देव करदाः । स कथयति । भवन्तः शब्दयतैतान् पौरुषेयानिति । ते शब्दिताः । स कथयति । भवन्तः सोऽपि राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तो वयमपि राजानः [क्षत्रिया मूर्धाभिसिक्ताः । तत् कथमुद्ग्राहयथ । इतः परं मा] उद्ग्राहयिष्यथेति । ते संलक्षयन्ति । अप्रकृतिज्ञोऽयं कुमारः । गच्छामो वयम् । महापद्मस्य राज्ञो गत्वा आरोचयामः । ते राज्ञो महापद्मस्य सकाशमुपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्य [कथयन्ति । देव वयमङ्गराजस्य पौरुषेया] बिम्बि-सारेण कुमारेण करप्रत्यायानुद्ग्राहयन्तो निवारिताः । किन्नु ग्राहयामो नेति । स
G. M. 8 कथयति । भवन्तः अप्रकृतिज्ञोऽयमिह कुमारः । यथैव यूयं भूते करप्रत्यायानुद्ग्राहयथ तथैवेति । [अथ ते पुनः करप्रत्यायानुद्ग्राहयन्तो] जनपदेभ्यो विवर्तिता दृष्टाः । उक्ताश्च । भवन्तो न मया यूयं निवारिताः । मा भूयः करप्रत्यायानुद्ग्राहयिष्यथेति । कस्माद् यूयं पुनः करप्रत्यायानुद्ग्राहयथ । यदि तावत्तिष्ठथेत्येतत् [कुशलम् । यदि न तिष्ठथ तदा सीमा बन्धन्न कारयेयम् । ते अचिन्तयन् ।] कुमारो व्याडो विक्रान्तः । स्थानमेतद्विद्यते यदनर्थं करिष्यतीति । ते अङ्गस्य राज्ञः सकाशमुपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्य कथयन्ति । देव महापद्मस्य राज्ञो बिम्बिसारो नाम [कुमारः करप्रत्यायानुद्ग्राहयितुं निवारयति । यद्युपेक्षिष्यते स्थानमेतद्विद्यते यत्कालेन महाननर्थं करिष्यतीति गाथां भाषन्ते।

शक्यः कररुहैश्छेत्तुं यावद् बालो हि पादपः ।
स एव वृद्धो दुश्छेद्यः परशूनां शतैरपि ॥२॥ इति ।

[अथ अङ्गराजेन महापद्मस्य लेखः प्रेषितः। बिम्बिसारस्य कण्ठे असिं बद्ध्वा] प्रेषय यवसयोग्यमशनं वा सज्जीकुरु। एषोऽहमागच्छामीति। महापद्मो राजा लेखं श्रुत्वा व्यथितः। तेन बिम्बिसारः कुमारः शब्दापितः। उक्तश्च। पुत्र कस्मात्त्वया अङ्गस्य राज्ञः पौरुषया [निवारिताः। स कथयति। देव कस्मात् परतन्त्राः करप्रत्यायान् प्रयच्छामः। पुत्र वयं करदा इति]। स कथयति। देव सोऽपि राजा क्षत्रियो मूर्धाभिषिक्तः। वयमपि राजानः क्षत्रिया मूर्धाभिषिक्ताः। कस्माद्वयं तस्य
करप्रत्यायाननुप्रयच्छामः। केवलं मम देव चतुरङ्गं बलकायमा [ज्ञापय। वयमङ्गराजेन G. M. 9
सह संग्रामं करिष्यामः। अथ महा] पद्मेन राज्ञा लेखोऽनुप्रेषितः। या ते शक्तिर्बलं वीर्यं पराक्रमस्तन्न हापयिष्यसीति। स श्रुत्वा रुषितोऽमात्यानामन्त्रयते। सन्नाहयन्तु भवन्तश्चतुरङ्गं बलकायम्। [तेन बलकायेन मगधविषय आक्रमितव्यः। अथ स चतुरङ्गबलकायं सज्जीकृत्य हस्तिकायम]श्वकायं रथकायं पत्तिकायं मगधविषयं नाशयितुमारब्धो नाशयतीति मगधविषयनिवासिना जनकायेन महापद्मस्य राज्ञ उद्ग्राहका दत्ताः। देव [अङ्गराजेन मगधविषय आक्रान्तः। तच्छ्रुत्वा राजा महापद्मो व्यथितः करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः। अथ] तेन बिम्बिसारं कुमारं शब्दापयित्वा तस्य चतुरङ्गो बलकायोऽनुप्रदत्तः। बिम्बिसारः कुमारस्तान् सर्वान् कुमारान् संनिपात्य कथयति। अहमङ्गेन राज्ञा सार्धं संग्रामयिष्यामि। [किं करणीयम्। ते कथयन्ति। देव भवतां यथावस्था अस्माकमपि तथैव भवेत्। अथ ते इमां] गाथां भाषन्ते।

यस्मिन् मनुष्ये रमते कुलश्रीः स सर्वतः संपरिरक्षितव्यः।
तस्मिन् विनष्टे विनश्यन्ति सर्वे नाभेर्विनाशादिव चक्रपादाः ॥३॥

अहं भवद्भिः सर्वतः संपरिरक्षितव्यः। [यत्र भवतः पादौ तत्र नः शिरांसि। अथ स चतुरङ्गबलकायपरिवृतो राजगृहान्निर्गतः। तेन समयेन राजा महापद्मोऽमात्यपरिवृत उपरि] प्रासादतलगतस्तिष्ठति। तेनासौ निर्गच्छन् दृष्टः। सोऽमात्यानामन्त्रयते।
भवन्तः कस्येयं सेनेति। ते कथयन्ति। देव बिम्बिसारस्य कुमारस्येति। स क- G. M. 10
[थयति अहो प्रभूतबलकायोऽयमिति केचिद् बलकायबिम्बिसार इति संजानते। केचित्] श्रेण्यो बिम्बिसार इति संजानते। केचित् सैनिकबिम्बिसार इति। बिम्बिसारः कुमारः कुमारानामन्त्रयते। भवन्तः अयमङ्गो राजा उदीर्णबलवा[हनः। न शक्नुमो बलेन पराजेतुम्। अतोऽस्य परिरक्षितं दुर्गमाक्रम्य उपायकौशल्येन] हन्तव्यमिति। ते तस्य मुक्तसन्नाहस्य शिविरे निपतिताः। तैरङ्गो राजा प्रघातितः। अङ्गस्य राज्ञश्चतुरङ्गो बलकायश्चतुर्दिशं विद्रुतः। [अथ श्रेणिकबिम्बिसारेण

चतुर्दिशमश्वदूताः प्रेषिताः । भो भवन्तोऽपि क्षत्रिया मूर्धाभिषिक्ता] वयमपि क्षत्रिया मूर्धाभिषिक्ताः । निवर्तन्तां भवन्तः । अहं भवतां वृद्ध्युपादानं प्रज्ञपयिष्यामीति । ते निवर्तिताः । ततो यश्चम्पायामारक्षकः स्थापितस्तेन श्रुतं यथा [अङ्गराजो निहतः । तेन द्वारं बद्ध्वा स्थितः । अथ तत् प्राकारैः परिवेष्टयामासुः] । बिम्बिसारः कुमारोऽनुपूर्वेण चम्पां गतः । तेन दीर्घया लतया अङ्गस्य राज्ञः शिरो बद्ध्वा दर्शितम् । यस्ते स्वामी तस्येयमेवंरूपा समवस्था कृता । यदितावन्निर्गच्छसि निर्गच्छ । [यदि न निर्गच्छसि तत्रापि एवंरूपावस्था भविष्यति] । स श्रुत्वा व्यथितः संलक्षयति । 'पुनरपि विषयो न तु प्राणा' इति । स कण्ठे असिं बद्ध्वा निर्गतः ।

ततो बिम्बिसारेण कुमारेण चम्पामवष्टभ्य महापद्मस्य राज्ञो लेखोऽनुप्रेषितः । G. M. 11 [देव मया अङ्गराजं विनाश्य चम्पानगरं प्रतिलब्धम्] । आज्ञापय किमन्यदपरिप्रासं परिप्रापयामीति । महापद्मो राजा तुष्टः । तेन तस्य पट्टमौलिच्छत्रं तमनुप्रेषितम् । पुत्र त्वं तत्रैव राज्यं कारय । अहम् [अत्र राज्यं करिष्यामि इति लेखोऽनुप्रेषितः । ततोऽङ्गदेशे] बिम्बिसारो राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं चाकीर्णबहुजनमनुष्यं च । मगधेषु महापद्मो राजा राज्यं कारयति ऋद्धं च स्फीतं च क्षेमं च सुभिक्षं चाकीर्णबहुजनमनुष्यं च [अपरेण समयेन राजगृहे] महापद्मो राजा कालगतः । अमात्यैर्बिम्बिसारस्य राज्ञः संदिष्टम् । देव पिता ते कालगतः । आगच्छ राज्यं प्रतीच्छेति । स आगतः । ततोऽङ्गमगधीयकैरमात्यैरङ्गमगधयोः [राजकुमारो महाभिषेकेण अभिषिक्तः । ततो राजा बिम्बिसारः अङ्गमगधयोः राज्यं करोति ऋद्धं च स्फी] तं च सुभिक्षं चाकीर्णबहुजनमनुष्यं च ।

मध्यदेशादन्यतमो माणवो मन्त्रार्थी मन्त्रगवेषी दक्षिणापथमनुप्राप्तः । दक्षिणापथेऽन्यतमो ब्राह्मणो वेदवेदाङ्गपारगः । [स तस्य सकाशमुपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्याभिवादनं कृत्वा तस्य पुरत आग]त्य कथयति । इच्छाम्यहमुपाध्यायस्य पादशुश्रूषां कर्तुम् । कस्यार्थाय । वेदाध्ययनं करिष्ये । स कथयति । एवं कुरुष्वेति । स तस्यान्तिके वेदाध्ययनं कर्तुमारब्धः । आचरितं ते [षां माणवकानाम् । यदा अपठा भवन्ति तदा कदाचित्तीर्थोपस्पर्शिका गच्छन्ति] कदाचिन्नगरावलोककाः कदाचित् समिदाहारकाः । G. M. 12 यावदपरेण समयेन अपठाः संवृत्ताः । ततः सर्व एव समिदाहारकाः संप्रस्थिताः । समिदाहारकाणां संप्रस्थितानां [मयमेवंरूपोऽभूत् अन्तराकथासमुदाहारः । भोः कौत्सा वात्साः शाण्डिल्या भारद्वाजाः पंचकाः उपपंचकाः । को वः कस्माद्देशादिति । तत्रैके कथयन्ति वयं पूर्वदेशादिति अपरे वयं दक्षिणापथादिति अपरे कथयन्ति वयं पाश्चात्त्या

इति अपरे कथयन्ति [वयमुत्तरापथादिति । स माणवः कथयति । अहं मध्यदेशादिति । ते कथयन्ति । सर्व] एव भवन्तोऽस्माभिर्देशा दृष्टाः श्रुताश्च न तु मध्यदेशाः ।

बुद्धिर्वसति पूर्वेण दाक्षिण्यं दक्षिणापथे ।
पैशुन्यं पश्चिमे देशे पारुष्यं चोत्तरापथे ॥४॥ इति ।

मध्यदेशोऽस्माभिर्न दृष्टः । कीदृशो माण [व मध्यदेशः । मध्यदेशो भवन्तो देशानामग्र्यः । इक्षुशालिगोमहिषीसंपन्नो] भैक्षुकशतकलिलो दस्युजनविवर्जितः आर्यजनाकीर्णो विद्वज्जननिषेवितः । यत्र नदी गंगा पुण्या मङ्गल्या शुचिशौचेयसंमता उभयतः कूलान्यभिष्यन्दयमाना आवहति । अष्टादशवक्रो [नाम ऋषीणामग्रपदः । यत्र ऋषयस्तपश्चर्यया सशरीरं स्वर्गं कामयन्ते ।] ते कथयन्ति । सन्ति माणव मध्यदेशे पण्डितसंख्याता इति । स कथयति । नन्वहं भवन्तः पूर्वमेवावोचं मध्यदेशो भवन्तो देशानामग्र्यः । इक्षुशालिमालागोमहिषीसंपन्नो भै [क्षुकशतकलिलो दस्युजनविवर्जित आर्यजनाकीर्णो विद्वज्जननिषेवितः । यत्तु पूर्वमेवे] त्यवोचस्त्वं माणव । सन्ति माणव मध्यदेशे एवंविधा वादिवृषभा यादृश उपाध्यायः । मध्यदेशे भवन्तस्तादृशाः सन्ति येषामुपाध्यायो मुखमपि न श[क्नुयाद् द्रष्टुमिति । मृष्टाभिधायी स माणवः । तेन तथा G. M. 13
तथा मध्यदेशस्य वर्णो भाषि] तो यथा ते माणवकाः सर्व एव मध्यदेशगमनोत्सुकाः संवृत्ताः । अथ ते माणवकाः समित्काष्ठानि पर्येष्य समिद्भारकानादाय येन तस्य ब्राह्मणस्य निवेशनं तेनोपसंक्रान्ताः । [उपसंक्रम्य समित्काष्ठभारकानेकान्ते उपनिःक्षिप्य येन स] ब्राह्मणस्तेनोपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्य तं ब्राह्मणमिदमवोचन् । यत्खलूपाध्याय जानीथ अनेनास्माकं माणवेन मध्यदेशस्य तथा तथा वर्णो भाषितो येन वयं सर्व एव मध्यदेश[गमनोत्सुकाः संवृत्ताः । पुत्रकाः किं यावच्छ्रूयते तावता गम्यते] । अपि तु श्रुतिरमणीयो देशः श्रोतव्यो नो तु गन्तव्यः । उपाध्याय एव माणवः कथयति । मध्यदेशे तादृशा वादिवृषभाः सन्ति येषामुपाध्यायो मुखमपि न शक्नोति द्रष्टुमिति । पुत्रकाः [तादृशः स एवैकः पृथिव्यां वादी नान्यः कश्चिदस्ति । बहुरत्नधरा व]सुन्धरा पूर्णा मही सुन्दरसुन्दराणाम् । उपाध्याय गच्छामः । तदपि तावद्देशावलोकनं कृतं भविष्यतीति तीर्थोपस्पर्शनं च ते च वादिवृषभाः पर्युपासिता भविष्यन्तीति । वादिनो निग्रहीष्यामो [देशं च पश्यामो लाभं च निष्पादयिष्याम इति । शिष्यानुरागी स ब्राह्मणो] ऽल्पपरिच्छदश्च । स तावन्माणवकानिदमवोचत् । पुत्रका यद्येवं गृह्णीथ अजिनानि वल्कलानि दण्डकमण्डलूनि स्रुभाजनानि । गच्छामो मध्यदेशमिति । तैर्गृहीतानि । स तैः सार्धं म [ध्यदेशं संप्रस्थितः । स कांश्चिद्वादिनो निगृह्य वादिरथे

G. M. 14 योजयति । केषाञ्चिद्भ्र] स्मघटिकया शिरांसि भिनत्ति । केचिद्ध्वस्तशालामिव वायसा आरात्परिवर्जयन्ति । केचिच्छत्रध्वजपताकाभिः प्रत्युद्गच्छन्ति । केचित् शिष्यत्वमभ्युपगच्छन्ति । सोऽनुपूर्वेण ग्रामनगर [निगमपट्टिकापत्तनेषु] चञ्चूर्यमाणोऽनुपूर्वेण राजगृहमनुप्राप्तः । स ब्राह्मणः संलक्षयति । यावत् खलु पण्डितसंख्याताः सर्वे ते राज्ञः सन्निधौ । तत्किमहं मूलमपहाय शाखापत्रपलाशं पराम्रष्टव्यं मंस्ये । यत्त्वहं राज्ञः सकाश [मुपसंक्रामेयमिति । स राज्ञः सकाशमुपसंक्रान्तो राजानं जयेनायुषा च वर्धयित्वा पुरतोऽवस्थितः । देव अ] स्ति मया गुरुसकाशात्कतिपयान्यक्षराण्युद्गृहीतानि । तदिच्छाम्यहं देवस्य पुरस्ताद्वादिभिः सार्धं कथाविमर्शं कर्तुमिति । ततः स राजा अमात्यानामन्त्रयते । अस्ति भवन्तः कश्चिदस्माकं विजिते वादी प्रतिवसति । [अमात्याः कथयन्ति । देवास्ति नालदग्रामके माठरो नाम ब्राह्मणो] वेदवेदाङ्गपारगोऽग्निकल्प इव ज्ञानेन । तेन माठरं नाम शास्त्रं प्रणीतमिति । राजा कथयति । आहूयतां स उपाध्याय इति । अमात्यैराहूतः । सोऽपि राजानं जयेनायुषा च वर्धयित्वा पुरतोऽ [वस्थितः । ततो राज्ञाभिहितः 'शक्नोषि त्वमुपाध्याय अनेन ब्राह्मणेन सार्धं] मम पुरस्तात्कथाविमर्शं कर्तुमिति' । स कथयति । शक्तितोऽहं देवं भाषिष्ये इति । ततो वादिमण्डलं प्रज्ञप्तम् । पक्षापरपक्षौ व्यवस्थापितौ । राजा कथयति । कस्य भवतु पूर्व- [पक्ष इति । आमात्याः कथयन्ति । देवायं सर्वं जानाति । तदस्यैव भवतु] पूर्वपक्ष G. M. 15 इति । तस्य पुर्वपक्षो दत्तः । तेन पञ्चशतिको तन्त्रः समुच्चारितः । माठरेण प्रत्युच्चार्य दोषो दत्तः । इदं ते अयुक्तमिदमसदृशम् इदं नोपपद्यते इति । स तूष्णीमवस्थितः । [नचैतत् प्रतिक्रुष्टम् । एतन्निग्रहस्थानं यदुतान्तरे निष्प्रतिभानता] । राजा अमात्यानामन्त्रयते । कतरोऽत्र भवन्तः शोभत इति । ते कथयन्ति । देव उपाध्यायो माठर इति । ततो राजा आत्तमनाः संवृत्तः । तस्य मे लाभाः सुलब्धाः यस्य मे विजिते एवंविधो वादिनामग्र्यो [निवसति । अभिलपनार्थं स उवाच 'आचार्य कस्मिन् ग्रामे भवान्] निवसति' । देव नालदग्रामके । गच्छ स एव ते वादिभोग्यो भवतु । त तस्य वादिभोगो दत्तः । संपत्तिकामो लोको विपत्तिप्रतिकूलः । सोऽनेकैर्ब्राह्मणैः कन्यानिमित्तं प्रार्थ्यते । ततस्ते] न सदृशात् कुलात् कलत्रमानीतम् । ततस्तेन सार्धं क्रीडति रमते परिचा] रयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतः पुत्रो जातः । दीर्घदीर्घाभ्यां कोष्ठाभ्यां तस्य विस्तरेण जातस्य जातिमहं कृत्वा कोष्ठिल इति नामधेयं व्यवस्थापितम् । कोष्ठिलो दारकः उन्नीयते वर्ध्यते [क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरण]विशेषैराशु वर्ध्यते ह्रदस्थमिव

पङ्कजम्। स यदा महान् संवृत्तस्तदा लिप्यामुपन्यस्तः। स संख्यायां मुद्रायां गणनायां
ब्राह्मणिकायामीर्यायां चर्यायां शौचे समाचारे भस्मग्राहे मृत्तिका [ग्राहे डोङ्कारे भोङ्कारे
ऋग्वेदे यजुर्वेदे अथर्ववेदे सामवेदे याजने य] जने अध्ययने अध्यापने दाने प्रतिग्रहे
षट्कर्मनिरतो ब्राह्मणः संवृत्तः। भूयस्तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतो दारिका G. M. 16
जाता। तस्याः शारिकायाः सदृशी अक्षिणी इति तस्या ज्ञातिभिः [शारिकेति नामधेयं
व्यवस्थापितम्। यावदपरेण कालेनापरेण समयेन सा] वर्धिता महती संवृत्ता। सा
लिप्यक्षराणि ग्राहिता। यावदपरेण समयेन भ्रात्रा सार्धं वादं करोति। स तया गृह्यते।
ततः पित्राभिहितः। पुत्र कथं नाम त्वं पुरुषो भूत्वा [स्त्रिया पराजितः। मयि
कालगते वादिभोगो विनश्यति।

अथ स ब्राह्मणमाण] वो मन्त्रार्थी मन्त्रगवेषी दक्षिणापथमनुप्राप्तः। दक्षिणापथे
तिष्यो नाम ब्राह्मणो लोकायते कृतावी। स तस्य सकाशमुपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्या-
भिवादनं कृत्वा कथयति। इच्छाम्युपाध्याय [स्य पादशुश्रूषां कर्तुम्। कस्यार्थाय।
लोकायतिकमुद्ग्रहीष्यामि। एवं कुरुष्वेति]। स तस्यान्तिके लोकायतमुद्ग्रहीतुमा-
रब्धः। आचरितं तेषां माणवकानाम्। यदा अपठा भवन्ति तदा कदाचित्तीर्थोपस्पर्शिका
गच्छन्ति कदाचिन्नगरावलोककाः कदाचित्समिदाहारकाः। [यावदपरेण समयेन अपठाः
संवृत्तास्ततः सर्व एव समिदाहार]काः संप्रस्थिताः। तेषां समिदाहारकाणां संप्रस्थि-
तानामयमेवंरूपोऽभूत् अन्तराकथासमुदाहारः। भोः कौत्सा वात्साः शाण्डिल्या
भारद्वाजाः पञ्चका उपपञ्चकाः को [वः कस्माद्देशादिति। तत्रैके कथयन्ति वयं
पूर्वदेशादिति। अपरे व] यं दक्षिणापथादिति। अपरे कथयन्ति वयं पाश्चात्त्या
इति। अपरे वयमुत्तरापथादिति। स माणवः कथयति। अहं मध्यदेशादिति। ते G. M. 17
कथयन्ति। सर्व एव भवन्तोऽस्माभिर्देशा दृष्टाः श्रु [ताश्च न तु मध्यदेशः।

बुद्धिर्वसति पूर्वेण दाक्षिण्यं दक्षिणापथे]।
पैशुन्यं पश्चिमे देशे पारुष्यं चोत्तरापथे ॥५॥ इति।

मध्यदेशोऽस्माभिर्न दृष्टः। कीदृशो माणव मध्यदेशः। मध्यदेशो भवन्तो
देशानामग्र्यः। इक्षुशालिगोमहिषीसंपन्नो [भैक्षुकशतकलिलो दस्युजनविवर्जितः
आर्यजनाकीर्णो विद्वज्ज]ननिषेवितः। यत्र गङ्गा नदी धन्या मङ्गल्या शुचिशौचेय-
संमता उभयतः कूलान्यभिष्यन्दयमाना वहति। अष्टादशवक्रो नाम ऋषीणामग्रपदः।
ऋषयस्तप [श्चर्यया सशरीरं स्वर्गं कामयमानाः। ते कथयन्ति। सन्ति माणव

मध्यदेशे पण्डित]संख्याता इति । स कथयति । भवन्तः नन्वहं पूर्वमेवावोचम् । मध्यदेशो भवन्तो देशानामग्र्यः । इक्षुशालिमालागोमहिषीसंपन्नो भैक्षुकशतकलिलो दस्युजनविवर्जित आर्यजनाकीर्णो विद्वज्जननिषेवितः । [यस्तु पूर्वमेवेत्यवोचस्त्वं माणव । सन्ति माणव मध्यदेशे एवंविधा वादिवृषभा यादृश] उपाध्यायः । मध्यदेशे भवन्तस्तादृशा वादिवृषभाः सन्ति येषामुपाध्यायो मुखमपि न शक्नुयाद् द्रष्टुम् । मृषाभिधायी स माणवः । तेन तथा तथा मध्यदेशस्य वर्णो भाषितो यथा ते माणवकाः सर्व एव मध्यदेशगमनोत्सुकाः [संवृत्ताः । अथ माणवकाः समित्काष्ठानि पर्येष्य समिद्भारकानादाय] येन तस्य ब्राह्मणस्य निवेशनं तेनोपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्य समित्काष्ठ- G. M. 18 भारकानेकान्ते उपनिःक्षिप्य येन स ब्राह्मणस्तेनोप [सं] क्रान्ताः । उपसंक्रम्य तं ब्राह्मणमिदमवोचन् । यत्खलूपाध्याय जानीथ अनेनास्माकं माणवेन [मध्यदेशस्य तथा तथा वर्णो भाषितो येन वयं सर्व एव मध्यदेशगम]नोत्सुकाः संवृत्ताः । पुत्रकाः किं यावच्छ्रूयते तावता गम्यते । अपि तु श्रुतिरमणीया देशाः श्रोतव्या नो तु गन्तव्याः । उपाध्याय एष माणवः कथयति । मध्यदेशे तादृशा वादिवृषभाः सन्ति येषामुपाध्या[यो मुखमपि न शक्नुयाद् द्रष्टुमिति । पुत्रकास्तादृशः स एवै]कः पृथिव्यां वादी नान्यः कश्चिदस्तीति । बहुरत्नधरा वसुन्धरा पूर्णा मही सुन्दरसुन्दराणाम् । उपाध्याय गच्छामः । तदपि तावद् देशावलोकनं कृतं भविष्यतीति तीर्थोपस्पर्शनं च । ते च वादिवृषभाः [पर्युपासिता भविष्यन्तीति वादिनो निग्रहीष्यामो देशं च] पश्यामो लाभं च निष्पादयिष्याम इति शिष्यानुरागी स ब्राह्मणोऽल्पपरिच्छदश्च । स तान् माणवकानिदमवोचत् । पुत्रका यद्येवं गृह्णीथ अजिनानि बल्कलानि दण्डकमण्डलूनि स्रुग्भाज[नानि । गच्छामो मध्यदेशमिति तैर्गृहीतानि । स तैः सार्धं मध्यदेशं] संप्रस्थितः । स कांश्चिद्वादिनो निगृह्य वादिरथे योजयति । केषांचिद्भस्मघटिकया शिरःसु भिनत्ति । केचिदिष्वस्त्रशालामिव वायसा आरात्परिवर्जयन्ति । केचिच्छत्रध्वज[पताकाभिः प्रत्युद्गच्छन्ति । केचिच्छिष्यत्वमभ्युपगच्छन्ति । सोऽनुपूर्वेण] ग्रामनगरनिगमपल्लिकापत्तनेषु चंचूर्यमाणोऽनुपूर्वेण राजगृहमनुप्राप्तः । स ब्राह्मणः संलक्षयति । यावन्त् खलु पण्डित- G. M. 19 संख्याताः सर्वे ते राज्ञः सन्निधौ । तत्किम[हं मूलमपहाय शाखापत्रपलाशं पराम्रष्टव्यं मंस्ये । यत् त्वहं] राज्ञः सकाशमुपसंक्रामेयमिति । स राज्ञः सकाशमुपसंक्रान्तो राजानं जयेनायुषा च वर्धयित्वा पुरतोऽवस्थितः । देव अस्ति मया गुरुसकाशात् कतिपयान्यक्षराणि उ [द्गृहीतानि । तदिच्छाम्यहं देवस्य पुरस्ताद्वादिभिः सार्धं कथाविमर्शं] कर्तुमिति । ततः स राजा अमात्यानामन्त्रयते । अस्ति भवन्तोऽस्माकं विजिते कश्चिद्वादी प्रतिवस-

तीति । अमात्याः कथयन्ति । देवास्ति नालदग्रामके माठरो नाम ब्रा[ह्मणो वेदवेदाङ्गपारगोऽग्निकल्प इव ज्ञानेन । तेन माठरं नाम शा]स्त्रं प्रणीतमिति । राजा कथयति । आहूयतां स उपाध्याय इति । अमात्यैराहूतः । सोऽपि राजानं जयेनायुपा च वर्धयित्वा पुरतोऽवस्थितः । ततो राज्ञाभिहितः । शक्नोषि त्वमुपाध्याय अनेन ब्राह्म[णेन सार्धं मम पुरस्तात्कथाविमर्शं कर्तुमिति । स कथयति । शक्तितो]-ऽहं देव भाषिष्ये इति । ततो वादिमण्डलं प्रज्ञप्तम् । पक्षापरपक्षौ व्यवस्थापितौ । राजा कथयति । कस्य भवतु पूर्वपक्ष इति । अमात्याः कथयन्ति । देवायं माठरो ब्राह्मणो वृद्धोऽ[स्य एव भवतु पूर्वपक्ष इति । तस्य पूर्वपक्षो दत्तः । माठर-ब्राह्मणोऽचिन्तयत्] । अयं नवग्रन्थः पटुकरणश्च । न शक्यं मयानेन सार्धं कथाविमर्शं कर्तुम् । वादपिच्छिलिकायां योजयामीति । तेन पञ्चशतिको दण्डकः समुच्चारितः । तेनापि ब्राह्मणेन प्रत्युच्चार्य दोषो दत्तः । [इदं ते अयुक्तमिदमसदृशम् । इदं नोपपद्यते । स तूष्णीमवस्थितः । नैतत्] प्रतिक्रुष्टं चैतन्निग्रहस्थानानां यदुतान्तरे निष्प्रतिभानता । राजा अमात्यानामन्त्रयते । भवन्तः कतरोऽत्र शोभन इति । ते कथयन्ति । तिष्यो ब्राह्मण G. M. 20 इति । राजा कथयति । दीयतामस्य वादि[भोगः । ते कथयन्ति । वयं चेदागन्तु-कवादिनो] भोगान् दास्यामो न चिरादस्माकमङ्गमगधा जनपदा वादिभोगा भविष्यन्ति । अपि त्वेष एव नालदग्रामकोऽस्य वादिभोगो भवतु । माठरस्यान्तिकादस्मै ब्राह्मणाय । तस्यान्तिकाद्योऽन्यः शोभनः । [राजा आह तथास्तु । अथ] तैर्माठरस्यान्तिका-दाच्छिद्य तिष्याय दत्तः । ततो माठरो ब्राह्मणः पत्नीमामन्त्रयते । [भद्रे गृहव्याकुलिकां संक्षिप] । अन्यत्र गमिष्यामः । कस्यार्थे । अस्य राज्ञः प्रभूतमस्माभिरुपकृतं न वयमनेना[नुरक्षिताः । तस्माद्गच्छामो वयमन्यत्रेति । तस्यान्तेवासिनः आचार्यस्य माठरस्य अन्यत्र गमनकथां श्रुत्वा तस्य सकाशं गताः] । ते कथयन्ति । उपाध्याय कस्यार्थे गृहव्याकुलिका संक्षिप्यत इति । स कथयति । प्रभूतमस्माभिर्भवन्तोऽस्य राज्ञः उपकृतम् । न वयमनेनानुरक्षिताः । तस्माद्गच्छामो वयमन्य[त्रेति । ते कथयन्ति । मान्यत्र गच्छत । अन्तेवासिनः असुखचित्ता भविष्यन्ति] स गाथां भाषते ।

वरं नरस्य परदेशवासो न तु स्वदेशे परिभूतवासः ।
यस्मिन्नराणां न पराभवोऽस्ति स वै स्वदेशः स्वजनोऽपि तत्र ॥६॥ इति ।

तिष्येण ब्राह्मणेन श्रुतम् । सः [अन्यत्र गच्छति । वयं दूरात् आगन्तुका वयं गमिष्यामः । इहैव ति]ष्ठ । तथैव वादिभोगा भविष्यन्तीति । स न तिष्ठति । ततस्तिष्येणोक्तः । उपाध्याय इहैव तिष्ठ अस्य कर्वटकस्योपार्धं तव भवतु उपार्धं ममेति । G. M. 21

स कथयति । एवमस्त्विति । पत्नीमामन्त्रयते । भद्रे अस्य राज्ञः प्रभूतमस्माभिरुपकृतं न वयमनेनानु[र]क्षिताः । अपि तु तिष्येणैव ब्राह्मणेनास्माकं प्रभूतमुपकृतं वादिभोगानामुपार्धं ददता । तदस्य शारिकां भार्यार्थमनुप्रयच्छाम इति । [सा कथयति । अस्य माणवस्य ख्यातिर्दूरङ्गता । तौ पुत्रमामन्त्र्य तदर्थमारोचयामासतुः । स कथयति । कस्मादस्य दीयते । पितरौ कथं सुहृद्भावेन शत्रुं ज्ञास्यामि । सर्वेण सर्वथैतं जीवि] ताद् व्यपरोपयेत । वयमनेन भोगेभ्यः च्याविताः । सर्वथा न दातव्येति । तौ कथयतः । मूर्खस्त्वं किं ज्ञास्यसीति । ताभ्यां तस्य वचनमवचनं कृत्वा दत्ता । तेन महता श्रीसमुदयेन परिणीता । [ब्राह्मणमाणवः कोष्ठिलोऽचिन्तयत् । एतैरहमवज्ञातः । अथ तत् सर्वं श्रुत्वा यत् कृत्यं] तदल्पं कृतमिति कृत्वा अपि तु किमयं तिष्यो माणवो जानीते । लोकायतम् । कुत्र भवन्तो लोकायतं ज्ञायते । ज्ञायते दक्षिणापथे । सोऽनुपूर्वेण दक्षिणापथमनुप्राप्तः । स तत्र गत्वा पृच्छति । को [अत्र भवन्तो लोकायतमधिगतः । सन्ति‥‥‥। स तेषां सकाश] मुपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य कथयति । इच्छाम्यहं युस्माकं पादशुश्रूषां कर्तुम् । कस्यार्थाय । लोकायतमुद्ग्रहीष्यामि । ते कथयन्ति । न वयमागारिकस्य लोकायतमुपदिशामः । स कथयति । यद्येवं [प्रव्रजिष्यामि । तैः स G. M. 22 प्रव्राजितः । प्रव्रज्य नखान् न तावच्छे] त्स्यामीति यावन्मया लोकायतमुद्गृहीतं भवतीति । दीर्घदीर्घाणि नखानि दीर्घनखः परिव्राजको दीर्घनखः परिव्राजक इति संज्ञा उदपादि ।

शारिकापि तिष्येण ब्राह्मणेन [सार्धं वादम् आरोपयति । तिष्येण सा निगृहीता । तिष्यब्राह्मणः शारिकया सार्धं क्रीडति रमते परिचार]यति । अन्यतमश्च सत्त्वश्च चरमभविकश्च हितैषी गृहीतमोक्षमार्गोऽन्तर्मुखो निर्वाणे बहिर्मुखः संसारादनर्थिकः सर्वभवगतिच्युत्युपपत्तिष्वन्तिमदेहधारी अन्यतमस्मात्प्रणीताद्देव [निकायात् च्यवित्वा शारिकायां गर्भमवक्रान्तः । शारिकया स्वप्नो दृष्टः । उल्काहस्तः पुरुषः] कुक्षिं भित्त्वा प्रविष्टः । महाशैलं पर्वतमधिरोहामि । उपरि विहायसा गच्छामि । महाजनकायो मे प्रणामं करोतीति । तया तिष्यस्य ब्राह्मणस्य निवेदितम् । ईदृशं चेदृशं च म[या स्वप्नो दृष्ट इति । स्वप्नाध्यायमजानता] तेनान्येषामपि स्वप्नाध्यायपाठकानां ब्राह्मणानां निवेदितम् । मम ब्राह्मण्या ईदृशश्च स्वप्नो दृष्ट इति । ते कथयन्ति । उपाध्याय शोभनः स्वप्नः । यत्कथयति उल्काहस्तो मे पुरुषः [कुक्षिं भित्त्वा प्रविष्टः । सा पुत्रं प्रसूयते । स वर्षाष्टद्वयेन ऐन्द्रव्याकर]णमधीत्य सर्ववादिनो निग्रहीष्यति । यत्कथयति महाशैलं पर्वतमधिरोहामि । उपरि विहायसा गच्छामि । महाजनकायो मे प्रणामं करोतीति । प्रव्रजिष्यति [च संयमसिद्धिमात्मदृष्टिं च लप्स्यते ।

या] वदपरेण समयेन तिष्यो ब्राह्मण्या सार्धं वादं करोतीति। तयासौ निगृह्यते।
स संलक्षयति । को योगः । पूर्वमहमेतां निगृह्णामि । साम्प्रतमहमनया निगृह्ये । [इतो- G. M. 23
ऽस्याः प्रभावो नाभूत् । यतः सत्त्वोऽस्याः कु]क्षिमवक्रान्तस्तस्यैषोऽनुभाव इति । सा
अष्टानां [नवानां] वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जातः अभिरूपो दर्शनीयः
प्रासादिको गौरः कनकवर्णश्छत्राकारशिरा [दीर्घबाहुर्विस्तीर्णललाटो युगमभ्रुरुत्तुङ्गनासः ।
ज्ञातयः] संगम्य समागम्य विस्तरेण जातौ जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थापयितुमा-
रब्धाः । किं भवतु माणवस्य नामेति । तिष्यो माणवकमुपाना[मयद् मातामहसका-
शम् । सोऽचिन्तयत् । माणवस्य किं भवतु] नाम इति । स संलक्षयति । अयं
माणवस्तिष्यस्य ब्राह्मणस्य पुत्रः । भवतु माणवस्य उपतिष्य इति नामेति । तिष्यो
ब्राह्मणः कथयति । कीदृशं माणवस्य आर्यकेण नाम व्यवस्थापितम् । उपति[ष्य
इति । स संलक्षयति । मातामहेन माणवस्य नाम पितुर्नामतः कृतम्] । अहमस्य
मातृकं नामधेयं व्यवस्थापयामि । अयं माणवः शारिकायाः पुत्रः । भवतु माणवस्य
शारिपुत्र इति नाम इति । ततः केचिच्छारिपुत्रो माणव इति संजानते । केचि
[दुपतिष्यो माणव इति । सोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्यः प्रदत्तः । स दारकः क्षीरेण]
दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्च उत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैराशु वर्ध्यते ह्रदस्थमिव
पंकजम् । स यदा महान् संवृत्तस्तदा लिप्यामुपन्यस्तः । स लिप्यां पारङ्गतः । संख्यायां
गणनायां [चर्यायां शौचे समाचारे भस्मगृहे] मृत्तिकागृहे ओंकारे भोंकारे ऋग्वेदे
यजुर्वेदे अथर्ववेदे सामवेदे यजने याजने अध्ययने अध्यापने दाने प्रतिग्रहे षट्कर्मनिरतो G. M. 24
ब्राह्मणः संवृत्तः । स पित्रा सर्वविद्यास्थानानि [समाप्य वर्षाष्टद्वयेन ऐन्द्रव्याकरणं
पठित्वा सर्ववादिनो निगृ] ह्णाति । अपरेण समयेन पित्रा सार्धमध्ययनं कुर्वन्नेवमाह ।
तात कोऽस्य भाषितस्यार्थः । पुत्र अहमपि न जाने कोऽस्य भाषितस्यार्थ इति ।
अपि त्वेवमेतानि मन्त्रपदानि पूर्वकैः ऋषिभिस्तु [तानि गीतानि समायुक्तानि । यान्ये-
तर्हि ब्राह्मणा अप्यनुगायन्तेऽप्य] नुभाषन्ते । स कथयति । न खलु तात निरर्थका-
न्येतानि मन्त्रपदानि पूर्वकैः ऋषिभिः स्तुतानि गीतानि समायुक्तानि यान्येतर्हि ब्राह्मणा
अनुगायन्तेऽप्यनुभाषन्तेऽपि । [तेषायर्थो नैष इति संलक्ष्य कः खलु सोऽर्थः । स
कथयति । अर्थोऽस्य अयमेव । तिष्यब्रा] ह्मण आत्तमनाः संवृत्तः । स संलक्षयति ।
एतावत्पुत्रेण करणीयम् । यदुत पैतृकी वा धुरा उन्नामयितव्या उत्तरो वा विशेषोऽधि-
गन्तव्यः । तदनेन माणवेन उत्तरो वि [शेषोऽधिगन्तव्यः । स पञ्चशतानि ब्राह्मणमा-
णवकान्] मन्त्रान् वाचयति । तेनात्तमनसा तस्यैव तानि दत्तानि । उपतिष्योऽपि

माणवः पञ्चमात्राणि माणवशतानि ब्राह्मणकान्मन्त्रान् वाचयितुमारब्धः। तेन ये दीर्घा
वेदास्ते ह्[स्वा ग्रन्थतो व्यञ्जनतश्च स्था]पयित्वा अर्थतो निरुक्तितश्च स्थापिताः।

काष्ठवाटग्रामके मुद्गलो नाम पुरोहितः प्रतिवसति। आढ्यो महाधनो महाभोगो
विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनस [मृद्धः। तेन सदृशात् कुलात् कलत्रमानीतम्। स
G. M. 25 तेन] सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतो न पुत्रो न
दुहिता। सोऽपुत्रः पुत्राभिनन्दी च वरुणकुवेरशक्रब्रह्मादीनन्यांश्च देवताविशेषानायाचते।
[तद्यथा आरामदेवता वनदेवताश्चत्वरदेवताः शृङ्गाटकदेवता बलि]प्रतिग्राहिका देवताः
सहजाः सहधार्मिका नित्यानुबद्धा अपि देवता आयाचते। अस्ति चैव लोके प्रवादः
यदायाचनहेतोः पुत्रा जायन्ते दुहितरश्चेति। तन्नैवम्। यद्येवमभविष्यत् [एकैकस्य
पुत्रसहस्रमभविष्यत्। तद्यथा राज्ञश्चक्रवर्तिनः। अपि तु त्रयाणां स्थानानां] संमुखी-
भावात्पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च। कतमेषां त्रयाणाम्। मातापितरौ रक्तौ भवतः संनिपतितौ।
माता च कल्या भवति ऋतुमती। गन्धर्वश्च प्रत्युपस्थितो भवति। येषां त्रयाणां।

G.M. 27 [किं महल्लेनाधिगतम्। एकोत्तरिका। अयं तावत् खुस्तिकया एकोत्तरिकया
धर्मं देशयति। अमी भिक्षवस्त्रिपिटा धर्मकथिका युक्तमुक्तप्रतिभानाः। कस्मान्नैतान्
अध्येषयसि। स तैरभिहितः। महल्ल किं त्वयाधिगतम्। स कथयति। एकोत्तरिका।
ते कथयन्ति। त्वं तावन्महल्ल खुस्तिकया एकोत्तरिकया धर्मं देशयसि। अमी
भिक्षवस्त्रिपिटा धर्मकथिका युक्तमुक्तप्रतिभानाः। कस्मान्नैतान् अध्येषयसि। स
कथयति। आर्या यूयं कस्यार्थे न देशयत किमहं निवारयामीति। ते कथयन्ति।
नन्दोपनन्द प्रतिवदति एषोऽस्माकम्। नानुकूलो महल्लः। कुरुतास्योत्क्षेपणीयं
कर्म। स संलक्षयति। यदीमे उत्क्षेपणीयं कर्म करिष्यन्ति नागभवनेऽप्यहमवकाशं
न लप्स्ये। स तेषां शयितकानां तं विहारमन्तर्हापयित्वा महासमुद्रं प्रविष्टः। ते
वालुकास्थले शयितकास्तिष्ठन्ति। नन्दोपनन्द उत्तिष्ठ। सिंहासनं प्रज्ञपय। धर्मं
देशयामः। ते कथयन्ति। कोऽप्यसौ देवो वा नागो वा यक्षो वा भगवत्यभिप्रसन्नः
बुद्धे धर्मे संघे कारान् कुर्वन् सोऽस्माभिर्विहेठितः। एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत
G.M. 28 आरोचयन्ति। भगवानाह। योऽसौ भिक्षवो निर्मितो यदि षड्वर्गिकैर्भिक्षुभिर्न
विहेठितोऽभविष्यद् यावच्छासनकोटिं बुद्धे धर्मे संघे कारान् अकरिष्यत्। भगवान्
संलक्षयति। यः कश्चिद् आदीनवो भिक्षवः अनधीष्टो धर्मं देशयति। तस्मान्न
भिक्षुणा अनधीष्टेन धर्मो देशयितव्यः। भिक्षुरनधीष्टो धर्मं देशयति सातिसारो
भवति। अनापत्तय आगन्तुका निर्गता भवन्ति।

श्रावस्त्यां बुद्धरक्षितो नाम गृहपतिः प्रतिवसति आढ्यो महाधनो महाभोगः। तेन सदृशात् कुलात् कलत्रमानीतम्। स तया सार्धं क्रीडते रमते परिचारयति। तस्य क्रीडतो रमतः परिचारयतः पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। आयुष्मान् शारिपुत्रो वैनेयापेक्षया तत् कुलमुपसंक्रान्तः। तेन स गृहपतिः सपत्नीकः शरणगमनशिक्षापदेषु प्रतिष्ठापितः। अपरेण समयेन सा तस्य पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। आयुष्मान् शारिपुत्रस्तस्य च वैनेयकालं ज्ञात्वा एकाकी एव तत् कुलमुपसंक्रान्तः। स गृहपतिः कथयति। नास्त्यार्यशारिपुत्रस्य कश्चित् पश्चाच्छ्रमणः। स कथयति। गृहपते किमस्माकं काशधानाद् वा कुशधानाद् वा पश्चाच्छ्रमणा भवन्ति। अपि तु ये भवद्विधानां सकाशाल्लभ्यन्ते अस्माकं पश्चाच्छ्रमणा भवन्ति। बुद्धरक्षितो गृहपतिः। आर्य मम पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता। यदि पुत्रं जनयिष्यति तमहमार्यस्य पश्चाच्छ्रमणं [G. M. 29] दास्यामि। स कथयति। गृहपते औपयिकमिदम्।

सा अष्टानां वा नवानां वा मासानां प्रसूता। दारको जातः अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिको गौरः कनकवर्णश्छत्राकारशिराः प्रलम्बबाहुर्विस्तीर्णललाटः संगतभ्रूस्तुङ्गनासः। तस्य ज्ञातयः संगम्य समागम्य त्रीणि सप्तकान्येकविंशतिदिवसानि विस्तरेण जातस्य जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्थापयन्ति। किं भवतु दारकस्य नाम। अयं दारको बुद्धरक्षितस्य गृहपतेः पुत्रः। भवतु दारकस्य संघरक्षितो नाम। यस्मिन्नेव दिवसे संघरक्षितो जातस्तस्मिन्नेव दिवसे पञ्चानां वणिक्शतानां पञ्च पुत्रशतानि जातानि। तेषामपि कुलसदृशानि नामधेयानि व्यवस्थापितानि। संघरक्षितो दारक उन्नीयते वर्ध्यते क्षीरेण दध्ना नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैराशु वर्ध्यते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्। यदा महान् संवृत्तस्तदायुष्मान् शारिपुत्रस्तस्य वैनेयकालं ज्ञात्वा एकाकी एव तत् कुलमुपसंक्रम्य निमित्तमुपदर्शयितुमारब्धः। बुद्धरक्षितेन गृहपतिना संघरक्षितोऽभिहितः। पुत्र अजात एव त्वं मयार्यशारिपुत्रस्य पश्चाच्छ्रमणो दत्त इति। चरमभविकः स सत्त्व आयुष्मन्तं शारिपुत्रं पृष्ठतः समनुबद्धः। स आयुष्मता शारिपुत्रेण प्रव्राजित उपसंपादित आगमचतुष्टयं च ग्राहितः।

अथापरेण समयेन तानि पञ्चवणिक्शतानि महासमुद्रगमनीयं पण्यं समुदानीय महासमुद्रमवतर्तुकामानि कथयन्ति। कंचिद् वयं भवन्त आर्यकमवतारयामी योऽस्माकं [G. M. 30] महासमुद्रमध्यगतानां धर्मं देशयिष्यति। ते कथयन्ति। भवन्तः अयमस्माकमार्यसंघरक्षितो वयस्यकः सहजन्मिकः सहपांशुक्रीडनक एतमेवावतारयामः। ते तस्य सकाश-

मुपसंक्रान्ताः। आर्यसंघरक्षित त्वमस्माकं वयस्यकः सहजन्मिकः सहपांशुक्रीडनकः। वयं च महासमुद्रं संप्रस्थिताः। त्वमप्यस्माभिः सार्धमवतर समुद्रमध्यगतानां धर्मं देशयिष्यसि। स कथयति। नाहं स्वाधीनः। उपाध्यायमवलोकयत। ते येनायुष्मान् शारिपुत्रस्तेनोपसंक्रान्ताः। उपसंक्रम्य कथयन्ति। आर्य शारिपुत्र अयमस्माकमार्यसंघरक्षितो वयस्यकः सहजन्मिकः सहपांशुक्रीडनकः। वयं महासमुद्रं संप्रस्थिता एषोऽप्यस्माभिः सार्धमवतरतु अस्माकं महासमुद्रमध्यगतानां धर्मं देशयिष्यति। स कथयति। भगवन्तमवलोकयत। ते भगवतः सकाशमुपसंक्रान्ताः। भगवन् वयं महासमुद्रं संप्रस्थिता अयमस्माकमार्यसंघरक्षितो वयस्यकः सहजन्मिकः सहपांशुक्रीडनकः। एषोऽप्यस्माभिः सार्धं महासमुद्रमवतरतु अस्माकं महासमुद्रमध्यगतानां धर्मं देशयिष्यति। भगवान् संलक्षयति। अस्त्येषां कानिचित् कुशलमूलानि। अथ कस्यान्तिके प्रतिबद्धानि। संघरक्षितस्य भिक्षोः। तत्र भगवान् संघरक्षितमामन्त्रयते। गच्छ संघरक्षित भयभैरवसहिष्णुना भवितव्यम्। अधिवासयति आयुष्मान् संघरक्षितो भगवतस्तूष्णींभावेन।

G. M. 31 अथ तानि पञ्च वणिक्शतानि कृतकौतुकमङ्गलस्वस्त्ययनानि शकटैर्भारैर्भेडैर्घोटकैरुष्ट्रैर्गोभिर्गर्दभैः प्रभूतं पण्यमारोप्य महासमुद्रं संप्रस्थितानि। अनुपूर्वेण ग्रामनगरनिगमपल्लीपत्तनेषु चञ्चूर्यमाणानि समुद्रतटमनुप्राप्तानि। ते निपुणतः समुद्रयानपात्रं प्रतिपद्य महासमुद्रमवतीर्णा धनहारकाः। तेषां महासमुद्रमध्यगतानां नागैर्वहनं विधारितम्। ते देवतायाचनं कर्तुमारब्धाः। योऽस्मिन् महासमुद्रे देवो वा नागो वा यक्षो वा प्रतिवसति स आचक्षतु किं मृगयतीति।

महासमुद्रात् शब्दो निश्चरति। आर्यसंघरक्षितमस्माकमनुप्रयच्छतेति। ते कथयन्ति। आर्यसंघरक्षितोऽस्माकं वयस्यकः सहजन्मिकः सहपांशुक्रीडनकः। भदन्त शारिपुत्रेणानुप्रदत्तको भगवता अनुप्रदत्तकः। श्रेयोऽस्माकमनेनैव सार्धं कालक्रिया नत्वेव वयं संघरक्षितं परित्यक्ष्यामः। ते मन्त्रयन्त आयुष्मता संघरक्षितेन श्रुताः। स कथयति। भवन्तः किं कथयन्ते। [ते] कथयन्ति। आर्यसंघरक्षितमस्माकमनुप्रयच्छतेति। स कथयति। कस्मान्नानुप्रयच्छध्वम्। ते कथयन्ति। आर्य त्वमस्माकं वयस्यकः सहजन्मिकः सहपांशुक्रीडनको भदन्त शारिपुत्रेणानुप्रदत्तको भगवतानुप्रदत्तकः। श्रेयोऽस्माकं त्वयैव सार्धं कालक्रिया नत्वेव वयमार्यसंघरक्षित त्वां परित्यक्ष्यामः।
G. M. 32 आयुष्यान् संघरक्षितः संलक्षयति। यदुक्तं भगवता भयभैरवसहिष्णुना ते भवितव्यम् इतीदं तत्। स पात्रचीवरं गृहीत्वा आत्मानं महासमुद्रे प्रक्षेप्तुमारब्धः। स तैर्दृष्टः।

ते कथयन्ति । आर्य संघरक्षित किं करोषि आर्य संघरक्षित किं करोषीति । स तेषां विक्रोशतां महासमुद्रे प्रपतितः । मुक्तं तद् वहनम् । स नागैर्गृहीत्वा नागभवनं प्रवेशितः । आर्य संघरक्षित इयं विपश्यिनः सम्यक्सम्बुद्धस्य गन्धकुटी । इयं शिखिनो विश्वभुवः क्रकुच्छन्दस्य कनकमुनेः काश्यपस्येयं भगवतो गन्धकुटी । आर्य संघरक्षित भगवतः सूत्रं मातृका च देवमनुष्येषु प्रतिष्ठितम् । वयं नागा विनिपतितशरीराः । अहो वतार्यसंघरक्षित इहाप्यागमचतुष्टयं प्रतिष्ठापयेत् । स कथयति । एवं भवतु । तेन त्रयो नागकुमारा उत्साहिताः । एकोऽभिहितः । त्वं तावत् संयुक्तकमधीष्व । द्वितीयोऽभिहितः । त्वमपि मध्यमम् । तृतीयोऽभिहितः । त्वमपि दीर्घागममधीष्व । स कथयति । अहमपि तामेवैकोत्तरिकां विमृष्टरूपां प्रज्वालयामि । ते अध्येतुमारब्धाः । तत्रैकश्चक्षुषी निमीलयित्वोद्देशं गृह्णाति । द्वितीयः पृष्ठतोमुख उद्देशं गृह्णाति । तृतीयो दूरतः स्थित्वोद्देशं गृह्णाति । स एव तेषामेकः सगौरवः सप्रतीश इतिकरणीयश्च सर्वत्र पूर्वंगमः । आर्य उत्तिष्ठ दन्तकाष्ठं विसर्जय भगवतो मण्डलकमामार्जय चैत्याभिवन्दनं कुरु भुङ्क्ष्व शय्यां कल्पयेति । सर्वैस्तैरागमान्यधीतानि । स कथयति । आर्य अधीतान्येभिरागमानि किं धारयिष्यन्ति आहोस्वित् न धारयिष्यन्ति । स कथयति । स्मृतिमन्तका ह्येते धारयिष्यन्ति अपि तु दोषोऽस्त्येषाम् । स कथयति । आर्य को G. M. 33 दोषः । सर्वे ह्येतेऽगौरवा अप्रतीशाः । एकस्तावत् चक्षुषी निमीलयित्वोद्देशं गृह्णाति । द्वितीयः पृष्ठतोमुख उद्देशं गृह्णाति । तृतीयो दूरतः स्थित्वोद्देशं गृह्णाति । त्वमेवैकः सगौरवः सप्रतीश इतिकरणीयश्च सर्वत्र पूर्वंगमः । स कथयति । आर्य नह्येते अगौरवा अप्रतीशाः । यस्तावदयं चक्षुषी निमीलयित्वोद्देशं गृह्णाति अयं दृष्टिविषः । योऽप्ययं पृष्ठतोमुख उद्देशं गृह्णाति एषोऽपि श्वासविषः । योऽप्येष दूरतः स्थित्वोद्देशं गृह्णाति एषोऽपि स्पर्शविषः । अहमेको दंष्ट्रविषः । स भीत उत्पाण्डूत्पाण्डुकः कृशालुको दुर्बलको म्लानकोऽप्रासकायः संवृत्तः । स कथयति । आर्य कस्मात् त्वमुत्पाण्डूत्पाण्डुकः कृशालुको दुर्बलको म्लानकोऽप्रासकायः संवृत्तः । स कथयति । भद्रमुख अमित्रमध्येऽहं वासं कल्पयामि । सचेद् युष्माकमन्यतमोऽन्यतमं प्रकुप्येत मां नामावशेषं कुर्यात् । स कथयति । आर्यस्य वयं न प्रहरामः । अपि तु इच्छसि त्वं जम्बुद्वीपं गन्तुम् । भद्रमुख इच्छामि । तच्च वहनमागतम् । स तैरुत्क्षिप्तः । वणिग्भिर्दृष्टः । ते कथयन्ति । स्वागतमार्यसंघरक्षिताय । स कथयति । अनुमोदन्तां भवन्तः । मया नागेष्वागमचतुष्टयं प्रतिष्ठापितम् । ते कथयन्ति । आर्यसंघरक्षित अनुमोदयामः । ते तद् वहनं प्रक्षिप्य संप्रस्थिताः । ते अनुपूर्वेण समुद्रतीरं गत्वा सर्वे ते वणिजः

G. M. 34 शयिताः। आयुष्मान् संघरक्षितो महासमुद्रं द्रष्टुमारब्धः। उक्तं भगवता पञ्चासेचनकदर्शना [नि। कतमानि पञ्च।]

हस्ती नागश्च राजा च सागरश्च शिलोच्चयः।
असेचनकदर्शनानि पञ्च भगवतां वरे ॥ ७ ॥ इति।

चिरं महासमुद्रं पश्यन् जागरितः। सोऽपश्चिमे यामे गाढनिद्रावष्टब्धः शयितः। तेऽपि वणिजः सरात्रमेवोत्थाय स्थोराँल्लर्दयित्वा संप्रस्थिताः। ते कथयन्ति प्रभातायां रजन्याम्। कुत्रायं संघरक्षितः। तत्रैक एवमाहुः। पुरस्ताद् गच्छति। अपर एवमाहुः। पृष्ठत आगच्छति। अपर एवमाहुः। मध्ये गच्छतीति। ते कथयन्ति। आर्यसंघरक्षितोऽस्माभिश्छोरीतः। न शोभनमस्माभिः कृतम्। प्रतिनिवर्तयामः। आर्यसंघरक्षितो भवन्तो महर्द्धिको महानुभावो यः समुद्रमध्ये न कालगतः स इदानीं कालं करिष्यति स्थानमेत[न्न] विद्यते यदसावग्रत एव यास्यति। आगच्छत गमिष्यामः। ते संप्रस्थिताः।

आयुष्मान् अपि संघरक्षितः सूर्यस्याभ्युद्गमनसमये सूर्यांशुभिस्ताडितः प्रतिबुद्धो यावन्न किंचित् पश्यति। प्रक्रान्ता वणिजः। सोऽपि पन्थलिकां गृहीत्वा संप्रस्थितः। यावदन्यतमस्यां सालाटव्यां विहारं पश्यति उद्गतं मञ्चपीठवेदिकाजालवातायनगवा-
G. M. 35 क्षपरिमण्डितं भिक्षूंश्च संप्रावृतान् संप्रच्छन्नान् शान्तेनेर्यापथेनावस्थितान्। स तेषां सकाशमुपसंक्रान्तः। स तैरुक्तः। स्वागतं भदन्त संघरक्षिताय। स तैर्विश्रामितः। विश्रामयित्वा विहारं प्रवेशितो यावत् पश्यति शोभनां शयनासनप्रज्ञप्तिं कृतां प्रणीतं चाहारमुप [सं] हृतम्। स तैरुक्तः। भदन्त संघरक्षित मा तृषितोऽसि मा बुभुक्षितोऽसि। [स] कथयति। आर्यास्तृपितोऽस्मि बुभुक्षितोऽस्मि। भदन्त संघरक्षित भुङ्क्ष्व। स कथयति। संघमध्ये भोक्ष्यामि। ते कथयति। भदन्त संघरक्षित भुङ्क्ष्व। आदीनवोऽत्र भविष्यति। तेन भुक्तम्। स भुक्त्वैकान्तेऽपक्रम्यावस्थितः। यावत् तेषां गण्डी आकोटिता। ते स्वकस्वकानि पात्राण्यादाय यथागत्य निषण्णाः। स च तेषां विहारोऽन्तर्हितः। अयोमुद्गराः प्रादुर्भूताः। तैस्तावदयोमुद्गरैः परस्परमार्तस्वरं क्रन्ददभिः शिरांसि भग्नानि। यावत् कालमकालीभूतम्। ततः पश्चात् पुनरपि तेषां विहारः प्रादुर्भूतः। ते च भिक्षवः शान्तेनेर्यापथेनावस्थिताः। आयुष्मान् संघरक्षितस्तेषां सकाशमुपसंक्रान्तः। के यूयमायुष्मन्तः केन वा कर्मणा इहोपपन्नाः। भदन्त संघरक्षित दुष्कुहका जाम्बुद्वीपका मनुष्याः। नाभिश्रद्दधास्यसि। स कथयति। अहं प्रत्यक्षदर्शी

कस्मान्नाभिश्रद्धास्ये । ते कथयन्ति । भदन्त संघरक्षित वयं काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य श्रावका आसन् । तैरस्माकं भक्ताग्रे रणमुत्पादितम् । ते वयं भक्ताग्रे रणमुत्पादयित्वा इह प्रत्येकनरकेषूपपन्नाः । स्थानमेतद् विद्यते G. M. 36 यदस्माभिः इतश्च्युतैर्नरकेषूपपत्तव्यं भविष्यति । साधु संघरक्षित जम्बुद्वीपं गत्वा सब्रह्मचारिणामारोचय । मायुष्मन्तः संघमध्ये रणमुत्पादयिष्यथ । मा अस्यैवंरूपस्य दुःखदौर्मनस्यस्य भागिनो भविष्यथ तद्यथा श्रमणाः काश्यपीयाः ।

स संप्रस्थितः । यावत् पश्यति द्वीतीयं विहारमुद्गतं मञ्चपीठवेदिकाजालवातायनपरिक्षिप्तं गवाक्षपरिमण्डितं भिक्षूंश्च संप्रावृतान् संप्रतिच्छन्नान् शान्तेनेर्यापथेनावस्थितान् । स तेषामुपसंक्रान्तः । स तैरुक्तः । स्वागतं भदन्त संघरक्षिताय । स तैर्विश्रामितः । विश्रामयित्वा विहारं प्रवेशितो यावत् पश्यति शोभनां शयनासनप्रज्ञप्तिं कृतां प्रणीतं चाहारं समन्वाहृतम् । स तैरुक्तः । भदन्त संघरक्षित भुङ्क्ष्व । तेन दृष्टादीनवेन भुक्तम् । भुक्त्वा एकान्ते अपक्रम्यावस्थितः । तेषां गण्डी आकोटिता । ते स्वकस्वकानि पात्राण्यादाय यथागत्य निषण्णाः । स च विहारोऽन्तर्हितः । तदन्नपानम् अयोरसं प्रादुर्भूतम् । तैरार्तस्वरं क्रन्दद्भिस्तावदयोरसेन परस्परमात्मा सिक्तो यावत् कालमकालीभूतम् । ततः पश्चात् पुनरपि स तेषां विहारः प्रादुर्भूतः । ते च भिक्षवः पुनरपि शान्ताः शान्तेनेर्यापथेनावस्थिताः । स तेषां सकाशमुपसंक्रान्तः । के यूयमायुष्मन्तः केन वा कर्मणा इहोपपन्नाः । दुष्कुहका भदन्त संघरक्षित जाम्बुद्वीपका मनुष्याः । नाभिश्रद्धास्यसि । स कथयति । अहं प्रत्यक्षदर्शी कस्मात् नाभिश्रद्धास्ये । ते कथयन्ति । भदन्त संघरक्षित वयं काश्यपस्य सम्यक्सम्बुद्धस्य श्रावका G M. 37 आसन् । संघस्य च स्नेहलाभे संपन्ना आगन्तुका भिक्षव आगताः । तैरस्माभिरमात्सर्यपरिगृहीतैरेवं चित्तमुत्पादितम् । न तावद्भोजयिष्यामो यावदेते आगन्तुका भिक्षवो न प्रक्रान्ता भविष्यन्तीति । तैरस्माभिस्तत् तथैव कृतम् । साप्ताहिकं चाकालदुर्दिनं प्रादुर्भूतम् । तेन तदन्नपानं क्लेदं गतम् । वयं श्रद्धादेयं विनिपातयित्वा इह प्रत्येकनरकेषूपपन्नाः । स्थानमेतद् विद्यते यदस्माभिरिह च्युतैर्नरकेषूपपत्तव्यं भविष्यति । साधु भदन्त संघरक्षित जम्बुद्वीपं गत्वा सब्रह्मचारिणामारोचय । मायुष्मन्तः श्रद्धादेयं विनिपातयिष्यथ । मास्यैवंरूपस्य दुःखदौर्मनस्यस्य भागिनो भविष्यथ तद्यथा श्रमणाः काश्यपीयाः

स संप्रस्थितो यावत् पश्यति तृतीयं विहारमुद्गतं मञ्चपीठवेदिकाजालवातायनगवाक्षपरिमण्डितं पूर्ववद् यावत् आयुष्मान् संघरक्षितो भुक्त्वा एकान्तेऽपक्रम्यावस्थितः ।

गण्ड्य आकोटिताः । स तेन विहार आदीप्तः प्रदीप्तः संप्रज्वलित एकज्वालीभूतो ध्मातुमारब्धः । तेऽपि तस्मिन्नार्तस्वरं क्रन्दन्तस्तावद् दग्धा यावत् कालमकालीभूतम् । ततः पश्चात् पुनरपि तेषां विहारः प्रादुर्भूतः । ते च भिक्षवः शान्ताः शान्तेनेर्यापथेनावस्थिताः । स तेषां सकाशमुपसंक्रान्तः । के यूयमायुष्मन्तः केन वा कर्मणा इहोपपन्नाः । दुष्कुहका भदन्त संघरक्षित जाम्बुद्वीपका मनुष्याः । नाभिश्रद्धास्यसि । स कथयति । अहं प्रत्यक्षदर्शी कस्मान्नाभिश्रद्धास्ये । ते कथयन्ति । भदन्त
G. M. 38 संघरक्षित वयं काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य श्रावका आसन् । दुःशीलास्ते वयं शीलवद्भिर्भिक्षुभिर्निष्काशिताः । तैरस्माभिरेकः शून्यविहार आवासितः । यावत् तत्रैकः शीलवान् भिक्षुरागतः । अस्माकं बुद्धिरुत्पन्ना । तिष्ठतु अयं भिक्षुः । अयमप्येकोऽस्माकं दक्षिणां शोधयिष्यति । स तत्रैव स्थितो यावत् तस्य आनिषङ्गेन पुनरपि बहवः शीलवन्तो भिक्षव आगताः । ते वयं तत्रापि निर्वासिताः । तैरस्माभिरामर्षजातैः शुष्काणि काष्ठानि शुष्काणि तृणानि शुष्काणि गोमयानि उपसंहृत्य तस्मिन् विहारे अग्निर्दग्धः । तत्र प्रभूताः शैक्षाशैक्षाः पुद्गला दग्धाः । ते वयं शैक्षाशैक्षान् पुद्गलान् दग्ध्वा इह प्रत्येकनरकेषूपपन्नाः । स्थानमेतद् विद्यते यदस्माभिरिह च्युतैर्नरकेषूपपत्तव्यं भविष्यति । साधु भदन्त संघरक्षित जम्बुद्वीपं गत्वा सब्रह्मचारिणामारोचय । मायुष्मन्तः सब्रह्मचारिणामन्तिके प्रदुष्टचित्तमुत्पादयिष्यथ । मास्यैवंरूपस्य दुःखदौर्मनस्यस्य भागिनो भविष्यथ तद्यथा श्रमणाः काश्यपीयाः ।

आयुष्मान् संघरक्षितः संप्रस्थितो यावत् सत्त्वानद्राक्षीत् स्तम्भाकारान् कुड्याकारान् वृक्षाकारान् पत्राकारान् पुष्पाकारान् फलाकारान् रज्ज्वाकारान् संमार्जन्याकारान् उदूखलाकारान् खट्वाकारान् स्थालिकाकारान् ।

आयुष्मान् संघरक्षितो जनपदान् गतः । अन्यतमस्मिन्नाश्रमपदे पञ्चमात्राणि ऋषिशतानि प्रतिवसन्ति । तैरायुष्मान् संघरक्षितो दूरत एव दृष्टः । ते कथयन्ति ।
G. M. 39 भवन्तः क्रियाकारं तावत् कुर्मः । बहूल्लापकाः मणाः शाक्यपुत्रीया भवन्ति । नास्य केनचिद् वचनं दातव्यम् । ते क्रियाकारं कृत्वावस्थिताः । आयुष्मांश्च संघरक्षितस्तेषां सकाशमुपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य प्रतिश्रयं याचितुमारब्धः । न कश्चिद् वाचमनुप्रयच्छति । तत्रैक ऋषिः सशुक्लधर्मः कथयति । किं युष्माकं प्रतिश्रयं न दीयते । अपि तु युष्माकं दोषः अस्ति । बहूल्लापका यूयम् । समयेनाहं भवतः प्रतिश्रयं दास्ये सचेत् किंचिन्न मन्त्रयसि । आयुष्मान् संघरक्षितः कथयति । ऋषे एवं भवतु । तत्रैक ऋषिर्जनपदचारिकां गतः । तस्य कुटिः शून्यावतिष्ठते । स कथयति । अस्यां कुटिकायां शय्यां

कल्पय । आयुष्मता संघरक्षितेन सा कुटिका सिक्ता संमृष्टा संमार्जिता सुकुमारी गोमयकार्षी चानुप्रदत्ता । तैर्दृष्टः । ते कथयन्ति । भदन्त शुच्यपि मार्जन्ति एते श्रमणाः शाक्यपुत्रीयाः । आयुष्मान् संघरक्षितो बहिः कुटिकायाः पादौ प्रक्षाल्य कुटिकां प्रविश्य निषण्णः पर्यङ्कमाभुज्य ऋजुं कायं प्रणिधाय प्रतिमुखं स्मृतिमुपस्थाप्य । या तस्मिन्नाश्रमपदे देवता प्रतिवसति सा रात्र्याः प्रथमे यामे येनायुष्मान् संघरक्षितस्तेनोपसंक्रान्ता । उपसंक्रम्य कथयति । आर्य संघरक्षित धर्मं देशय । आयुष्मान् संघरक्षितः कथयति । सुखिता त्वम् । न पश्यसि मया क्रियाकारेण प्रतिश्रयं लब्धं किं निष्कासापयितुमिच्छसि । सा संलक्षयति । श्रान्तकायोऽयं स्वपितु । मध्यमे यामे उपसंक्रमिष्यामि । सा मध्यमे यामे उपसंक्रान्ता । उपसंक्रम्य कथयति । आर्य संघरक्षित धर्मं देशय । आयुष्मान् संघरक्षितः कथयति । सुखिता त्वम् । न पश्यसि M. G. 40
मया क्रियाकारेण प्रतिश्रयं लब्धं किं निष्कासापयितुमिच्छसि । सा संलक्षयति । श्रान्तकायोऽयं स्वपितु । पश्चिमे यामे उपसंक्रमिष्यामि । सा पश्चिमे यामे उपसंक्रान्ता । उपसंक्रम्य कथयति । आर्य संघरक्षित धर्मं देशय । आयुष्मान् संघरक्षितः कथयति । सुखिता त्वम् । न पश्यसि मया क्रियाकारेण प्रतिश्रयं लब्धं किं निष्कासापयितुमिच्छसि । सा कथयति । आर्य संघरक्षित प्रभातम् इदानीं सचेत् निष्कासयिष्यन्ति गमिष्यसि । अपि तु ननूक्तं भगवता । भयभैरवसहिष्णुना ते भवितव्यमिति । आयुष्मान् संघरक्षितः संलक्षयति । शोभनं कथयति । सचेत् स निष्कासयिष्यति । गमिष्यामि । स संलक्षयति । ब्राह्मणा ह्येते ब्राह्मणप्रतिसंयुक्तं भाषयामीति । आयुष्मान् संघरक्षितो ब्राह्मणवर्गं स्वाध्यायितुमारब्धः ।

न नग्नचर्या न जटा न पङ्को नानाशनं स्थण्डिलशायिका वा ।
न रजो मलं नोत्कुटुकप्रहाणं विशोधयेन्मोहम् अविशीर्णकाङ्क्षम् ॥८॥
अलंकृतश्चापि चरेत धर्मं दान्तेन्द्रियः शान्तः संयतो ब्रह्मचारी ।
सर्वेषु भूतेषु निधाय दण्डं स ब्राह्मणः स श्रमणः स भिक्षुः ॥९॥ G. M. 41

तैः श्रुतम् । ते संलक्षयन्ति । ब्राह्मणप्रतिसंयुक्तम् अत इत्येक उपसंक्रान्तो द्वितीयस्तृतीयो यावत् सर्वे उपसंक्रान्ताः । तथा तया देवतयाधिष्ठितं यथा परस्परं न पश्यन्ति । ततः पश्चादायुष्मता संघरक्षितेन नगरोपमं सूत्रमुपनिक्षिप्तम् । गाथां च भाषते ।

यानीह भूतानि समागतानि स्थितानि भूम्यामथवान्तरीक्षे ।
कुर्वन्तु मैत्रीं सततं प्रजासु दिवा च रात्रौ च चरन्तु धर्ममिति ॥१०॥

G. M. 42 अस्मिन् खलु धर्मपर्याये भाष्यमाणे सर्वैस्तैः सह सत्याभिसमयाद् अनागामिफल-
मनुप्राप्तम् ऋद्धिश्चापि निर्हृता । सर्वैस्तैः सुभाषितं भदन्त संघरक्षित सुभाषितमिति
एकनादो मुक्तः । तया देवतया ऋद्ध्यभिसंस्काराः प्रतिप्रस्रब्धाः । ते परस्परं
द्रष्टुमारब्धाः । अन्योन्यं कथयन्ति । त्वमपि आगतः । आगतोऽहम् । शोभनम् ।
ते दृष्टसत्याः कथयन्ति । लभेम वयं भदन्त संघरक्षित स्वाख्याते धर्मविनये
प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावं चरेम वयं भगवतोऽन्तिके ब्रह्मचर्यम् । आयुष्मान् संघरक्षितः
कथयति । किं मत्सकाशे प्रव्रजथ आहोस्विद् भगवतः । ते कथयन्ति । भगवतः ।
आयुष्मान् संघरक्षितः कथयति । यद्येवम् आगच्छथ भगवतः सकाशं गच्छामः । ते
कथयन्ति । भदन्त संघरक्षित किमस्मदीयया ऋद्ध्या गच्छामः आहोस्वित् त्वदीयया ।
आयुष्मान् संघरक्षितः संलक्षयति । एभिर्मदीयेनाववादेनैवंविधा गुणगणा अधिगताः ।
अहं लङ्घनकोपमः संवृत्तः । स कथयति । तिष्ठन्तु तावद् भवन्तो मुहूर्तम् । आयुष्मान्
संघरक्षितोऽन्यतमं वृक्षमूलं निश्रित्य निषण्णः पर्यङ्कमाभुज्य ऋजुकायं प्रणिधाय प्रतिमुखं
स्मृतिमुपस्थाप्य । उक्तं भगवता । पञ्चानुशंसा बाहुश्रुत्ये । धातुकुशलो भवति ।
G. M. 43 प्रतीत्यसमुत्पादकुशलो भवति । स्थानास्थानकुशलो भवति । अ-परप्रतिबद्धा
चास्य भवति अववादानुशासनीति । तेनोद्यच्छता घटता व्यायच्छता सर्वक्लेशप्रहाणाद्
अर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् अर्हन् संवृत्तस्त्रैधातुकवीतरागः पूर्ववद् यावन्मान्यः
पूज्यश्चाभिवाद्यश्च संवृत्तः । त आयुष्मता संघरक्षितेनाभिहिताः । भवन्तो गृह्णीध्वं
मदीयं चीवरकर्णिकं यास्यामः । [ते] आयुष्मतः संघरक्षितस्य चीवरकर्णिके
लग्नाः । अथायुष्मान् संघरक्षितो विततपक्ष इव हंसराजस्तत एव ऋद्ध्या
उपरिविहायसा प्रक्रान्ताः । यावत् तानि पञ्च वणिक्शतानि भाण्डं प्रतिशामयन्ति
तेषामुपरि च्छाया निपतिता । स तैर्दृष्टः । ते कथयन्ति । आर्य संघरक्षित
आगतस्त्वम् । आगतोऽहम् । कुत्र गच्छसि । स कथयति । इमानि पञ्च कुल-
पुत्रशतानि आकाङ्क्षन्ति स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावम् । ते
कथयन्ति । आर्य संघरक्षित वयमपि प्रव्रजिष्यामः । अवतरस्व यावद् भाण्डं प्रतिशा-
मयाम इति । आयुष्मान् संघरक्षितोऽवतीर्णः । तैर्भाण्डं प्रतिशामितम् । अथायुष्मान्
संघरक्षितस्तत्कुलपुत्रसहस्रमादाय येन भगवांस्तेन उपसंक्रान्तः ।

तेन खलु समयेन भगवाननेकशताया भिक्षुपर्षदः पुरस्तात् निषण्णो धर्मं देशयति ।
अद्राक्षीद् भगवानायुष्मन्तं संघरक्षितम् । दूरादेव दृष्ट्वा च पुनर्भिक्षूनामन्त्रयते स्म ।

एष भिक्षवः संघरक्षितो भिक्षुः सप्राभृत आगच्छति। नास्ति तथागतस्यैवंविधं प्राभृतं G. M. 44 यथा वैनेयप्राभृतम्। आयुष्मान् संघरक्षितो येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णः। एकान्तनिषण्णः आयुष्मान् संघरक्षितो भगवन्तमिदमवोचत्। इदं भदन्त कुलपुत्रसहस्रमाकाङ्क्षति स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावम्। तं भगवान् प्रव्राजयतु उपसंपादयत्वनुकम्पामुपादाय। ते भगवता एहिभिक्षुकया आभाषिताः। एत भिक्षवश्चरत ब्रह्मचर्यम्। भगवतो वाचावसाने मुण्डाः संवृत्ताः संघाटीप्रावृताः सप्ताहावरोपितकेशश्मश्रवः पात्रकरकव्यग्रहस्ता वर्षशतोपसंपन्नस्य भिक्षोरीर्यापथेनावस्थिताः।

एहीति चोक्ता हि तथागतेन मुण्डाश्च संघाटिपरीतदेहाः।
सद्यः प्रशान्तेन्द्रिय एव तस्थुर्नैव स्थिता बुद्धमनोरथेन ॥११॥

भगवता तेषामववादो दत्तः। तैरुद्यच्छमानैर्घटमानैर्व्यायच्छद्भिः सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अर्हन्तः संवृत्तास्त्रैधातुकवीतरागाः पूर्ववद् यावन्मान्याश्च पूज्याश्चाभिवाद्याश्च संवृत्ताः।

आयुष्मान् संघरक्षितो बुद्धं भगवन्तं पृच्छति। इहाहं भदन्त सत्त्वानद्राक्षं कुड्याकारान् स्तम्भाकारान् वृक्षाकारान् पत्राकारान् पुष्पाकारान् फलाकारान् रज्ज्वाकारान् संमार्जन्याकारान् खट्वाकारान् उदूखलाकारान् स्थालिकाकारान् मध्येऽवच्छिन्नस्तन्तुना G. M. 45 धार्यमाणो गच्छति। कस्य कर्मणो विपाकेन। भगवानाह। यांस्त्वं संघरक्षित सत्त्वान् अद्राक्षीः कुड्याकारान् ते काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य श्रावका आसन्। तैः सांघिकं कुड्यं श्लेष्मणा शिंघाणकेन विनाशितम्। ते तस्य कर्मणो विपाकेन कुड्याकाराः संवृत्ताः। यथा कुड्याकारा एवं स्तम्भाकाराः सत्त्वाः। यान् संघरक्षित सत्त्वान् अद्राक्षीर्वृक्षाकारान् ते काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य श्रावका आसन्। तैः सांघिकाः पुष्पवृक्षाः फलवृक्षाः पौद्गलिक-परिभोगेन भुक्ताः। ते तस्य कर्मणो विपाकेन वृक्षाकाराः संवृत्ताः। यथा वृक्षाकारा एवं पत्राकाराः फलाकाराः पुष्पाकाराः। यं त्वं संघरक्षित सत्त्वमद्राक्षी रज्ज्वाकारं स काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य श्रावक आसीत्। तेन सांघिका रज्जुः पौद्गलिक-परिभोगेन परिभुक्ता। स तस्य कर्मणो विपाकेन रज्ज्वाकारः संवृत्तः। यथा रज्ज्वाकार एवं संमार्जन्याकारः। यं त्वं संघरक्षित सत्त्वमद्राक्षीर्घटाकारं [स] काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य श्रावक असीच्छ्रामणेरकः। सोऽपरेण समयेन पानकवारमुद्दिष्टस्तद् वारकं निर्मादयति। आगन्तुकाश्च भिक्षव आगताः। स तैः पृष्टः।

श्रामणेरक किं संघस्य पानकं भविष्यति । स कथयति नास्तीति । ते निराशीभूताः प्रक्रान्ताः । स तस्य कर्मणो विपाकेन घटाकारः संवृत्तः । यं त्वं संघरक्षित सत्त्वमद्राक्षीरुदूखलाकारं स काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य श्रावक आसीत् । तस्य पात्रकर्म G. M. 46 प्रत्युपस्थितम् । तत्रैकः श्रामणेरक एकोऽर्हन् । स तेनोक्तः । श्रामणेरक ददस्व मे खलस्तोकं कुट्टयिष्यामि । स कथयति । स्थविर तिष्ठ तावन्मुहूर्तं व्यग्रोऽहं पश्चाद् दास्यामीति । सः आमर्षजातः कथयति । श्रामणेरक यदि रोचते त्वामेवाहमस्मिन्नुदूखले प्रक्षिप्य कुट्टये प्रागेव खलस्तोकम् । यत् तदर्हतोऽन्तिके खरं वाक्कर्म निश्चारितम्। स तस्य कर्मणो विपाकेन उदूखलाकारः संवृत्तः । यांस्त्वं संघरक्षित सत्त्वानद्राक्षीः स्थाल्याकारांस्ते काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य कल्पिकारका आसन् । ते भिक्षूणां भैषज्यानि क्वाथयमानाः स्थालिकां भञ्जते । तेषां भिक्षूणां विघातो भवति । ते तस्य कर्मणो विपाकेन स्थाल्याकाराः संवृत्ताः । यं त्वं संघरक्षित सत्त्वमद्राक्षीर्मध्ये छिन्नस्तन्तुना धार्यमाणो गच्छति स काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य प्रवचने प्रव्रजित आसील्लाभग्राहिकः । तेन यद् वार्षिकं लाभं तद् हैमन्तिकं परिणामितं यद् हैमतिकं तद् वार्षिकम् । तस्य कर्मणो विपाकेन मध्ये छिन्नस्तन्तुना धार्यमाणो गच्छति ।

G. M. 47 भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पृच्छन्ति । किं भदन्तायुष्मता संघरक्षितेन कर्म कृतं यस्य कर्मणो विपाकेनाढ्ये महाधने महाभोगे कुले जातो भगवतोऽन्तिके प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतमेवं तं च वैनेयकार्यं कृतम् । भगवानाह । संघरक्षितेनैव भिक्षवः कर्माणि कृतान्युपचितानि पूर्ववत् ।

भूतपूर्वं भिक्षवोऽस्मिन्नेव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम शास्ता पूर्ववत् । तस्यायं शासने प्रव्रजित आसीद् वैयावृत्यकरः । अस्य तत्र पञ्च सार्धविहारिशतानि यद्भूयसा एकर्कर्वटनिवासी जनकायोऽस्यैवाभिप्रसन्नः । अनेन तत्र यावदायुःपर्यन्तं ब्रह्मचर्यं चीर्णं न कश्चिद् गुणगणोऽधिगतः । अपरेण समयेन ग्लानीभूतो मूलगण्डपत्रपुष्पफलभैषज्यैरुपस्थीयमानो हीयत एव । मरणसमये प्रणिधानं कर्तुमारब्धः । यन्मया काश्यपे भगवति सम्यक्सम्बुद्धेऽनुत्तरे महादक्षिणीये यावदायुर्ब्रह्मचर्यं चीर्णं न कश्चिद् गुणगणोऽधिगतोऽनेनाहं कुशलमूलेन योऽसौ भगवता काश्यपेन सम्यक्संबुद्धेनोत्तरो नाम माणवो व्याकृतो भविष्यसि त्वं माणव वर्षशतायुषि प्रजायां शाक्यमुनिर्नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्ध इति तस्य शासने प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कुर्याम् ।

ततः पश्चात् सार्धंविहारिण उपसंक्रान्ताः। ते कथयन्ति। उपाध्यायास्ति G. M. 48 किंचित् त्वया गुणगणमधिगतम्। स कथयति। नास्ति। किं प्रणिधानं कृतम्। इदं चेदं च। ते कथयन्ति। वयमप्युपाध्याय एवमेवं कल्याणमित्रमागम्य तस्यैव भगवतोऽन्तिके सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कुर्युः। कर्वटनिवासिना जनकायेन श्रुतं ग्लान आर्यक इति। तेऽप्युपसंक्रान्ताः। अस्ति किंचिदार्येण गुणगणमधिगतम्। नास्ति। किं प्रणिधानं कृतम्। इदं चेदं च। ते कथयन्ति। वयमप्यार्यमेवं कल्याणमित्रमागम्य तस्यैव भगवतोऽन्तिके सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कुर्युः।

किं मन्यध्वे भिक्षवः। योऽसौ वैयावृत्यकर एष एवासौ संघरक्षितो भिक्षुः। यानि तानि पञ्च सार्धंविहारिशतान्येतान्येव तानि पञ्च वणिक्शतानि। यदनेन तत्र धर्मवैयावृत्यं कृतं तस्य कर्मणो विपाकेनाढ्ये महाधने महाभोगे कुले उपपन्नः। यत्तन्मरणसमये प्रणिधानं कृतं तस्य कर्मणो विपाकेन ममान्तिके प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतमेवं च वैनेयकार्यं कृतम्। इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः पूर्ववत्।

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पृच्छन्ति। कुतो भदन्त तेन नागकुमारेण तत्प्रथमतः श्रद्धाः प्रतिलब्धाः। भगवानाह। भूतपूर्वं भिक्षवोऽस्मिन्नेव G. M. 49 भद्रकल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम शास्ता लोक उत्पन्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स एव श्रावकाणां धर्मं देशयति। एतानि भिक्षवोऽरण्यानि शून्यागाराणि पर्वतकन्दरगिरिगुहापलालपुञ्जाभ्यवकाशश्मशानवनप्रस्थानि प्रान्तानि शयनासनानि ध्यायत भिक्षवो मा प्रमाद्यत मा पश्चाद् विप्रतिसारिणो भूतेदमस्माकमनुशासनम्। तत्र केचिद् भिक्षवः सुमेरुपरिषण्डायां गत्वा ध्यायन्ति। केचिन्मन्दाकिन्याः पुष्करिण्यास्तीरे। केचिदनवतप्ते महासरसि। केचित् सप्तसु काञ्चनमयेषु पर्वतेषु। केचित् तासु ग्रामनिगमराष्ट्रराजधानीषु गत्वा ध्यायन्ति।

अन्यतमश्च अचिरजातको नागकुमारः सुपर्णिना पक्षिराजेन सुमेरुपरिषण्डायामुपरिष्टादपह्रियते। यावत् तेन भिक्षवो ध्यानाध्ययनयोगमनसिकारयुक्ता विहरन्तो दृष्टाः। दृष्ट्वा चास्य चित्तमभिप्रसन्नम्। प्रसादजातः संलक्षयति। मुक्ता ह्येते आर्यकाः। एवंविधाद्दुःखात् च्युतः कालगतो वाराणस्यां षट्कर्मनिरते ब्राह्मणकुले जात उन्नीतो वर्धितो महान् संवृत्तः। सोऽपरेण समयेन काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य शासने प्रव्रजितः। तेनोद्यच्छता घटता

व्यायच्छता सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन् संवृत्तः । पूर्ववद् यावन्मान्यश्च पूज्यश्च चाभिवन्द्यश्च संवृत्तः । स संलक्षयति । कुतोऽहं च्युतः । तिर्यक्षु । कुत्रोपपन्नः । G. M. 50 मनुष्येषु । कुत्र मम मातापितरौ । यावत् पश्यति नागभवने रुदन्तौ तिष्ठतः । स तत्र गतः । गत्वा पृच्छितुमारब्धः । अम्ब तात कस्यार्थे रुदितः । तौ कथयतः । आर्य अचिरजातकोऽस्माकं नागकुमारः सुपर्णिना पक्षिराजेनापहृतः । स कथयति । अहमेवासौ । आर्य तादृशः स दुष्टनागो यद् वयं सुगतिगमनमपि न संभावयामः । प्रागेवेदृशानां धर्माणां लाभी भविष्यति । तेन तौ स्मारितौ पादयोर्निपत्य कथयतः । आर्य एवंविधास्त्वया गुणगणा अधिगताः । आर्य त्वं पिण्डकेनार्थी वयं पुण्येनार्थिकाः । इहैव त्वमागम्य दिवसे दिवसे भक्तकृत्यं कृत्वा गच्छ । स नागभवने दिव्यां सुधां परिभुक्त्वागच्छति । तस्य श्रामणेरकः सार्धंविहारी । स भिक्षुभिरुक्तः । श्रामणेरक अयं ते उपाध्यायः कुत्र भुक्त्वा भुक्त्वा आगच्छति । स कथयति । नाहं जाने । ते कथयन्ति । नागभवने दिव्यां सुधां परिभुज्य परिभुज्यागच्छति । त्वं कस्यार्थे न गच्छसि । स कथयति । अयं महर्धिको महानुभावो येन गच्छति कथमहं गच्छामि । ते कथयन्ति । यदायमृद्ध्या गच्छति तदा त्वमस्य चीवरकर्णिकं गृहाण । स कथयति । मा पतेयम् । ते कथयन्ति । भद्रमुख यदि सुमेरुः पर्वतराजा चीवरकर्णिकमवलम्बते नासौ पतेत् प्रागेव त्वं पतिष्यसीति । यो यस्मिन् स्थानेऽन्तर्धास्यति तेन तत्र निमित्तमुद्गृहीतम् । स तत्प्रदेशं पूर्वमेव गत्वावस्थितः । स चान्तर्धास्यतीति तेन चीवरकर्णिकं गृहीतम् । तावुपरि विहायसा प्रक्रान्तौ यावत् तौ G. M. 51 नागैर्दृष्टौ । तयोर्द्वे आसने प्रज्ञप्तिकृते द्वौ मण्डलकावामार्जितौ । स संलक्षयति । कस्यार्थेऽयमपर आसनः प्रज्ञप्तः । स प्रतिनिवृत्य पश्यति यावच्छ्रामणेरकम् । स कथयति । भद्रमुख त्वमप्यागतः । उपाध्यायागतोऽहम् । शोभनम् । नागाः संलक्षयन्ति । अयमार्यो महर्धिको महानुभावः । शक्यते दिव्यां सुधां धारयितुम् । अन्यमन्यो न शक्यते । तैस्तस्य दिव्या सुधा दत्ता तस्यापि प्राकृत आहारः । स तस्य पात्रग्राहकः । तेन तस्य पात्रं गृहीतं यावत् तत्रैक ओदनोऽभिषक्तोऽवतिष्ठते । स तेनास्ये प्रक्षिप्तो यावद् दिव्यमास्वादनम् । स संलक्षयति । ईदृशा अपि मत्सरिणो नागाः । एकध्ये निषण्णयोरस्य दिव्या सुधा दत्ता ममापि प्राकृत आहारः । स प्रणिधानं कर्तुमारब्धः । यन्मया भगवति काश्यपे सम्यक्संबुद्धेऽनुत्तरे महादक्षिणीये ब्रह्मचर्यं चीर्णमनेनाहं कुशलमूलेनैतं नागम् अस्माद्भवनाच्च्यावयित्वात्रैवोपपद्येयेति । तस्य दृष्ट एव धर्मे उभाभ्यां पाणिभ्यां जलं स्यन्दितुमारब्धम् । नागस्यापि शिरोऽर्ति-

बाधितुमारब्धा । स कथयति । आर्यानेन श्रामणेरकेणाशोभनचित्तमुत्पादितम् । प्रतिनिवर्तापयित्वेनम् । स कथयति । भद्रमुखापाया ह्येते निवर्तय चित्तम् । स गाथां भाषते ।

प्रवणीभूतमिदं चित्तं न शक्नोमि निवारयितुम् ।
इहस्थस्यैव मे भदन्त पाणिभ्यां स्यन्दते जलम् ॥१२॥

स तं नागं तस्माद्भवनाच्च्यावयित्वा तत्रैवोपपन्नः । तत्र भिक्षवस्तेन नागकुमारेण तत्प्रथमतः श्रद्धा प्रतिलब्धा ।

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । यावदन्यतमस्तीर्थ्यो G. M. 52
जेतवनं गतः । तत्र तेन दृष्टा शोभनासनप्रज्ञप्तिः कृता प्रणीतं चान्नपानमुपान्वाहृतम् । स संलक्षयति । शोभनः श्रमणशाक्यपुत्रीयाणामामिषसंभोगः । अस्माकं तु शोभनो धर्मसंभोगः । तदेषां मध्ये प्रव्रजामीति । इह य आमिषसंभोगस्तत्र धर्मसंभोग इति । स भिक्षोः सकाशमुपसंक्रान्तः । आर्य इच्छामि प्रव्रजितुम् । स तेन प्रव्रजितोपसंपादितः । तीर्थ्यानां पोषधश्चातुर्दशिको भिक्षूणां च पांचदशिकः । स चतुर्दश्यां तीर्थिकानामन्तिके पोषधं प्रत्यनुभवति पंचदश्यां भिक्षूणाम् । यावदपरेण समयेन ऊनरात्रीपतितो भिक्षूणामपि चातुर्दशिकः पोषधो जातः । तस्य संशय उत्पन्नः । किं तत्र गच्छामि आहोस्विदिहैव पोषधं प्रत्यनुभवामीति । तस्य बुद्धिरुत्पन्ना । अमी श्रमणाः शाक्यपुत्रीयाः सुरताः सुखसंवासा मम सब्रह्मचारिणो दुःशीला दुःखसंवासाः । सचेन्न गमिष्यामि स्थानमेतद् विद्यते यच्छलाका मे पातयिष्यन्ति फलकं संपरिवर्तयिष्यन्ति खोरं निकुब्जयिष्यन्ति सब्रह्मचारिमध्यादुद्धरिष्यन्ति । स तीर्थ्यानां मध्ये गतो यावदुपधिवारिको वृद्धान्ते स्थितो भिक्षून् समनुयुङ्क्ते तं न पश्यति । स प्रष्टुमारब्धः । आयुष्मन्त एवंनामा कश्चिद् भिक्षुरागतश्छन्दो वास्यानीतः । ते कथयन्ति नास्तीति । उक्तं भगवता । G. M. 53
चतुर्दिशं व्यवलोक्य पोषधः कर्त्तव्य इति । तैर्भिक्षुभिश्चतुर्दिशं व्यवलोक्य पोषधः कृतः । ततः पश्चाद् द्वितीये दिवसे भिक्षुरागतः । स भिक्षुभिरुक्तः । कुतस्त्वमागतः । स कथयति । सब्रह्मचारिणामन्तिकात् । के तव सब्रह्मचारिणः । तीर्थ्याः । मम युष्माकमन्तिके आमिषसंभोगस्तेषामन्तिके धर्मसंभोग इति । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म । तीर्थिकावक्रान्तकोऽयं पुद्गलः । नाशयत यूयं भिक्षवस्तीर्थिकावक्रान्तकं पुद्गलम् । अप्ररोहणधर्मा भिक्षवस्तीर्थिकावक्रान्तकः पुद्गलोऽस्मिन् धर्मविनये । तस्मात् तर्हि भिक्षवो यस्य कस्यचित्

प्रव्रज्यापेक्ष उपसंक्रामति स तेन प्रष्टव्यो मासि तीर्थिकावक्रान्तक इति। अपृष्ट्वा प्रव्राजयति सातिसारो भवति। आयुष्मान् उपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति यद् उक्तं भदन्त भगवता तीर्थिकावक्रान्तकः पुद्गलो नाशनार्ह इति। कियता भदन्त तीर्थिकावक्रान्तकः पुद्गलो नाशनार्हः। यतश्चोपालिन् तीर्थ्य इमं ध्वजं धारयति तं च दृष्टिं रोचयते तत्र चारुणमुद्गमयति। इयता तीर्थिकावक्रान्तकः पुद्गलो नाशनार्हः।

श्रावस्त्यां निदानम्। श्रावस्त्यामन्यतमो गृहपतिः। तेन सदृशात् कुलात् कलत्रमानीतम्। स तया सर्धं क्रीडति रमते परिचारयति। तस्य क्रीड़तो रममाणस्य G. M. 54 परिचारयतः पुत्रो जातः। स पत्नीमामन्त्रयते। भद्रे जातोऽस्माकमृणहरो धनहरः। गच्छाम्यहं पण्यमादाय देशान्तरम्। सा कथायति। आर्यपुत्र एवं कुरु। स पण्यमादाय देशान्तरं गतः। तत्रैवानयेन व्यसनमापन्नः। तयाप्यसौ पुत्रो ज्ञातिबलेन हस्तबलेनापायितः पोपितः संवर्धितः। सोऽपरेण समयेन वयस्यकेन सार्धमन्यतमस्य गृहसमीपे गच्छति। तस्मिन् गृहे दारिका च तिष्ठति। तया तस्योपरि स्रगदामं क्षिप्तम्। तेन सा दृष्टा। वयस्यकेनाभिहितः। वयस्य मा त्वमस्मिन् गृहे कृतसंकेतः। स कथयति। आं कृतसंकेतोऽहम्। स कथयति। वयस्य विषममेतद् गृहं मा प्रवेक्ष्यसि मा अनयेन व्यसनमापत्स्यत इति। स तेन सकलं दिवसं भ्रामयित्वा मातुः सकाशं नीतः। अम्ब अयं ते पुत्रः अमुष्मिन गृहे कृतसंकेतो मया कृत्स्नं दिवसं रक्षितः। त्वमिदानीं रात्रिं रक्षस्व। विषमं तद्गृहं मा प्रवेक्ष्यसि मा अनयेन व्यसनमापत्स्यत इति। सा कथयति। पुत्र शोभनं ते कृतं यदस्माकमारोचिम्। तया तस्यावबरके शय्या प्रज्ञप्ता। द्वौ कर्परकौ प्रवेशितौ पानीयं च मृत्तिका च। तस्मिन्नवबरके प्रवेशयित्वात्मनो द्वारे खट्वा प्रज्ञपयित्वा शयिता। स कथयति। अम्ब द्वारं देहि। पुत्र कस्यार्थे। प्रस्रावं करिष्यामि सा कथयति। पुत्र अत्रैव मया कर्परकः प्रवेशितः। तत्र प्रस्रावं कुरु। स मुहूर्तं स्थित्वा कथयति। अम्ब द्वारं प्रयच्छ। कस्यार्थे। उच्चारभूमिं गमिस्यामि। सा कथयति। G. M. 55 पुत्र अत्रैव मया कर्परको मृत्तिका पानीयं च प्रवेशितम्। अत्रैवोच्चारं कुरु। स पुनरपि मुहूर्तं स्थित्वा कथयति। अम्ब द्वारमनुप्रयच्छ। स कथयति। पुत्र किमहं न जाने यत्र त्वं गन्तुकामः। न शक्यं मया द्वारं दातुम्। अम्ब अहं ते प्रघातयिष्ये। सा कथयति। पुत्र श्रेयोऽहं म्रिये न त्वेवाहं पुत्रवधं पश्यामि। कामान् खलु प्रतिसेवमानस्य नास्ति किंचित् पापकं कर्माकरणीयमिति। तेन निर्घृणहृदयेन त्यक्तपरलोकेन उत्कोशमसिं कृत्वा तस्या उत्कृत्तमूलं शिरः कृत्वा पृथिव्यां निपातितम्। स तां प्रघात्य गतः। पापकारी सत्त्वो वेपते। स तया दारिकयाभिहितः। आर्यपुत्र मा

भैषी: नास्त्यत्र काचिद् दारिकाद्वीतीया । स संलक्षयति । आरोचयिष्याम्यस्याः प्रियो भविष्यामि । स कथयति । भद्रे मया त्वदर्थं माता प्रघातिता । सा कथयति । किं धात्री आहोस्विज्जनित्री । स कथयति । जनित्री । सा संलक्षयति । यो नाम गुणानामनभिज्ञो भूत्वा मातरं प्रघातयति यदा ममान्तिके प्रकोपं जनयिष्यति का मे समवस्था भविष्यति सा कथयति । आर्यपुत्र तिष्ठ तावद् उपरिमं तलकमभिरुह्यागच्छामि । स कथयति । एवं कुरु । तया उपरिमं तलमभिरुह्य चोरश्चोर इति शब्दः कृतः । स भीतो भयेन निष्पलायितः । आत्मीयं गृहं गत्वा द्वारमूलेऽसिं प्रक्षिप्य—अयं स चोरो मातरं मे प्रघात्य निष्पलायित इति । स तां मातरं सत्कार्य गतः । पापकर्मकारी सत्त्वो धृतिं न लभते । स तानि तीर्थानि तपोवनाति गत्वा पप्रच्छ भवन्तः किं कर्म क्रियते येन पापकं कर्म क्षयं गच्छेत् । तत्र कश्चित् कथयति । अग्निं प्रविश । कश्चित् कथयति । G. M. 56 प्रपाते प्रपत । कश्चित् कथयति । उदके । कश्चित् कथयति । रज्ज्ववबद्धा म्रियस्वेति । सर्वे ते मरणोपायं दर्शयन्ति । न च कश्चित् निस्सरणोपायम् । सोऽपरेण समयेन जेतवनं गतः । स तत्र पश्यति भिक्षुं स्वाध्यायं कुर्वन्तम् ।

यस्य पापकृतं कर्म कुशलेन पिधीयते ।
सोऽस्मिन्नाभासते लोके मुक्तोऽभ्रादिव चन्द्रमाः ॥१२॥ इति

स संलक्षयति । शक्यं पापकर्म पिधातुं नो तु क्षपयितुम् । एषां मध्ये प्रव्रजामि क्षपयिष्यामीति । स भिक्षोः सकाशमुपसंक्रान्तः । आर्य प्रव्रजितुमिच्छामि । स तेन प्रव्राजित उपसंपादितः । सोऽत्यर्थमारब्ध वीर्यः स्वाध्यायतः पठितुमारब्धः । तेन पठता त्रीणि पिटकान्यधीतानि । त्रिपिटः संवृत्तो धार्मकथिको युक्तमुक्तप्रतिभानः । स भिक्षुभिरुक्तः । आयुष्मन् किं त्वमनेन वीर्येण प्रार्थयसे । स कथयति । पापं कर्म क्षपयामि । किं त्वया पापं कर्म कृतम् । माता प्रघातिता । किं धात्री अहोस्विज्जननी । स कथयति । जननी । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म । नाशयत यूयं भिक्षवो मातृघातकं पुद्गलमस्माद् धर्मविनयात् । अप्ररोहणधर्मो भिक्षवो मातृघातः पुद्गलोऽस्मिन् धर्मविनये । तस्मात् तर्हि भिक्षवो यस्य कस्यचित् प्रव्रज्यापेक्ष उपसंक्रामति स तेन प्रष्टव्यो मासि मातृघातक इति । अपृष्ट्वा प्रव्राजयति सातिसारो भवति । स संलक्षयति । G. M. 57 किमिदानीमेव प्रव्रजिष्यामि प्रत्यन्तं गच्छामीति । तेन प्रत्यन्तं गत्वान्यतमो गृहपतिरन्वावर्तितः । तेनाभिप्रसन्नेन तमुद्दिश्य विहारः कारित इति । स नानादिग्देशनिवासिभिर्भिक्षु-

भिरावासितः। तस्य चाववादेन प्रभूतैरर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। सोऽपरेण समयेन ग्लानः संवृत्तः। स मूलगण्डपत्रपुष्पफलभैषज्यैरुपस्थीयमानो हीयत एव। तेन सार्धंविहारिण उक्ताः। आयुष्मन्तो जेन्ताकं मे उद्दिश्य कुरुत। तैस्तमुद्दिश्य जेन्ताकः कृतः।

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ॥१४॥ इति

[स] च्युतः कालगतः अवीचौ महानरके उपपन्नः। तस्य सार्धंविहारी अर्हन् समान्वाहर्तुं प्रवृत्तः कुत्र मे उपाध्याय उपपन्न इति। स देवान् व्यवलोकयितुमारब्धो न पश्यति। मनुष्यान् तिरश्चः प्रेतांस्तत्रापि न पश्यति। यावन्नरकान् व्यवलोकयितुमारब्धः पश्यति अवीचौ महानरके उपपन्नः। स संलक्षयति। उपाध्यायः शीलवान् बहुश्रुतो धर्मेण पार्षदान् संगृह्णीते। किं तेन कर्म कृतं येनावीचौ महानरके उपपन्न इति। स समन्वाहर्तुं प्रवृत्तो यावत् पश्यति मातृघातक इति सोऽप्यवीचिके रश्मिभिः स्पृष्टः। स कथयति। अतितीक्ष्णोऽयं जेन्ताकाग्निसंताप इति। ततो नरकपालेन
G. M. 58 मुद्गरेण शिरसि प्रहारं दत्त्वा उक्तः। मन्दभाग्य कुतस्तेऽत्र जेन्ताकोऽवीचिरयं महानरकः। स मुद्गराभिहतः कुशलचित्तः कालगतश्चातुर्महाराजकायिकेषु देवेषूपपन्नः। धर्मता खलु देवपुत्रस्य वा देवकन्याया वा अचिरोपपन्नस्य त्रीणि चित्तान्युत्पद्यन्ते। कुतश्च्युतः कुत्रोपपन्नः केन कर्मणेति। स पश्यति। नरकेभ्यश्च्युतश्चातुर्महाराजिकेषु देवेषूपपन्नः संघजेन्ताकस्नानं कृत्वेति। अथ नरकपूर्विणो देवपुत्रस्यैतदभवत्। न मम प्रतिरूपं स्याद् यदहं पर्युषितपरिवासो भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रमेयं यन्न्वहमपर्युषित परिवास एवं भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रमेयमिति। अथ नरकपूर्वी देवपुत्रश्चलविमलकुण्डलधरो हारार्धहारविभूषितगात्रो दिव्यानामुत्पलकुमुदपुण्डरीकमान्दारवाणां पुष्पाणामुत्सङ्गं पूरयित्वा अतिक्रान्तवर्णोऽतिक्रान्तायां रात्र्यां येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्य भगवन्तं च पुष्पैरवकीर्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णः। अपीदानीं नरकपूर्विणो देवपुत्रस्यानुभावेन सर्वा कूटागारशाला उदारेणावभासेन स्फुटाभूत्। ततो भगवता नरकपूर्विणो देवपुत्रस्याशयानुशयं धातुं प्रकृतिं च ज्ञात्वा तादृशी चतुरार्यसत्यसंप्रतिवेधिकी धर्मदेशना कृता। यां श्रुत्वा नरकपूर्विणा देवपुत्रेण तस्मिन्नेवासने निषण्णेन विंशतिशिखरसमुद्गतं सत्कायदृष्टिशैलं ज्ञानवज्रेण भित्त्वा स्रोतापत्तिफलं साक्षात्कृतम्। स दृष्टसत्य उदानमुदानयति।

G. M. 59 इदमस्माकं भदन्त न मात्रा कृतं न पित्रा न राज्ञा न देवताभिर्न पूर्वप्रेतैर्न श्रमणब्राह्मणैः कृतं न स्वजनबन्धुवर्गेण यद् भगवतास्माकं कृतम्। उच्छोषिता

रुधिराश्रुसमुद्रा लंघिताः अस्थिपर्वताः पिहितानि अपायद्वाराणि विवृतानि स्वर्गमोक्षद्वाराणि उद्धृतो नरकतिर्यक्प्रेतेभ्यः पादः प्रतिष्ठापितो देव मनुष्येषु। आह च।

तवानुभावात् पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषयुक्तः।
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गश्च मयोपलब्धः ॥१५॥
त्वदाश्रयावाप्तमपेतदोषं मयाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः।
प्राप्तं च शान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णश्च दुःखार्णवपारमस्मि ॥१६॥
जगति दैत्यनरामरपूजित विगतजन्मजरामरणाभय।
भवसहस्रसुदुर्लभदर्शन सफलमद्य मुने तव दर्शनम् ॥१७॥
अवनम्य ततः प्रलम्बहारश्चरणौ द्वावभिवन्द्य जातहर्षः।
प्रणिपत्य च दक्षिणं जितारिं सुरलोकाभिमुखो दिवं जगाम ॥१८॥ G. M. 60

अथ नरकपूर्वी देवपुत्रो वणिगिव लब्धलाभः शस्यसम्पन्न इव कार्षिकः शूर इव विजितसंग्रामः सर्वरोगपरिमुक्त इवातुरो यया विभूत्या भगवत्सकाशमागतस्तयैव विभूत्या स्वभवनं गतः। तस्य सार्धंविहारी संघस्थविरोऽर्हन् भक्ताग्रे निषण्णोऽन्यश्च सार्धंविहारी संघपानीयं चारयति। यावत् तेन संघस्थविरेण पानीयं कांसिकायां गृह्णता अङ्गुल्यग्रेण स्पृष्टमतिशीतलम्। स संलक्षयति। यन्नाम ईदृशं पानीयं पिबाम उपाध्यायोऽप्यवीचौ महानरके क्वथितं ताम्ररसं पास्यतीति। सोऽवीचिं महानरकं व्यवलोकयितुमारब्धो न पश्यति। तिरश्चः प्रेतांश्च मनुष्यानन्यांश्च नरकान्। तेष्वपि न पश्यति। यावद् देवान् व्यवलोकयितुमारब्धः पश्यति चातुर्महाराजिकेषु देवेषूपपन्नः। देवभूतेन च भगवतोऽन्तिके सत्यदर्शनं कृतं देवेषु चावतिष्ठन्तम्। स्मिते पूर्वङ्गमो भगवति लब्धप्रसाद उदानमुदानयत्। अहो बुद्धः अहो धर्मः अहो संघः अहो धर्मस्य स्वाख्यातता यत्रेदानीमेवंविधा अपि पापकारिणो विनिपातं गता एवंविधं गुणगणमधिगच्छन्तीति। स तेन समानोपाध्यायेन हृष्टतुष्टप्रमुदितो दृष्ट उक्तश्च। आयुष्मन् किं G. M. 61
परितुष्टोऽसि उपाध्यायः कालगतोऽहं संघस्थविरो जात इति। स कथयति। आयुष्मन् [न कालस्तावत् ते प्रश्नस्य व्याकरणाय। संघमध्ये मे प्रक्ष्यसि तत्र ते कालो भविष्यति प्रश्नस्य व्याकरणायेति। यादवपरेण समयेन भिक्षुसंघे संनिषण्णे सन्निपतिते संघस्थविरस्तं समानोपाध्यायं पृच्छति। आयुष्मन्] किं त्वं तस्यां वेलायां कथयसीति। स कथयति। त्वं मयोक्तः किं त्वमुपाध्यायः कालगत इति तुष्टोऽहं संघस्थविरो जात इति। स एतत् प्रकरणं विस्तरेण संघमध्ये तस्य निवेदयामास। स आत्तमनात्तमना भिक्षवश्च उदानमुदानयन्ति। अहो बुद्धः अहो

धर्मः अहो संघः अहो धर्मस्य स्वाख्यातता । यत्रेदानीमेवंविधा अपि पापकारिणो विनिपातगता एवंविधं गुणगणमधिगच्छन्तीति ।

यथा मातृघातक एवं पितृघातको विस्तरेण वक्तव्यः ।

उद्दानम् ।

अर्हद्वधः संघः [भेदो] दुष्टचित्तेन शोणितम् ।
अन्तिमापन्नकेन चत्वार उत्क्षेपकेन च ॥१९॥

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्या [रा] म । यदा भगवता राजा बिम्बिसारः सत्येषु प्रतिष्ठापितः सार्धमशीत्या देवतासहस्रैरनेकैश्च मागधकैर्ब्राह्मणगृहपतिशतसहस्रैः तेन स्वे विजिते घण्टावघोषणं कारितम् । न मम
G. M. 62 विजिते चौर्यं कर्तव्यम् । यः करोति तमहं निर्विषयं करोमि । स्वस्माच्च कोशकोष्ठा-
गारान्मोषकं ददामीति । यदा च भगवता राजा प्रसेनजिद् दहरोपमेन सूत्रेण विनीतस्तदा तेनापि स्वे विजिते घण्टावघोषणं कारितम् । न मम विजिते चौर्यं कर्तव्यम् । यः करोति तस्य वधो दण्डः । स्वस्माच्च कोशकोष्ठागारान्मोषकं ददामीति । ततो ये मगधविषये चोरा ये च कोसलविषये ते सीमान्तरिकान् गत्वावस्थिताः । यो मगधविषयात् सार्थवाह आगच्छति तमपि मुष्णन्ति योऽपि कोसलविषयात् । यावदपरेण समयेन मगधविषयात् सानुयात्रः सार्थः कोसलविषयं संप्रस्थितो यदा सीमान्तरिकान् प्राप्तस्तदा स सार्थवाहः कथयति । भवन्तोऽसौ राजा प्रसेनजित् कोसलो व्याडो विक्रान्तः शक्तोऽस्माकं मोषं दापयितुं किमर्थं वयमायात्रिकाणां भृतिमनुप्रयच्छामः । प्रतिनिवर्तन्तु अत एवैत इति । ते तैः प्रतिनिवर्तिताः । अवगणकोऽसौ सार्थः संप्रस्थितः । ते च चोरा भलिन् दच्चावस्थिताः । तेन समाख्यातम् । भवन्तोऽवगणकः सार्थ आगच्छति । किमुदासीनास्तिष्ठतेति । ततस्ते तस्कराः प्रधाविताः ।
G. M. 63 तत्र केचिद् वणिजो जीविताद् व्यवरोपिताः केचित् पण्यं छोरयित्वा निष्पलायिताः । असमन्वाहृत्यार्हतां ज्ञानदर्शनं न प्रवर्तते । अर्हन्तोऽपि तेन सार्थेन गच्छन्तो जीविताद् व्यवरोपिताः । तत्र ये वणिजो निष्पलायितास्ते पांशुना शिरो गात्रं च धूलयित्वोद्धस्तमस्तका विक्रोशन्तो राज्ञः प्रसेनजितः कोसलस्य सकाशं गताः कृतकरपुटा विज्ञापयन्ति । देव तव विजिते वयमवणिजो व्यवस्थापिताः । किं कृतम् । चोरैर्मुषिताः स्म । कतरस्मिन् प्रदेशे । अमुष्मिन् । राज्ञा विरूढकस्य सेनापतेराज्ञा दत्ता । शीघ्रं मोषकं तस्करांश्चानयेति । स चतुरङ्ग बलकायं सन्नाह्य हस्तिकायमश्वकायं

रथकायं पत्तिकायं सन्नह्य निर्गतः। तेऽपि चोरा विस्रब्धविहारिणो मुक्तसन्नाहाः अन्यतमस्यां शालाटव्यां मोषकं भाजयमानास्तिष्ठन्ति। ते विरूढकेन चतुर्दिशं वेष्टयित्वा मध्ये शङ्खपटहशब्दैर्वित्रासिताः। तेषां केचिन्मोषकं छोरयित्वा निष्पलायिताः केचित् प्रघातिताः। षष्टिस्तु जीवग्राहं गृहीताः। स तान् मोषकं चादाय राज्ञः सकाशं गतः। देव अमी चोरा अयं च मोषक इति। ततस्ते राज्ञाभिहिताः। भवन्तो न युष्माभिः श्रुतं राज्ञावघोषणं कारितम्। न मे विजिते केनचित् चौर्यं कर्तव्यम्। यः करोति तस्य बधो दण्डः स्वस्माच्च कोशकोष्ठागारान्मोषकं ददामीति। ते कथयन्ति। श्रुतम्। अथ कस्माद् वणिजो मुषिताः। देव न जीवामः। कस्माद् जीविताद् व्यवरोपिता। भयमुपदर्शयद्भिः। कीदृशं युष्माभिर्भयमुपदर्शितम्। इदानीं वस्तादृशं भयमुपदर्शयामि यन्न केनचिद् दर्शितपूर्वम्। ततो राज्ञामात्यानामाज्ञा दत्ता। गच्छन्तु भवन्तः सर्वान् एतान् प्रघातयत। ते रथ्यावीथिचत्वरशृङ्गाटकेष्वनुश्राव्यमाणा GM. 64 आघातनं नीयन्ते। अन्यतमश्च चोरो रथ्यासंबाधे निष्पलायितो जेतवनं भिक्षोः सकाशमुपसंक्रम्य कथयति। आर्य प्रव्रजितुमिच्छामि। स तेन प्रव्रजित उपसंपादितः। तेऽपि चोराः प्रघातिताः। उक्तं भगवता आत्मविपत्तिं भिक्षवोऽभीक्ष्णं प्रत्यवेक्षध्वम्। तत् कस्य हेतोः। आत्मविपत्तिर्भिक्षवः संवेजनीयं स्थानं परविपत्तिः आत्मसम्पत्तिः परसम्पत्तिः संवेजनीयं स्थानमिति। यावदपरेण समयेन भिक्षवः श्मशानचारिकां चरन्ति। सोऽपि तैः सार्धं श्मशानचारिकां चरति। तेन ते चोरा दृष्टाः प्रघातिताः। साश्रुकण्ठो व्यवस्थितः। भिक्षवः कथयन्ति। आयुष्मन्तः ईदृशोऽप्ययं भद्राशयो नवप्रव्रजित इति। स मुक्तकेनैव कण्ठेन रोदितुमारब्धः। भिक्षुभिरुच्यते। आयुष्मन् कस्यार्थे त्वमेवमोराटिकां करोषीति। स कथयति। अयं मे पिता अयं [मे] भ्राता अयं मे पितृव्यः अयं मे मातुल इति। ते कथयन्ति। एभिरर्हन्तो जीविताद् व्यवरोपिता मा त्वयापि व्यवरोपिताः। स कथयति। व्यवरोपिताः। एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। अर्हद्घातकोऽयं भिक्षवः पुद्गलः। नाशयत यूयमर्हद्घातकं पुद्गलम्। अप्ररोहणधर्मा अर्हद्घातकः पुद्गलोऽस्मिन् धर्मविनये। तस्मात् तर्हि भिक्षवो यस्य कस्यचित् प्रव्रज्यापेक्ष उपसंक्रामति तेन प्रष्टव्यो मास्यर्हद्घातक इति। अपृष्ट्वा प्रव्राजयति उपसंपादयति सातिसारो भवति।

आयुष्मान् उपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति। येन भदन्त पूर्विकायां प्रव्रज्यायां तथागतस्य श्रावकसंघो भिन्नः सचेत् स आकाङ्क्षेत् स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं GM. 65 भिक्षुभावम्। प्रव्राजयितव्यो न प्रव्राजयितव्यः। न प्रव्राजयितव्य उपालिन्।

तस्मात्तर्हि यस्य कस्यचित् प्रव्रज्यापेक्ष उपसंक्रामति स तेन प्रष्टव्यो मासि संघभेदक इति । अपृष्ट्वा प्रव्राजयति सातिसारो भवति ।

आयुष्मानुपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति । येन भदन्त तथागतस्यान्तिके दुष्टचित्त-रुधिरमुत्पादितं स आकाङ्क्षेत् स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावम् । प्रव्राजयितव्यो न प्रव्राजयितव्यः । न प्रव्राजयितव्य उपालिन् । तस्मात् तर्हि यस्य कस्यचित् प्रव्रज्यापेक्ष उपसंक्रामति स तेन प्रष्टव्यो मासि तथागतस्यान्तिके दुष्टचित्त-रुधिरोत्पादक इति । अपृष्ट्वा प्रव्राजयति सातिसारो भवति ।

आयुष्मानुपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति । यो भदन्त पूर्विकायां प्रव्रज्यायां चतुर्णां पाराजिकानामापत्तिमापन्नः सचेत् स आकाङ्क्षेत् स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावम् । प्रव्राजयितव्यो न प्रव्राजयितव्यः । न प्रव्राजयितव्य उपालिन् । तस्मात् तर्हि यस्य कस्यचित् प्रव्रज्यापेक्ष उपसंक्रामति स तेन प्रष्टव्यो मासि चतुर्णां पाराजिकानामन्य-तमान्यतमामापत्तिमापन्न इति । अपृष्ट्वा प्रव्राजयति उपसंपादयति वा सातिसारो भवति ।

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म । सचेद् भिक्षवोऽदर्शनायोत्क्षिप्तकः पुद्गलो विभ्रान्तकः पुनरागत्य
GM. 66 ब्रूयात् प्रव्राजयन्तु मामायुष्मन्तो द्रक्ष्याम्यापत्तिमिति । प्रव्राजयितव्यः । प्रव्राजयित्वा ब्रूयादुपसंपादयन्तु मामायुष्मन्तो देशयिष्याम्यापत्तिमिति । उपसंपादयितव्यः । यद्युपसंपन्नो ब्रूयात् न पश्याम्यापत्तिमिति । सचेत् संघसामग्रीमारागयति पुनरप्यदर्शनायोत्क्षेप्तव्यः । नोचेदारागयिष्यत् सचेत् उपसंपन्नः सूपसंपन्नः । दुर्लभो हि पुद्गलस्य स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदः भिक्षुभावः । अथादर्शनायोत्क्षिप्तकः एवमप्रतिधर्मस्थायोत्क्षिप्तकः ।

उद्दानम्

हस्तच्छिन्नाः पादच्छिन्ना अङ्गुलीफणहस्तकाः ।
अनोष्ठकाश्च चित्राङ्गा अतिवृद्धातिबालकाः ।
एवंविधा हि पुरुषाः प्रतिक्षिप्ता महर्षिणा ॥२०॥
ये चान्ये बहवः प्रोक्ताः खञ्जस्त्रीवामनादयः ।
तेऽपि न प्रव्राजयितव्या इति समादिष्टं महर्षिणा ॥२१॥
प्रासादिकस्य प्रव्रज्या परिशुद्धस्योपसंपदा ।
आख्याता सत्यनाम्ना वै सम्बुद्धेन प्रजानता ॥२२॥

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । आचरितं षड्वर्गिकाणां यं प्रव्राजयन्ति उपसंपादयन्ति वा स तैः सार्धं तावत् संवसति यावत् न

जानीते दुष्ठुलसमुदाचारा एत इति। यदा तु संजानीते तदा प्रकृतिस्थभिक्षुभिः सार्धं प्रतिवसति नान्यत्र। शास्तुराज्ञया कालं दर्शनायोपसंक्रामति। ततस्ते संजल्पं कुर्वन्ति। GM. 67 नन्दोपनन्द एते कालपात्रिका जातापहारिणो यादृशा वयं प्रव्राजयामः। एतेऽपहरन्ति। इदानीं तादृशं प्रव्राजयामो यो न कालपात्रिकैरपह्रियत इति।

यावदपरेण समयेन उपनन्देन परिभ्रमता हस्तच्छिन्नकः पुरुषो दृष्टः। भद्रमुख किमर्थं न प्रव्रजसीति। स कथयति। आर्य कोऽयं हस्तविकलं प्रव्राजयतीति। उपनन्दः कथयति। भद्रमुख करुणाप्रभावितं भगवतः शासनम्। अहं ते प्रव्राजयामीति। स तेन प्रव्राजित उपसंपादितः। ततो द्वौ त्रीन् वा दिवसान् आसमुदाचारिकान् धर्मान् शिक्षयित्वाभिहितः। भद्रमुख न मृगो मृगं पुष्णाति। विस्तीर्णा श्रावस्ती। स्वो गोचरः पित्र्यो विषयः। पिण्डपातमटित्वा जीविकां कल्पयस्वेति। स कथयति। उपाध्याय कथं पिण्डपातमटामीति। स कथयति। एतावत्त्वं न परिज्ञायते। अहं ते कथयामीति। तेन तस्य रज्ज्वा निवासनं बद्धं कण्टकैश्चीवरं प्रावृतम्। वामे बाहौ पात्रयोणिका न्यस्ता दक्षिणे बाहौ खंखरको बद्धः। ततोऽसौ श्रावस्तीं गोचराय प्रसृतः। मातृग्राम उरसि प्रहारं दत्त्वा कथयति। आर्य किं ते प्रव्रजितस्य हस्तौ च्छिन्नाविति। स कथयति। आगारिकस्य मे च्छिन्नौ न प्रव्रजितस्य। केन प्रव्राजितः। स कथयति। उपाध्यायोपनन्देन। ताः कथयन्ति। तं दुण्ठुलसमुदाचारं मुक्त्वा कोऽन्यः एवंविधं प्रव्राजयिष्यति। एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत GM. 68 आरोचयन्ति। भगवान् संलक्षयति। यः कश्चिदादीनवो भिक्षवो हस्तच्छिन्नकं प्रव्राजयन्ति। भगवानाह। न भिक्षुणा हस्तच्छिन्नकः प्रव्राजयितव्यः उपसंपादयितव्यो वा। भिक्षुः हस्तच्छिन्नकं प्रव्राजयति उपसंपादयति सातिसारो भवति। यथा हस्तच्छिन्नका एवं पादच्छिन्नकाः अङ्गुली [च्छिन्नकाः] फणहस्तकाः अनोष्ठा लक्षणाहताः कशाहताश्चित्राङ्गा अतिवृद्धाश्च न प्रव्राजयितव्याः। अतिबालान् प्रव्राजयन्ति ते सांघिकं शयनासनमुच्चारप्रस्रावेण नाशयन्ति। भगवानाह। तेऽपि न प्रव्राजयितव्याः। खंजं प्रव्राजयन्ति। भगवानाह। न प्रव्राजयितव्यः। काण्डरिककाणकुणिकुब्जवामनगलगण्डजातमूकान्धबधिरपीठसर्पिश्लीपदान् प्रव्राजयन्ति। भगवानाह। एवंविधा अपि न प्रव्राजयितव्याः। प्रव्राजयन्ति सातिसारा भवन्ति। भिक्षवः स्त्रीच्छिन्नान् भारच्छिन्नान् मार्गच्छिन्नान् कन्दलीच्छिन्नकतालमुक्तकान् प्रव्राजयन्ति। भगवानाह। एवंविधा अपि न प्रव्राजयितव्याः। प्रव्राजयन्ति सातिसारा भवन्ति। भिक्षवः कुष्ठगण्डकिटिभकिलासदद्रूकण्डूरजतविचर्चिकाक्षयकासश्वासशोषापस्माराटक्करपाण्डुरोगगुल्मभगन्दराभिभूतान् प्रव्राजयन्ति। भगवानाह। एवंविधा अपि न प्रव्राजयितव्याः। प्रव्राजयन्ति सातिसारा भवन्ति।

॥ प्रव्रज्यावस्तु समाप्तम् ॥

पोषधवस्तु

GM. 71

पिण्डोद्दानम् ।

तीर्थिका कष्फिण आवासो भिक्षुपेयालपश्चिमम् ।

उद्दानम् ।

तीर्थिकाः पोषधमाहुः न पोषधः क्रियते ।

त्रिसंकेते न निषीदन्ति कुत्र पोषधमुद्दिशेत् ॥१॥

भगवान् राजगृहे विहरति वेलुवने कलन्दकनिवापे । तेन खलु समयेन राजगृहीयका उपासकाः दिवादिवम् एवोद्युक्ता अभूवन् भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रमितुं पर्युपासनायै । अथ राजगृहीयकानामुपासकानामेतद् अभवत् । अतिप्रातस्तावदस्माकं भगवन्तं दर्शनायोपसंक्रमितुं पर्युपासनायै । प्रतिसंलीनो भगवान् प्रतिसंलीनाश्च मनोभावनीयाश्च भिक्षवो यन्नु वयं येनान्यतीर्थिकपरिव्राजकानामारामस्तेनोपसंक्रमेम । अथ संबहुला राजगृहीयका उपासका येनान्यतीर्थिकपरिव्राजकानामारामस्तेनोपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्यान्यतीर्थिकपरिव्राजकैः सार्धं संमुखं संमोदनीं संरञ्जनीं विविधां कथां व्यतिसार्यैकान्ते निषण्णाः । अथान्यतमस्तीर्थ्यस्तीर्थ्यानिदमवोचत् । किन्नु भवतामेव निषद्या क्रिया पोषधश्च प्रज्ञायते आहोस्वित् श्रमणानामपि शाक्यपुत्रीयाणाम् । अथान्यतमस्तीर्थ्यस्तीर्थ्यान् इदमवोचत् । अस्माकमेव भवन्तो निषद्या क्रिया पोषधश्च प्रज्ञायते न त्वेव श्रमणानां शाक्यपुत्रीयाणाम् । अथ संबहुला राजगृहीयका उपासकाः संबहुलानामन्यतीर्थिकपरिव्राजकानां भाषितं
MG. 72 नाभिनन्दन्ति न प्रतिक्रोशन्ति । अनभिनन्द्याप्रतिक्रोश्य उत्थायासनेभ्यः प्रक्रान्ताः । ते येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्ताः । उपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णाः । एकान्तनिषण्णा राजगृहीयका उपासका यावानेषामभ्यु [पगम्य] संबहुलैरन्यतीर्थिकपरिव्राजकैः सार्धमन्तराकथासमुदाहारस्तत् सर्वं भगवतो विस्तरेणारोचयन्ति । एवं चाहुः । अहो वत भगवानस्माकम् अपि निषद्यां क्रियां पोषधं च प्रज्ञापयेद् अनुकम्पामुपादाय । अधिवासयति भगवान् संबहुलानां [राजगृहीयकानां] तूष्णींभावेन । अथ संबहुला राजगृहीयका उपासका भगवतस्तूष्णींभावेनाधिवासनां विदित्वा भगवतो भाषितमभिनन्द्यानुमोद्य भगवतोऽन्तिकात् प्रक्रान्ताः । तत्र भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयते स्म । तस्माद् अनुजानामि भिक्षुभिरद्याग्रेण निषद्या क्रिया पोषधश्च प्रतिजागर्तव्यः । उक्तं च भगवता । अद्याग्रेण भिक्षुभिर्निषद्या क्रिया पोषधश्च प्रति-

जागर्तव्य इति । ते न जानन्ति का निषद्या का क्रिया कः पोषध इति । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति ।

भगवानाह । निषद्या उच्यते योगः । एतद् यूयं भिक्षव इमम् एव कायम् ऊर्ध्वं पादतलाद् अधः केशमस्तकात् त्वक्पर्यन्तं यथा स्थितं यथा प्रणिहितं पूर्णं नानाप्रकारस्याशुचेः प्रत्यवेक्षध्वम् । सन्ति अस्मिन् काये केशा रोमाणि नखा दन्ता रजो मलं त्वङ्मांसम् अस्थि स्नायु सिरा वृक्का हृदयं प्लीहा क्लोमक अन्त्राण्यन्त्रगुणान्यामाशयः पक्वाशय औदर्यकं यकृत् पुरीषम् अश्रु स्वेदः खेटः शिङ्घाणको वसा लसिका मज्जा GM. 73 मेदः पित्तं श्लेष्मा पूयः शोणितं [मूत्रमिति भावयितव्यं प्रत्यवेक्षितव्यम्] इति ।

उक्तं भगवता योगो भावयितव्य इति । भिक्षवो गोचराय प्रसृता अपि योगं भावयन्ति । ते भ्रान्तेन हस्तिना सार्धं समागत्य [अश्वेन पदातिकेन सार्धं च समागत्य निपतन्ति । अश्राद्धा आर्यानदृष्ट्वा कथयन्ति किमेते कुर्वन्तीति । ते योगिनः] कथयन्ति । योगं भावयामः । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह न गोचराय प्रसृतेन योगो भावयितव्यः [ते द्वारकोष्ठके योगं भावयन्ति । अश्राद्धाः कथयन्ति । किमेते सुखशय्यायां कुर्वन्ति । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत] आरोचयन्ति । भगवानाह । न द्वारकोष्ठके योगो भावयितव्यः । ते प्रासादे भावयन्ति । स एव आदीनवो भवति । भगवानाह । न भिक्षुणा [प्रासादे योगो भावयितव्यः । ते लयने भावयन्ति । शब्देन योगिनश्चित्तस्य एकाग्रतां न लभन्ते । एतत् प्रकरणं भिक्षवो] भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । न लयने योगो भावयितव्यः । ते अरण्ये भावयन्ति । चौरधूर्तसिंहव्याघ्रद्वीपिनां गम्या भवन्ति । एतत् [प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । न अरण्ये योगो भावयितव्यः । ते ग्रामोपकण्ठे समा]गत्य भावयन्ति । अश्राद्धा अवस्कन्दयन्ति । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । स प्रदेशः शाखाभिर्वाटिकैर्वा वेष्टयितव्यः । [ते तं प्रदेशं शाखाभिर्वाटिकैर्वा वेष्टयन्ति । अश्राद्धा अवस्कन्दयन्ति] । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । [कन्थाभिर्वा परिखाभिर्वा वेष्टयितव्यः ।] स GM. 74 प्रदेशः कन्थाभिर्वा परिखाभिर्वा वेष्टितो भवति । अश्राद्धा अव[स्कन्दयन्ति । एतत् प्रकरणं भिक्षवो] भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । तस्मादनुजानामि प्रहाणशाला मापयितव्या ।

[ते न जानन्ति किंप्रमाणा प्रहाणशाला मापयितव्येति । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । द्वे प्रहाणशाले] । खुद्दलिका महन्तिका च ।

खुद्दलिका द्विलयनिका मध्ये सुरुङ्गा । महन्तिका दशलयनिका द्वादशलयनिका वा [मध्ये सुरुङ्गा] । भिक्षवो लयनं कृत्वा [शोधनमुखं न कुर्वन्ति । भगवानाह । शोधनमुखं कर्तव्यम् । भिक्षवः कवाटार्गलं न [निवेशयन्ति । भगवानाह । कवाटार्गलं निवेशयितव्यम् । दुःखं बध्यते] । भगवानाह । आयामपट्टको दातव्यः । शब्दं करोति । भगवानाह । अधस्तात् चर्मखण्डको दातव्यः । दुःखं बध्यते । भगवानाह । [सूचकमिन्द्रकीलं कवाटार्गलं च कर्तव्यम् । तमिस्रा भवति । भगवानाह । वाताय]-नो मोक्तव्यः । अधस्तात् मुञ्चति । चौरधूर्तसिंहव्याघ्राणां गम्या भवन्ति । भगवानाह । नाधस्तान्मोक्तव्यः । उपरिष्टान्मुञ्चति । स एवा[दीनवो भवति । ते उपरिष्टाद् द्वौ भागौ छोरयित्वा अधस्तान्मुञ्चति । भगवानाह । अधस्ताद् द्वौ भागौ छोर]यित्वा उपरिष्टात् तृतीयो भागो मोक्तव्यः । भिक्षवो बहिर्विस्तीर्णां [[वृक्षवाटिकां कुर्वन्ति । वायस-चातक-पारावताः प्रविशन्ति] । भगवानाह । जालवातायनं कर्तव्यम् ।
GM. 75 त्र्यम्बुकत्रैलाटाः प्रविशन्ति । भगवानाह । कवाटिका दातव्या । वातेनोद्घाट्यते । [भगवानाह । अर्गलं निवेशयितव्यम् । दुःखं बध्यते । भगवानाह । सूचकम् इन्द्रकीलं निवेशयितव्यम् । तथापि दुःखं बध्यते । भगवानाह । शुष्ककाष्ठेन अर्गलं कवाटम् इन्द्रकीलं च कर्तव्यम् । तथापि दुःखं बध्यते ।] अजपादकदण्डकैरुद्घाटयितव्यम् ।

तत्रासनेन कार्यम् । भगवानाह । मृन्मयान्यासनानि कर्तव्यानि । खक्खटा भवन्ति । भगवानाह । [मञ्चः कर्तव्यः । ते न जानते कीदृशो मञ्चः । भगवानाह । एकहस्तप्रमाणश्चक्राकारः । तत्र तन्तुकन्थ]का कर्तव्या । ततः पश्चादानन्दा दातव्या । ते न जानते कति वाणा इति । भगवानाह । पञ्च वाणाः । मुञ्जशाणवल्वजकौशेय-[वंशजाः । तथापि खक्खटा भवन्ति । तूलिका संस्तरितव्या । ते न जानते] कीदृशी तूलिकेति । भगवानाह । दीर्घं चत्वारो हस्ताः तिर्यग् द्वे । द्विपुटां कृत्वा सेवयितव्या । ततः पश्चात्तूलिकेन पूरयितव्या । [ते न जानते कति तूलिकवृक्षा इति । भगवानाह । पञ्च तूलिकवृक्षाः । अर्ककशिकैर्कवंशशाल्मलयः] । अपराण्यपि पञ्चरूपाणि । ऊर्णा शणः कार्पासः कौशेयकानि पर्णकानि । पूरिता भवन्ति [इति] । सर्वं तत् तूलमेकं प्रदेशं गच्छति । भगवानाह । [सूत्रेण सेवयितव्यम् । समतलं
GM. 76 कर्तव्यम् । ते न जानते कथं सेवयितव्यमिति । [भगवानाह] । सूत्रकैर्बद्ध्वा कर्णे परिबध्य धारयितव्या । तथापि प्रचालयति । भगवानाह । यष्टिर्धारयितव्या । भिक्षवस्तां कलमच्छेद्यां कुर्वन्ति । व्रणं करोति । भगवानाह । [द्रोणप्रमाणं छित्वा

कर्तव्यम् । तथापि व्रणं करोति । भगवानाह । कौशेयवस्त्रेण वेष्टयितव्या । ततो धार]यितव्या । तथापि प्रचालयति । भगवानाह । कुन्दसकः क्षेप्तव्यः । भिक्षवोऽन्धकारे क्षिपन्ति । स प्रचालयति । भगवानाह । सूत्रकैर्बद्ध्वा क्षेप्तव्यः । [ततो बहिः समं कर्तव्यम् ।] तथापि प्रचालयति । [भगवानाह । सम्मुखे प्रदीपः स्थापयितव्यः । तथापि प्रचालयति । भगवानाह । एकः पादोऽव]तारयितव्यः । तथापि प्रचालयति । भगवानाह । द्वितीयः पादोऽवतारयितव्यः । तथापि प्रचालयति । भगवानाह । उत्थाय चंक्रमि[तव्यम्] । भिक्षवश्चंक्रममाणाः संशयमापन्नाः । भगवानाह । अर्गलं धारयितव्यम् । [हस्तेन धारयन्ति । भगवानाह । अव]क्रमितव्यम् । सोपानत्काश्चंक्रमन्ते । शब्दं कुर्वन्ति । भगवानाह । न सोपानत्केन चंक्रमितव्यम् । पांसुना पादौ नाश्येते । भगवानाह । कम्बलं दातव्यम् ।

भगवानाह । प्रहाणिकानां [भिक्षूणामासमुदाचारिकान् धर्मान् प्रज्ञपयिष्यामि । प्रहा]णिकेन भिक्षुणा तृतीते तृतीये दिवसे पादौ प्रक्षालयितव्यौ । प्रहाणिको भिक्षुर्यथाप्रज्ञप्तानासमुदाचारिकान् धर्मान् न समादाय वर्तते सातिसारो भवति ।

ते तत्र न यापयन्ति । भगवानाह । उपरिष्टाद् द्वितीयः पूरः कर्तव्यः । न GM. 77 आरोहति । भगवानाह । सोपानं कर्तव्यम् । प्रपतितं भवति । भगवानाह । वेदिका परिक्षेप्तव्या । तत् कंपते । भगवानाह । लोहकण्टकेन क्षेपयितव्या ।

तथापि न यापयन्ति । भगवानाह । बहिर्वलयेन च पंक्तिः कर्तव्या । तेऽपि बद्धानि द्वाराणि कुर्वन्ति । ते परस्परमवभासयन्ति । भगवानाह । द्वार [संयोगः कर्तव्यः] । द्वारकोष्ठकानि वा गह्वराणि कर्तव्यानि । ते तत्र प्रचालयन्ति । भगवानाह । द्वारस्थूलपटिकां वा पटकं वा लम्बयित्वा शयितव्यम् । नात्र कौकृत्यं करणीयम् । ते ततो गता भवन्ति । न पुनरागच्छन्ति ।

भगवानाह । प्रहाणप्रतिजाग्रको भिक्षुः [संमन्तव्यः । पञ्चभिर्धर्मैः समन्वागतः प्रहाणप्रति]जाग्रको भिक्षुरसंमतो न संमन्तव्यः । संमतश्चावकासयितव्यः । कतमैः पञ्चभिः । न च्छन्दाद्गच्छति न द्वेषान्न मोहान्न भयाद्गच्छति । जागृतां जागृतां प्रहाणं न जानाति । एभिः पंचभिर्धर्मैः समन्वागतः प्रहाणप्र[तिजाग्रको भिक्षुः] संमतश्चावकासयितव्यः । पंचभिर्धर्मैः समन्वागतः प्रहाणप्रतिजाग्रको भिक्षुरसंमतः संमन्तव्यः । संमतश्च नावकासयितव्यः । कतमैः पंचभिः । न च्छन्दाद्गच्छति । न द्वेषान्न मोहान्न GM. 78 भयाद्गच्छति । प्रतिजाग्रका[णां कृतमकृतं जानाति । पंचभिर्धर्मैः समन्वागतः प्रहाणप्रतिजाग्रको भिक्षुः संमतश्च नावकासयितव्यः । एवं च पुनः संमन्तव्यः ।

शयानासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षुं समनुयुज्य सर्वसंघे सन्निषण्णे [एकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।] उत्सहसे त्वमेवंनामा संघस्य प्रहाणं प्रतिजागर्तुम् । तेन वक्तव्यम् । उत्सहे । ततः पश्चादेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अयमेवंनामा प्रहाणप्रतिजाग्रको भिक्षुः उत्सहते संघस्य प्रहा[णं प्रतिजागर्तुं] यत् संघ एवंनामानं प्रहाणप्रतिजाग्रकं संमन्यते । एवंनामा प्रहाणप्रतिजाग्रको भिक्षुः संघस्य प्रहाणं प्रतिजागरिष्यतीत्येषा ज्ञप्तिः । एवं च कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । [अयमेवंनामा प्रहाणप्रतिजाग्रको भिक्षुरुत्सहते] प्रहाणं प्रतिजागर्तुम् । तत्संघ एवंनामानं प्रतिजागर्तुम् एवंनामानं प्रहाणप्रतिजाग्रकं भिक्षुं संमन्येत । अयमेवंनामा प्रहाणप्रतिजाग्रको भिक्षुः संघस्य प्रहाणं प्रतिजागरिष्यति यदायुष्मतां क्षमते एवंनामानं प्रहाणप्रति [जाग्रको] भिक्षुः संघस्य प्रहाणं प्रतिजागरिष्यति स तूष्णीम् । न क्षमते भाषताम् । संमतः संघेन एवंनामा प्रहाणप्रतिजाग्रको भिक्षुः । अयमेवंनामा प्रहाणप्रतिजाग्रको भिक्षुः संघस्य प्रहाणं प्रतिजागरिष्यति ।

GM. 79 [भिक्षवः] प्रहाणप्रतिजाग्रकस्याहं भिक्षोरासमुदाचारिकान् धर्मान् प्रज्ञपयिष्यामि । प्रहाणप्रतिजाग्रकेण भिक्षुणा प्रहाणशाला सेक्तव्या संमार्जयितव्या सुकुमारी गोमयकार्षी अनुप्रदातव्या । वर्चकुटी प्रस्रावकुटी च [सेक्तव्या संमार्जयितव्या सुकुमारी गोमय-] कार्षी अनुप्रदातव्या । पत्रवैतुङ्गका स्थापयितव्या । मृत्तिकापानीयं स्थापयितव्यम् ।

स तेषामेकैकं गत्वा शब्दापयति । भगवानाह । नैककः शब्दापयितव्यः । गण्डी आकोटयितव्या । तेन विस्तरेण गण्डी दत्ता [यावत् तन्नागरिकः समा]-गतः । आर्याः किं चौरः पतितः । ते कथयन्ति । भवन्तो न चौरः पतितः । अपि तु प्रहाणं प्रतिजाग्रति । ते कथयन्ति । आर्या विहेठं प्रतिजागृथ कुतोऽत्र प्रहाणम् । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । [भगवानाह । गण्डी विस्तरेण न दातव्या ।

तत्र पंच] गण्डी । सार्वसंघिका कर्मगण्डी अन्तगण्डी प्रहाणगण्डी आपद्गण्डी च । तत्र सार्वसंघिकामभिद्रोग्धुं त्रिस्त्रिः प्रहारं कर्मगण्डी[म]भिद्रोग्धुं [सकृत्]-त्रिः प्रहारम् अन्तगण्डीं मूषिकां प्रहाणगण्डीं ख[रता]लाम् [आपद्गण्डीं यथासुखं कुर्वन्ति ।

ततो यवागूं] यथासुखं कुर्वन्ति । भगवानाह । [यवागूर्यथासुखं न कर्तव्या ।] GM. 80 कालं ज्ञात्वा यथासुखं कर्तव्या । ये संघलाभिनस्ते गत्वा संघे अवतरिष्यन्ति । ये पिण्डपातिकास्ते हस्तपादौ प्रक्षाल्य ग्रामं पिण्डाय प्रवेक्ष्यन्ति । त एवमेव यथासुखं कुर्वन्ति । [भगवानाह । तैर्यथासुखं न कर्तव्यम्] ।

त्रिदण्डकं भाषयितव्यः । अतिमहान्तं भाषन्ते । भगवानाह । नातिमहान्तं भाषयितव्यः । ते स्वल्पं भाषन्ते । भगवानाह । नात्यल्पं भाषयितव्यम् । अपितु परिमण्डलैर्भाषयितव्यम् ।

दक्षिणां नादिशन्ति । भगवानाह । [दक्षि]णादेष्टव्येति । ते न जानते केनादेष्टव्येति । भगवानाह । संघस्थविरेण भिक्षुणा आदेष्टव्येति । ते महतीं दक्षिणामादिशन्ति । भगवानाह । न महती दक्षिणा आदेष्टव्या । अत्यल्पमादिशन्ति । भगवानाह । त्रिपरिमण्डलदक्षिणा आदेष्टव्येति ।

प्रहाणप्रतिजाग्रको भिक्षुः सर्वपृष्ठत आगच्छति सर्वाग्रतो गच्छति । भगवानाह । प्रहाणप्रतिजाग्रकेण भिक्षुणा सर्वपृष्ठतो गन्तव्यं सर्वाग्रत आगन्तव्यं सचे[न्न भवति तदा] पावरणीं गोपयित्वा वक्तव्यम् । आयुष्मानमुष्मिन् प्रदेशे मया अपावरणी गोपिता उद्घाट्य प्रवेक्ष्यसे । प्रहाणप्रतिजाग्रको भिक्षुर्यथा प्रज्ञप्तानासमुदाचारिकान् धर्मान् असमादाय वर्तते सातिसारो भवति । इयमेव [ज्ञ]प्तिद्वितीयं ज्ञप्तिचतुर्थं कर्म । इयमुच्यते क्रिया ।

पोषधः कतमः । यो वो मया भिक्षवः प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशः उद्देष्टव्यः । अद्याग्र GM. 8 [मर्धा]न्तरमासमुद्देष्टव्यः । उक्तं भगवता अन्तरमासं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । भगवानाह । संघस्थविरेणार्धा[न्तर]मासंप्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्य इति । उक्तं भगवता संघस्थविरेणार्धा[न्तर]मासं प्रातिमोक्षसूत्रेद्देश उद्देष्टव्य इति । भिक्षवस्तस्य लयनं गच्छन्ति । ते तत्र न यापयन्ति । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । न लयने उद्देष्टव्यम् । ते प्रासादे उद्दिशन्ति । तत्रापि न यापयन्ति । भगवानाह । संघस्य पोषधामुखं संमन्तव्यम् । उक्तं भगवता संघस्य पोषधामुखं संमन्तव्यमिति । ते न जानते कुत्र संमन्तव्यमिति । भगवानाह । यद्वास्तु सर्वाकारपरिनिष्ठितमन्तःसीमं बहिर्व्यामोपचारं संघस्य पोषधामुखमभिभवितं तत् संघे- [न] संमन्तव्यम् । एवं च पुनः संमन्तव्यम् । शयनासन[प्र]ज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून् समनुयुज्य सर्वसंघे सन्निषण्णे सन्निपतिते एकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । इदं वास्तु सर्वाकारपरिनिष्ठितमन्तःसीमं बहिर्व्यामोपचारं संघस्य पोषधामुखमभिभवितम् । सचेत् संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात्संघो यत्संघ इदं वास्तु सर्वाकारपरिनिष्ठितमन्तःसीमं बहिर्व्यामोपचारं संघस्य पोषधामुखं संमन्येत । एषा ज्ञप्तिः । एवं च कर्म कर्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः । इदं वास्तु सर्वाकारपरिनिष्ठितमन्तःसीमं बहिर्व्यामोपचारं GM. 82 संघस्य पोषधामुखमभिभवितं तत् संघ एवं वास्तु सर्वाकारपरिनिष्ठितमन्तःसीमं बहिर्व्यामोपचारं संघस्य पोषधामुखं संमन्यते । यथा चायुष्मतां क्षमते इदं वास्तु सर्वाकारपरिनिष्ठितमन्तःसीमं बहिर्व्यामोपचारं संघस्य पोषधामुखं संमन्तुं स तूष्णीम् । न क्षमते भाषताम् । संमतं संघेन इदं वास्तु सर्वाकारपरिनिष्ठितमन्तःसीमं बहिर्व्यामोपचारं संघस्य पोषधामुखं क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात् तूष्णीम् एवमेतद् धारयामि । यत्र संघेन पोषधामुखं संमतं भवति तत्र भिक्षुभिर्निषद्य पोषधः कर्तव्यः प्रवारणा ज्ञप्तिः । ज्ञप्तिद्वितीयं ज्ञप्तिचतुर्थं कर्म कर्तव्यम् । व्यग्राः कुर्वन्ति सातिसारा भवन्ति ।

उद्दानम्

कप्फिणेन कृता सीमा चीवरं तत्र सम्मतम् ।
अबद्धसीम आवासे अभिनिर्हारमुखेन च ।
अकर्म च प्रातिमोक्षेषु मुखां पंच समुद्दितम् ॥२॥

राजगृहनिदानम् । तेन खलु समयेनायुष्मान् ब्राह्मणकप्फिणो राजगृहे विहरति सेनिकगुहायामेकपोषधावाससंवास[सं]वृत्त्या संघस्य । अथ संबहुला भिक्षवः तदेव पोषधे पंचदश्यां पोषधामुखे सन्निषण्णाः सन्निपतिताः यत्तु यदा आयु[ष्मन्तं] सीमान्तं ब्राह्मणकप्फिणमागमयमानाः । अथ आयुष्मतो ब्राह्मणकप्फिणस्यैतदभवत् । अद्य संघस्य पोषधपंचदशिका ममापि कप्फिणस्य भिक्षोः पोषधपंचदशिका किन्नु गच्छेयं संघस्य [पोषधा] मुखम् आहोस्वित् न गच्छेयं संघस्य पोषधामुखम् । किं नु GM. 83 प्रत्यनुभवेयं संघेन सार्धं पोषधामुखमाहोस्विन्न प्रत्यनुभवेयम् । [किं नु] संघस्य संघकृत्येषु संघ[क]रणीयेषु [गच्छेयम्] आहोस्विन्न गच्छेयम् । किं नु प्रत्यनुभवेयं संघेन सार्धं संघकृत्यानि संघकरणीयान्याहोस्वित् न प्रत्यनुभवेयम् । उक्तं च भगवता

शुद्धस्य हि सदा फल्गु सदा शुद्धस्य पोषधः ।
शुचिकर्मणो हि शुद्धस्य तस्य सम्पद्यते व्रतम् ॥३॥ इति ।

शुद्धोऽहमस्मि परमया शुद्ध्या समन्वागतः ।

अथ भगवान् ब्राह्मणकप्फिणस्यं चेतसा चित्तमाज्ञाय वेणुवनेऽन्तर्हितः सेनिकगुहायां प्रत्यष्ठात् आयुष्मतो ब्राह्मणकप्फिणस्य पुरतः। एवं चाह। ननु ते कप्फिण एकाकिनो रहोगतस्य प्रतिसंलीनस्यैवं चेतसि चेतःपरिवितर्क उदपादि। अद्य संघस्य पोषधपंचदशिका ममापि कप्फिणस्य भिक्षोः पोषधपंचदशिका पूर्ववत् यावत् तस्य सम्पद्यते व्रतमिति। शुद्धोऽहमस्मि परमया शुद्धया समन्वागत इति। एवं भदन्तः। त्वं तावत् कप्फिण न गमिष्यसि संघस्य पोषधामुखं कोऽन्यो गमिष्यति। त्वं न प्रत्यनुभविष्यसि संघेन सार्धं पोषधं कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति। त्वं न गमिष्यसि संघस्य संघकृत्येषु संघकरणीयेषु कोऽन्यो गमिष्यति। त्वं न प्रत्यनुभविष्यसि संघेन सार्धं संघकृत्यानि संघकरणीयानि कोऽन्यः प्रत्यनुभविष्यति। गच्छ त्वं कप्फिण संघस्य पोषधामुखं मा न गच्छ। प्रत्यनुभव त्वं संघेन सार्धं पोषधं मा न प्रत्यनुभव। गच्छ त्वं कप्फिण संघस्य संघकृत्येषु संघकरणीयेषु मा न गच्छ। प्रत्यनुभव त्वं संघेन सार्धं संघकृत्यानि संघकरणीयानि मा न प्रत्यनुभव।

अथ भगवानायुष्मन्तं ब्राह्मणकप्फिणमादाय येन पोषधामुखं तेनोपसंक्रान्तः। GM. 84
उपसंक्रम्य पुरस्ताद् भिक्षुसंघस्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः। निषद्य च भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयते स्म। तस्मात्तर्हि भिक्षवः अनुजानामि। भिक्षुभिरेकपोषधावाससंवृत्त्या महती सीमा बद्धव्या। उक्तं भगवता एकपोषधावाससंवृत्त्या महती सीमा बद्धव्या इति। भिक्षवो न जानते कथं बद्धव्येति।

भगवानाह। पूर्वं तावदावासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिर्महत्याः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावरनिमित्तानि संलक्षयितव्यानि। पूर्वस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा। दक्षिणस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा। ततः पश्चात् शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून् समनुयुज्य सर्वसंघे सन्निषण्णे सन्निपतिते आवासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिर्महत्याः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि परिकीर्तयितव्यानि। पूर्वस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा। दक्षिणस्यां दिशि पश्चिमायामुत्तरस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा। ततः पश्चादेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम्।

शृणोतु भदन्तः संघः। अस्मिन् आवासे आवासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिर्महत्याः GM. 85
सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि परिकीर्तितानि। पूर्वस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं

वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा । दक्षिणस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यां दिशि [कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा] सचेत् संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात् संघो यत् संघः एषां निमित्तानामवर्गिकपोषधावाससंवृत्त्या महतीं सीमां बध्नीयात् यावच्चारण्यं यावच्च शयनासनं स्थापयित्वा ग्रामं च ग्रामोपचारं च । एषा ज्ञप्तिः । एवं च कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अस्मिन् आवासे आवासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिर्महत्याः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि परिकीर्तितानि । पूर्वस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्रकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं [वा] । दक्षिणस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा । तत् संघस्तथा [निमित्तानाम]वर्गिकपोषधावाससंवृत्त्या महतीं सीमां बध्नाति यावच्चारण्यं यावच्च शयनासनं स्थापयित्वा ग्रामं च ग्रामोपचारं च । एषामायुष्मतां क्षमते एषां निमित्तानामवर्गिकपोषधावाससंवृत्त्या संघस्य महतीं सीमां बद्धुं यावच्चारण्यं यावच्च शयनासनं स्थापयित्वा ग्रामं च ग्रामोपचारं च स तूष्णीम् । न क्षमते भाषताम् ।

GM. 86 बद्धा संघेन एषां निमित्तानामवर्गिकपोषधावाससंवृत्त्या संघस्य महतीं सीमां यावच्चारण्यं यावच्च शयनासनं स्थापयित्वा ग्रामं च ग्रामोपचारं च । क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात् तूष्णीमेवमेतद् धारयामि । यत्र संघेन महती सीमा बद्धा भवति तत्र भिक्षुभिर्निषद्य पोषधः कर्तव्यः प्रवारणाच । ज्ञप्तिद्वितीयं ज्ञप्तिचतुर्थं कर्म कर्तव्यम् । व्यग्राः कुर्वन्ति सातिसारा भवन्ति ।

भिक्षवस्त्रिचीवरं गृहीत्वा दिवाविहारं गच्छन्ति । खेदमापद्यन्ते । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । महत्याः सीमाया अर्वाक् सर्वेषां भिक्षूणां चीवरकाणामविप्रवाससंवृत्तिर्दातव्या । एवं च पुनर्दातव्या । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून् समनुयुज्य सर्वसंघे सन्निपण्णे सन्निपतिते एकेन हि भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः संघः । अस्मिन् आवासे समग्रेण संघेन एकपोषधावाससंवास-संवृत्त्या संघस्य महती सीमा बद्धा । सचेत् संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात् संघो यत्संघो महत्याः सीमाया अर्वाक् सर्वेषां भिक्षूणां चीवरकाणामविप्रवाससंवृत्तिं दद्यात् । इत्येषा ज्ञप्तिः । एवं कर्म कर्तव्यम् ।

श्रृणोतु भदन्तः संघः। अस्मिन् आवासे समग्रेण संघेनैकपोषधावाससंवाससंवृत्त्या संघस्य महती सीमा बद्धा। तत् संघो महत्या सीमया सर्वेषां भिक्षूणां चीवरकाणामविप्रवाससंवृत्तिं ददाति। एषामायुष्मतां क्षमन्ते महत्या सीमया सर्वेषां भिक्षूणां चीवरकाणामविप्रवाससंवृत्तिं दातुं ते तूष्णीम्। न क्षमन्ते भाषन्ताम्।

संघेन महत्या सीमया सर्वेषां भिक्षूणां चीवरकाणामविप्रवाससंवृत्तिं क्षान्तमनुज्ञातं GM. 87 संघेन यस्मात् तूष्णीमेवमेतद् धारयामि। यत्र संघेन महत्याः सीमाया अर्वाक् भिक्षूणां चीवरकाणामविप्रवाससंवृत्तिर्दत्ता भवति भिक्षूणां सान्तरोत्तरेण गन्तव्यम्। नात्र कौकृत्यं करणीयम्।

भिक्षूणां चतुर्वर्गकरणीयानि कर्माणि भवन्ति। पञ्चवर्गकरणीयानि दशवर्गकरणीयानि कर्माणि भवन्ति। ते सर्वसङ्घं सन्निदाहयन्ति। भिक्षूणां कुशलपक्षपरिहानिर्भवति। एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। खुद्दलिका सीमा बद्धव्या। संमन्तव्यं मण्डलकम्। एवं च पुनर्बद्धव्या। पूर्वं तावत् महती सीमा मोक्तव्या। एवं च पुनर्मोक्तव्या। शयनासन[प्र]ज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून् समनुयुज्य सर्वसंघे सन्निषण्णे सन्निपतिते एकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम्।

श्रृणोतु भदन्तः संघः। यावदेवास्मिन् आवासे समग्रेण संघेन एकपोषधावाससंवाससंवृत्त्या महती सीमा बद्धा स चेत् संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात् संघो यत्संघो महतीं सीमां मुंचेत। एषा ज्ञप्तिः। एवं च कर्म कर्तव्यम्।

श्रृणोतु भदन्तः संघः। यावदेवास्मिन्नावासे समग्रेण सङ्घेन एकपोषधावाससंवाससंवृत्त्या महती सीमा बद्धा तत् सङ्घो महतीं सीमां मुंचति। एषां चायुष्मतां GM. 88 क्षमन्ते महतीं सीमां मोक्तुं ते तूष्णीम्। न क्षमन्ते भाषन्ताम्। इयं प्रथमा कर्मवाचना द्वितीया तृतीया कर्मवाचना। मुक्ता संघेन महती सीमा। क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात् तूष्णीमेवमेतद् धारयामि।

ततः पश्चात् आवासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिः खुद्दलिकायाः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि संलक्षयितव्यानि। पूर्वस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा मार्गिकं वा कथयितव्यं शिला वा उच्छ्रापयितव्या कीलको निखन्तव्यः। दक्षिणस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा मार्गिकं वा कथयितव्यं शिला [वा] उच्छ्रापयितव्या निमित्तं वा कीलको वा निखन्तव्यः।

ततः पश्चात् शयनासन [प्र]ज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून् समनुयुज्य सर्वसङ्घे सन्निषण्णे सन्निपतिते आवासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिः खुद्दलिकायाः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि परिकीर्तयितव्यानि पूर्वस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा [वृक्षनिमित्तं वा] शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा मार्गिकं वा कथितं शिला वा उच्छ्रापिता कीलका निखाताः । दक्षिणस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा मार्गिकं वा कथितं शिला वा उच्छ्रापिता कीलका निखाताः । ततः पश्चादेकेन भिक्षुणा ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम् ।

GM. 89 शृणोतु भदन्तः सङ्घः । यावदेवास्मिन् आवासे आवासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिः खुद्दलिका[याः]सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि परिकीर्तितानि । पूर्वस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा मार्गिकं वा कथितं शिला वा उच्छ्रापिता कीलका वा निखाताः । सचेत् संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात् सङ्घो यत् सङ्घः एषामर्वाक् खुद्दलिकां सीमां बध्नीयात् संमन्येत मण्डलकम् । एषा ज्ञप्तिः । एवं च कर्म कर्तव्यम् ।

शृणोतु भदन्तः सङ्घः । यावदेवास्मिन् आवासे आवासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिः खुद्दलिकायाः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि परिकीर्तितानि । पूर्वस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा मार्गिकं वा कथितं शिला वा उच्छ्रापिता [कीलका वा निखाताः ।] तत् सङ्घ एषामर्वाक् खुद्दलिकां सीमां बध्नाति संमन्यते मण्डलकम् । येषामायुष्मतां क्षमते एषामर्वाक् खुद्दलिकां सीमां बद्धुं स तूष्णीम् । न क्षमते भाषताम् । बद्धा संघेन एषां निमित्तानामर्वाक् खुद्दलिका सीमा संमतं मण्डलकम् । क्षान्तमनुज्ञातं सङ्घेन यस्मात् तूष्णीमेवमेतद् धारयामि ।

ततः पश्चान्महती सीमा बद्धव्या । एवं च पुनर्बद्धव्या । पूर्वं तावन्महत्याः सीमाया आवासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि संलक्षयितव्यानि पूर्ववद् विस्तरेण वाच्यम् ।

GM. 90 ततः पश्चान्महत्याः सीमाया अर्वाग् भिक्षूणां चीवरकाणामविप्रवाससंवृत्तिर्दातव्या । एवं च पुनर्दातव्या शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा पूर्ववद् विस्तरेण ।

आयुष्मान् उपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति । अबद्धसीमे भदन्तावासे का सीमा ।

कुड्यान्तरमुपालिन् सामन्तकेन। ये कुड्यस्याभ्यन्तरे भिक्षवः प्रतिवसन्ति तैरेकध्ये निषद्य पोषधः कर्तव्यः प्रवारणा च। ज्ञप्तिद्वितीयं ज्ञप्तिचतुर्थं कर्म कर्तव्यम्। व्यग्राः कुर्वन्ति सातिसारा भवन्ति।

आयुष्मानुपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति। अग्रामके भदन्त अरण्यायतने का सीमा। क्रोशमुपालिन् सामन्तकेन। ये क्रोशस्याभ्यन्तरे भिक्षवः प्रतिवसन्ति सर्वैस्तैरेकध्ये निषद्य पोषधः प्रवारणा विस्तरेण। व्यग्राः कुर्वन्ति सातिसारा भवन्ति।

आयुष्मानुपाली बुद्धं भगवन्तं पृ[च्छ]ति। लभ्यं भदन्त एकया ज्ञप्त्या एकेन कर्मकारकेण एकया कर्मवाचनया सान्तर्बहिर्मुखीं सीमामभिहर्तुं वाभिनिहर्तुं वा। लभ्यमुपालिन्। तत्रायमभिसंहारसंकोचः। तत्रायमभिनिर्हारविस्तरः। एवं च पुनः कर्तव्यम्। पूर्वं तावन्महती सीमा मोक्तव्या [ततः] खुद्दलिका सीमा। प्रतिप्रस्रंभितव्यं मण्डलकम्। एवं च पुनर्मोक्तव्या। शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य GM. 91 पृष्टवाचिकया भिक्षून् समनुयुज्य सर्वसङ्घे सन्निषण्णे सन्निपतिते उभयतः सीमायाः सङ्घं स्थापयित्वा कर्मकारकेण भिक्षुणा तत्र सीमे काष्ठेन वा दण्डेन वा कीलकेन वा किलिञ्जेन वावस्थाप्य ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम्।

शृणोतु भदन्तः सङ्घः। यावदेवास्मिन् आवासे समग्रेण संघेन एकपोषधावाससंवाससंवृत्त्या महती सीमा बद्धा खुद्दलिका सीमा बद्धा संमतं मण्डलकम्। सचेत् संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात् सङ्घो यत् सङ्घो महतीं सीमां मुंचीत खुद्दलिकां सीमां मुंचीत प्रतिप्रस्रंभेत मण्डलकम्। एषा ज्ञप्तिः। एवं च कर्म कर्तव्यम्।

शृणोतु भदन्तः सङ्घः। यावदेवास्मिन्नावासे समग्रेण सङ्घेन एकपोषधावाससंवाससंवृत्त्या महती सीमा बद्धा खुद्दलिका सीमा बद्धा संमतं मण्डलकम्। तत् सङ्घो महतीं सीमां मुंचति खुद्दलिकां सीमां मुंचति प्रतिप्रस्रंभति मण्डलकम्। येषामायुष्मतां क्षमते महतीं सीमां मोक्तुं [खुद्दलिकां सीमां मोक्तुं] प्रतिप्रस्रब्धुं मण्डलकं स तूष्णीम्। न क्षमते भाषताम्। इयं प्रथमा कर्मवाचना द्वितीया तृतीया कर्मवाचना। मुक्ता सङ्घेन महती सीमा मुक्ता खुद्दलिका सीमा प्रतिप्रस्रब्धं मण्डलकम्। क्षान्तमनुज्ञातं सङ्घेन यस्मात् तूष्णीमेवमेतद् धारयामि।

ततः पश्चादावासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिः खुद्दलिकायाः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि GM. 92 निमित्तानि संलक्षयितव्यानि। पूर्वस्यां दिशि कुड्यनिमित्तं वा वृक्षनिमित्तं वा शैलनिमित्तं वा प्राकारनिमित्तं वा प्राग्भारनिमित्तं वा मार्गिकं वा कथयितव्यं शिला वा उच्छ्रा-

पयितव्या कीलका वा निखन्तव्याः। यथा पूवस्यां दिश्येवं दक्षिणस्यां पश्चिमायामुत्तरस्यां दिशि।

ततः पश्चात् शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा गण्डीमाकोट्य पृष्टवाचिकया भिक्षून् समनुयुज्य सर्वसङ्घे सन्निषण्णे सन्निपतिते आवासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिः खुद्दलिकायाः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावरनिमित्तानि परिकीर्तयितव्यानि पूर्ववद् यावत् कीलका निखाताः। महत्याः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि परिकीर्त्तयितव्यानि पूर्ववद् यावत् प्राग्भारनिमित्तं वा। ततः पश्चात् उभयतः सीमायां सङ्घं स्थापयित्वा कर्मकारकेण भिक्षुणा तत्र सीमे काष्ठेन वा दण्डेन वा कीलकेन वा किलिञ्जेन वा अवस्थाप्य ज्ञप्तिं कृत्वा कर्म कर्तव्यम्।

शृणोतु भदन्तः संघः। यावदेवास्मिन्नावासे आवासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिः खुद्दलिकायाः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावरनिमित्तानि परिकीर्तितानि पूर्ववद् यावत् कीलका निखाताः। GM. 93 महत्याः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि परिकीर्तितानि पूर्ववद् यावत् प्राग्भारनिमित्तं वा। सचेत् संघस्य प्राप्तकालं क्षमेतानुजानीयात् संघो यत् संघः एषामर्वाक् खुद्दलिकां सीमां बध्नीयात् संमन्येत मण्डलकम्। तेषामाघटनानामर्वाक् एकपोषधावाससंवाससंवृत्त्या महतीं सीमां बध्नीयात् यावच्चारण्यं यावच्च शयनासनं स्थापयित्वा ग्रामं च ग्रामोपचारं च। एषा ज्ञप्तिः। एवं कर्म कर्तव्यम्।

शृणोतु भदन्तः संघः। यावदेवास्मिन्नावासे आवासिकनैवासिकैर्भिक्षुभिः खुद्दलिकायाः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि परिकीर्तितानि पूर्ववद् यावत् कीलका निखाताः। महत्याः सीमायाश्चतुर्दिशं स्थावराणि निमित्तानि परिकीर्तितानि पूर्ववद् यावत् प्राग्भारनिमित्तं वा। तत् संघः एषामाघटनानामर्वाक् खुद्दलिकां सीमां बध्नाति संमन्यते मण्डलकम्। तेषामाघटनानामर्वाक् एकपोषधावाससंवाससंवृत्त्या महतीं सीमां बध्नाति यावच्चारण्यं यावच्च शयनासनं स्थापयित्वा ग्रामं च ग्रामोपचारं च। येषामायुष्मतां क्षमते एषामाघटनानामर्वाक् खुद्दलिकां सीमां बद्धुं संमन्तुं मण्डलकं तेषामाघटनानामर्वाक् एकपोषधावाससंवाससंवृत्त्या महतीं सीमां बद्धुं स्थापयित्वा ग्रामं च ग्रामोपचारं च ते तूष्णीम्। न क्षमन्ते भाषन्ताम्। बद्धा संघेन एषामाघटनाना[मर्वाक्] खुद्दलिका सीमा संमतं मण्डलकम्। तेषामाघटनानामर्वागेकपोषधावास- GM. 94 संवाससंवृत्त्या महती सीमा [बद्धा] यावच्चारण्यं यावच्च शयनासनं स्थापयित्वा ग्रामं च ग्रामोपचारं च। क्षान्तमनुज्ञातं संघेन यस्मात्तूष्णीमेवमेतद्धारयामि। ततः पश्चात् खुद्दलिकायाः सीमाया निर्यात्य महत्यां सीमायां शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा भिक्षूणां चीवरकाणाम् अविप्रवाससंवृत्तिर्दातव्या पूर्ववद् यावत्।

आयुष्मानुपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति। कति भदन्त पोषधकर्माणि। चत्वारि उपालिन्। अधर्मेण कुर्वन्ति व्यग्राः। अधर्मेण समग्राः। धर्मेण व्यग्राः। धर्मेण समग्राः। तत्रैकं धार्मिकं पोषधकर्म यदिदं धर्मेण कुर्वन्ति समग्राः।

आयुष्मानुपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति। कति भदन्त प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशाः। पञ्च उपालिन्। ज्ञप्तिं कृत्वा निदानमुद्दिश्य अवशिष्टं श्रुतेन श्रावयन्ति। उद्दिष्टः प्रातिमोक्षः कृतः सङ्घेन पोषधः। ज्ञप्तिं कृत्वा निदानमुद्दिश्य चतुरः पाराजिकान् धर्मानुद्दिश्य अवशिष्टं श्रुतेन श्रावयन्ति। उद्दिष्टः प्रातिमोक्षः कृतः सङ्घेन पोषधः। ज्ञप्तिं कृत्वा निदानमुद्दिश्य चतुरः पाराजिकान् धर्मानुद्दिश्य त्रयोदश सङ्घावशेषान् धर्मानुद्दिश्य अवशिष्टं श्रुतेन श्रावयन्ति। उद्दिष्टः प्रातिमोक्षः कृतः सङ्घेन पोषधः। ज्ञप्तिं कृत्वा निदानमुद्दिश्य चतुरः पाराजिकान् धर्मानुद्दिश्य त्रयोदश संघावशेषान् धर्मान् द्वावनियतौ धर्मौ उद्दिश्य अवशिष्टं श्रुतेन श्रावयन्ति। उद्दिष्टः प्रातिमोक्षः कृतः संघेन पोषधः। विस्तरेण प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश एव पंचमः। GM. 95

[उद्दानम्]

आवासवर्षा आगन्तुकचारिकायां पञ्च।
पोषधरात्रिश्चातिक्रामति चित्तोत्पादेन पोषधः॥ ४॥

यथापि तदन्यतमस्मिन् आवासे सम्बहुला भिक्षवः प्रतिवसन्ति। तेषामेवं भवति। अमुकस्य भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्षः अमुकस्य भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्ष इति। तेषां तदेव पोषधे पंचदश्यां न कस्यचित् भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्षः। [भगवानाह] तैर्भिक्षुभिर्भिक्षुः पर्येषितव्यो वास्तुपरिहारेण शयनासनपरिहारेण लाभपरिहारेण उपस्थापकपरिहारेण यस्य [कस्यचित्] भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्षः। सचेत् संपद्यते इत्येवं कुशलं नो चेत् संपद्यते न तैर्भिक्षुभिरस्मिन् आवासे अन्यपोषधम् आगमयितव्यम्। [आगमयन्ति] सातिसारा भवन्ति।

यथापि तदन्यतमस्मिन् आवासे सम्बहुला भिक्षवः पूर्विकां वर्षामुपगन्तुकामा भवन्ति। तेषामेवं भवति अमुकस्य भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्ष इति। तेषां तदेव पोषधे पंचदश्यां न कस्यचिद् भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्ष इति। तैर्भिक्षुभिर्भिक्षुः पर्येषि- [तव्यः] वास्तुपरिहारेण शयनासनपरिहारेण कर्मपरिहारेण लाभपरिहारेण उपस्थापकपरिहारेण यस्य कस्यचित् भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्षः सचेत् संपद्यते इत्येवं कुशलं नो चेत् संपद्यते न तैर्भिक्षुभिः अस्मिन् आवासे पूर्विकां वर्षामुपगन्तव्यम्। उपगच्छन्ति GM. 96
सातिसारा भवन्ति।

[यथा]पि तदन्यतमस्मिन् आवासे सम्बहुला भिक्षवः पूर्विकां वर्षामुपगता भवन्ति अमुकस्य भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्षः अमुकस्य भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्ष इति । तेषां तदेव पोषधे पंचदश्यां न कस्यचिद् भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्ष इति । स तैर्भिक्षुभिर्भिक्षुः पर्येषितव्यः वास्तुपरिहारेण कर्मपरिहारेण लाभपरिहारेण उपस्थापकपरिहारेण यस्य भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्षः सचेत् संपद्यते इत्येवं कुशलं नोचेत् संपद्यते न तैर्भिक्षुभिरस्मिन् आवासे पूर्विकां वर्षां वस्तव्यम् । वसन्ति सातिसारा भवन्ति ।

यथापि तदन्यतमस्मिन् आवासे संबहुला भिक्षवः पश्चिमिकां वर्षामुपगन्तुकामा भवन्ति । तेषामेवं भवति अमुकस्य भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्षः अमुकस्य भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्ष इति । तेषां च तदेव पोषधे पञ्चदश्यां न कस्यचिद् भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्ष इति । स तैर्भिक्षुभिर्भिक्षुः पर्येषितव्यो वास्तुपरिहारेण शयनासनपरिहारेण उपस्थापकपरिहारेण यस्य भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्षः । सचेत् संपद्यते इत्येवं कुशलं नोचेत् संपद्यते न तैर्भिक्षुभिरस्मिन् आवासे पश्चिमिकां वर्षामुपगन्तव्यम् । उपगच्छन्ति सातिसारा भवन्ति ।

यथापि तदन्यतमस्मिन् आवासे सम्बहुला भिक्षवः पश्चिमिकां वर्षामुपगता
GM· 97 भवन्ति । तेषामेवं भवति अमुकस्य भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्षः अमुकस्य भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्ष इति । तेषां तदेव पोषधे पंचदश्यां न कस्यचिद् भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्षः । तैर्भिक्षुभिरस्मिन् आवासे द्वौ मासौ प्रतिसंख्यया वस्तव्यम् । द्वयोर्मासयोरत्ययाद् भिक्षुः पर्येषितव्यो वास्तुपरिहारेण शयनासनपरिहारेण कर्मपरिहारेण लाभपरिहारेण उपस्थापकपरिहारेण [वा] यस्य कस्यचिद् भिक्षोर्दृश्यते प्रातिमोक्षः । सचेत् संपद्यते इत्येवं कुशलम् । नोचेत् संपद्यते न तैर्भिक्षुभिरस्मिन् आवासे अन्यपोषधम् आगमयितव्यम् । आगमयन्ति सातिसारा भवन्ति ।

आयुष्मानुपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति । यथापि तद् भदन्त नैवासिका भिक्षवः शृण्वन्ति आगन्तुका भिक्षवः आगच्छन्ति सूत्रधरा विनयधरा मातृकाधरा इति । तैस्तेषां कथं प्रतिपत्तव्यम् । तैरुपालिन् भिक्षुभिः सूत्रधर-विनयधर-माधृकाधराणां भिक्षूणामर्थाय अर्धतृतीयानि योजनानि छत्रध्वजपताकाभिः प्रत्युद्गन्तव्यम् । सचेत् सम्पद्यते इत्येवं कुशलं नोचेत् सम्पद्यते पंच क्रोशान् छत्रध्वजपताकाभिः प्रत्युद्गन्तव्यम् । सचेत् सम्पद्यते इत्येवं कुशलं नोचेत् सम्पद्यते त्रीन् क्रोशान् अर्धक्रोशमन्ततः परिषण्डमपि
GM. 98 छत्रध्वजपताकाभिः प्रत्युद्गन्तव्यम् । सचेत् सम्पद्यते इत्येवं कुशलं नोचेत् सम्पद्यते स्नात्रं कर्तव्यम् । संघे स्नेहलाभः कर्तव्यः । तेषां वास्तुपरिहारः शयनासनपरिहारः कर्मपरिहारो लाभपरिहारः उपस्थापकपरिहारो दातव्यः । सचेत् तत्र कश्चिदेवं वदेत्

सामनिकायाम् आयुष्मन्तः प्रव्रज्यायां कस्मा एते भिक्षवोऽर्हन्ति न वयमिति । स इदं स्याद् वचनीयः । अतीतशास्त्रके आयुष्मन् प्रवचने एष शास्ता एष प्रतिशरणं यदुत सूत्रविनयमातृकाश्चेति । स चैषाम् आयुष्मतां विस्तरेणोद्दिष्टः प्रवृत्तश्चेति । तस्मादेते अर्हन्ति न त्वमिति ।

यथापि तदेव पोषधे पंचदश्यां सार्धं विहार्यन्तेवासिका भिक्षवो जनपदचारिकां चर्तुकामा भवन्ति । तेषामाचार्योपाध्यायैर्न केनचित् भिक्षुकारेण ऊर्ध्वलोकना दातव्या । सचेत् [एवं]रूपं प्रत्ययो भवति वक्तव्यः । आयुष्मन् अमुक आवासः सस्थविरः सप्रातिमोक्षः । सचेत् तत्रोक्ता [दावासाद्] अन्यत्रावतरन्ति सातिसारा भवन्ति ।

अथ भगवान् तदेव पोषधे पंचदश्यां पुरस्ताद् भिक्षुसंघस्य प्रज्ञप्त एवासने GM. 99 निषण्णः । निषद्य भगवान् भिक्षून् आमन्त्रयते स्म । निर्गच्छति भिक्षवो रात्रिः कुरुत भिक्षवः पोषधम् ।

अथ अन्यतमो भिक्षुरुत्थायासनादेकांसमुत्तरासंगं कृत्वा येन भगवांस्तेनाञ्जलिं प्रणम्य भगवन्तमिदमवोचत् । अन्यतमस्मिन् भदन्त आवासे भिक्षुराबाधिको दुःखितो वाढग्लानः । तस्यास्माभिः कथं प्रतिपत्तव्यम् । भगवानाह । पारिशुद्धिरस्य आनयितव्या । उक्तं भगवता पारिशुद्धिरस्य आनयितव्येति । भिक्षवो न जानते कथमानयितव्येति । भगवानाह । एकस्य एकेन द्वाभ्यामेकेन सम्बहुलानां यावतां वा शक्नोति संघमध्ये नामानि परिकीर्तयितुम् ।

पारिशुद्धिदायकस्य अहं भिक्षवः आसमुदाचारिकान् धर्मान् प्रज्ञप[यिष्यामि । पारिशुद्धिदायको भिक्षुः एकांसमुत्तरासङ्गं कृत्वा] उपानहौ अवमुच्य यथावृद्धिकया सामिचीं कृत्वा उत्कुटुकेन स्थित्वा अञ्जलिं प्रगृह्य इदं स्याद् वचनीयम् । समन्वाहर आयुष्मन् अद्य संघस्य पोषधपंचदशिका ममापि । एवंनाम्नः [आबाधिकस्य दुःखितस्य वाढग्लानस्य] भिक्षोः पोषधपंच[दशिका । तस्यान्तरायिकान् धर्मानहं] वदामि । पोषधेऽस्य पारिशुद्धिमारोचयामि । आरोचितां च प्रवेदयामि । एवं द्विरपि एवं त्रिरपि । पारिशुद्धिदायको भिक्षुः सचेत् कायविज्ञप्त्या पारिशुद्धिं ददाति । दत्त्वा पारिशुद्धिर्वक्तव्या वाग्वि[ज्ञप्त्या पारिशुद्धिं ददाति । दत्त्वा] पारिशुद्धिर्वक्तव्या । न कायविज्ञप्त्या न वाग्विज्ञप्त्या ददाति सर्वसंघेन वा तत्र गन्तव्यम् । स वा GM. 100 भिक्षुसंघमध्येऽवतारयितव्यः । न सर्वसंघस्तत्र गच्छति । तं च भिक्षुं संघे नावतारयिष्यन्ति वा व्य[ग्राः कुर्वन्ति सातिसारा भवन्ति । पारिशुद्धिदायको भिक्षुः] प्रज्ञप्तानासमुदाचारिकान् धर्मान् न समादाय वर्तते सातिसारो भवति ।

पारिशुद्धिग्राहकस्याहं भिक्षोरासमुदाचारिकान् धर्मान् प्रज्ञपयिष्यामि । पारिशुद्धिग्राहकेण भिक्षुणा पारिशुद्धिं गृहीत्वा न धावितव्यं न द्रवितव्यं [न परिखा लंघ]यितव्या न परिषण्डे लंघयितव्यं नोपरिविहायसा स्थातव्यं न बहिःसीमा गन्तव्या नैकेन पादेन द्वौ निश्रेणिपदकौ अभिभवितव्यौ नैकेन पादेन द्वौ सोपानकावेवाभिभवितव्यौ न स्वपितव्यं न समापत्तव्यम् । स्वपिति समापद्यते द्वाभ्यां कारणाभ्यां गर्ह्यो भवति यच्चालज्जित्वेन यच्च वैतरिकत्वेन ।

यदा संघस्थविरः कथयति । अनागमनाय आयुष्मन्तश्छन्दं च पारिशुद्धिं च आरोचयत । आरोचितां च प्रवेदयतेति । तेनान्तरिकस्य भिक्षोः पुरतः स्थित्वा वक्तव्यम् । समन्वाहर आयुष्मन् अमुष्मिन्नावासे भिक्षुराबाधिको दुःखितो वाढग्लानः । अद्य संघस्य पोषधपंचदशिका तस्यापि भिक्षोः पोषधपंचदशिका । सोऽयमेवंनामा भिक्षुः परिशुद्धमान्तरायिकैः धर्मैरात्मानं वेदयति । पोषधेऽस्य पारिशुद्धिमारोचयामि आरोचितां च प्रवेदयामि । पारिशुद्धिग्राहको भिक्षुरासमुदाचारिकान् धर्मान् न समादाय वर्तते सातिसारो भवति ।

GM. 101 आयुष्मान् उपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति । पारिशुद्धिग्राहकस्तावद् भदन्तो भिक्षुः पारिशुद्धिं गृहीत्वा तत्रैवोच्छेद्य कालं कुर्यात् । आनीता पारिशुद्धिर्वक्तव्या । अनानीता उपालिन् पुनरप्यानयितव्या । आगारिकत्वं प्रतिजानाति समनुद्देशकत्वं षण्ढकत्वं पण्डकत्वं भिक्षुणीदूषकत्वं मातृघातकत्वं पितृघातकत्वमर्हद्घातकत्वं संघभेदकत्वं तथागतस्यान्तिके दुष्टचित्तरुधिरोत्पादकत्वं तीर्थिकत्वं तीर्थिकावक्रान्तकत्वं स्तेयसंवासिकत्वं नानासंवासिकत्वम् असंवासिकत्वं प्रतिजानाति । आनीता पारिशुद्धिर्वक्तव्या । अनानीता उपालिन् पुनरप्यानयितव्या । पारिशुद्धिग्राहकस्तावद् भदन्तो भिक्षुः पारिशुद्धिं गृहीत्वा संघमध्ये प्राप्तः कालं कुर्यात् । आनीता पारिशुद्धिर्वक्तव्या । अनानीता उपालिन् पुनरानयितव्या । आगारिकत्वं प्रतिजानाति पूर्ववद् यावत् असंवासिकत्वं प्रतिजानाति । आनीता पारिशुद्धिर्वक्तव्या । अनानीता उपालिन् पुनरानयितव्या ।

आयुष्मान् उपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति । यस्मिन् भदन्त आवासे एको भिक्षुः प्रतिवसति तेन तदेव पोषधे पंचदश्यां कथं प्रतिपत्तव्यम् । तेनोपालिन् भिक्षुणा विहारः सेक्तव्यः सम्मार्जयितव्यः सुकुमारी गोमयकार्षी अनुप्रदातव्या । सिंहासनं प्रज्ञपयितव्यम् ।
GM. 103 आसनप्रज्ञप्तिः कर्तव्या । धर्मश्रवणं दातव्यम् । ततः पश्चात् उच्चतरके...... सूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतरकाः । तैर्यथागतानि निषद्य तैः सार्धं पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । पूर्वकाभिक्षवो न सातिसाराः ।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णाः सन्निपतिता भवन्ति । चत्वारो वा उत्तरे वा । तेषां नैवं भवति । सन्ति भिक्षवो येऽनागतका इति । ते धर्मसंज्ञिनः समग्रसंज्ञिनो ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । उद्दिष्टः प्रातिमोक्षः । कृतः संघेन पोषधः । अव्युत्थिता सा पर्षत् । अविप्रक्रान्ताश्च भिक्षवः । ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतर[क]ाः । तैस्तेषामर्थाय पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः ।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णाः सन्निपतिताः । चत्वारो वा उत्तरे वा । तेषां नैवं भवति । सन्ति भिक्षवो येऽनागतकाः । ते धर्मसंज्ञिनः समग्रसंज्ञिनो ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । उद्दिष्टः प्रातिमोक्षः । कृतः संघेन पोषधः । व्युत्थिता सा पर्षत् । एकत्या भिक्षवो विप्रक्रान्ताः । [एकत्या अविप्रक्रान्ताः ।] ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतरकाः । ते यदि तावत्सामग्रीमारागयन्ति पुनरपि तैस्तेषामर्थाय ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । नोचेदारागयन्ति तैर्मण्डलकं गत्वा पोषधः GM. 104
कर्तव्यः । पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः ।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णा [भवन्ति] सन्निपतिताः । चत्वारो वा उत्तरे वा । तेषां नैवं भवति । सन्ति भिक्षवो येऽनागतकाः । ते धर्मसंज्ञिनः समग्रसंज्ञिनो ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । उद्दिष्टः प्रातिमोक्षः । कृतः संघेन पोषधः । व्युत्थिता सा पर्षत् । विप्रक्रान्ताश्च भिक्षवः । ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतरकाः । तैर्मण्डलकं गत्वा पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः ।

यथा नैवासिकैः सन्निषण्णैः सन्निपतितैः नैवासिका आगच्छन्त्यल्पाः समकाः । आगन्तुका आगच्छन्त्यल्पाः समकाः । आगन्तुकनैवासिका आगच्छन्त्यल्पाः समकाः । आगन्तुकनैवासिकैः सन्निषण्णैः सन्निपतितैः आगन्तुकनैवासिका आगच्छन्त्यल्पाः समकाः । नैवासिका आगच्छन्त्यल्पाः समकाः । आगन्तुका आगच्छन्त्यल्पाः समकाः ।

पिण्डोद्दानम् । पंक्तिज्ञप्त्यादिमण्डलकञ्च ।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः । चत्वारो वा उत्तरे वा । तेषां नैवं भवति । सन्ति भिक्षवो GM. 105
येऽनागतकाः । ते धर्मसंज्ञिनः समग्रसंज्ञिनो ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति ।

प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षव आगच्छन्ति बहुतरकाः । तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः ।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः । चत्वारो [वा] उत्तरे वा । तेषां नैवं भवति । सन्ति भिक्षवो येऽनागतकाः । ते धर्मसंज्ञिनः समग्रसंज्ञिनो ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । उद्दिष्टः प्रातिमोक्षः । कृतः संघेन पोषधः । अव्युत्थिता सा पर्षत् । अविप्रक्रान्ताश्च भिक्षवः । ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षव आगच्छन्ति बहुतरकाः । तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः ।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः । चत्वारो वा उत्तरे वा । तेषां नैवं भवति । सन्ति भिक्षवो येऽनागतकाः । ते धर्मसंज्ञिनः समग्रसंज्ञिनो ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । उद्दिष्टः प्रातिमोक्षः । कृतः संघेन पोषधः । व्युत्थिता सा पर्षत् । एकत्या भिक्षवो विप्रक्रान्ताः । एकत्या अविप्रक्रान्ताः । ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षव आगच्छन्ति बहुतरकाः । तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः ।

GM. 106 **यथापि** तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः । चत्वारो वा उत्तरे वा । तेषां नैवं भवति । सन्ति भिक्षवो येऽनागतकाः । ते धर्मसंज्ञिनः समग्रसंज्ञिनो ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । उद्दिष्टः प्रातिमोक्षः । कृतः संघेन पोषधः । व्युत्थिता सा पर्षत् । विप्रक्रान्ता भिक्षवः । ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षवः आगच्छन्ति बहुतरकाः । [तैः] पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः ।

यथा नैवासिकैः सन्निषण्णैः सन्निपतितैः नैवासिका भिक्षव आगच्छन्ति बहुतरकाः । एवमागन्तुका आगच्छन्ति बहुतरकाः । आगन्तुकनैवासिका आगच्छन्ति बहुतरकाः । आगन्तुकनैवासिकैः सन्निषण्णैः सन्निपतितैः आगन्तुका आगच्छन्ति बहुतरकाः । आगन्तुकनैवासिका आगच्छन्ति बहुतरकाः ।

नैवासिकानां पञ्चदशी आगन्तुकानां चतुर्दशी वा प्रतिपद्धा। बहुतरकाणामनुवर्तितव्यम्। आगन्तुकैः नैवासिकानां बहुतरकाणाम्। नैवासिकानां पञ्चदशी आगन्तुकानां चतुर्दशी वा प्रतिपद्धा। समकानामनुवर्तितव्यम्। आगन्तुकैर्नैवासिकानां समकानाम्। [नैवासिकानां पञ्चदशी] आगन्तुकानां चतुर्दशी प्रतिपद्धा। बहुतरकाणामनुवर्तितव्यम्। नैवासिकैरागन्तुकानां बहुतरकाणाम्। आगन्तुकानां पञ्चदशी GM. 107 नैवासिकानां चतुर्दशी प्रतिपद्धा। बहुतरकाणामनुवर्तितव्यम्। नैवासिकैरागन्तुकानां बहुतरकाणाम्। आगन्तुकानां पञ्चदशी नैवासिकानां चतुर्दशी वा प्रतिपद्धा। समकानामनुवर्तितव्यम्। आगन्तुकैर्नैवासिकानां समकानाम्। आगन्तुकानां पञ्चदशी नैवासिकानां चतुर्दशी प्रतिपद्धा। बहुतरकाणामनुवर्तितव्यम्। आगन्तुकैर्नैवासिकानां बहुतरकाणाम्।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णा [भवन्ति] सन्निपतिताः। चत्वारो वा उत्तरे वा। तत्र ते पश्यन्ति आगन्तुकाकाराणि [आगन्तुकलिंगानि] आगन्तुकनिमित्तानि। तद्यथा अज्ञातकं पात्रं चीवरं यष्टिं विसिकां कुण्डीं तुम्बकं खोलान् पूलानुपानहौ। तेषामेवं भवति। सन्ति भिक्षवो येऽनागतका [इति।] [येऽनाग]तका [तैर्विना कल्पयन्ति। तत्र निषण्णा एव कल्पयन्ति। पृथक् निषण्णा एव कल्पयन्ति।] नश्यन्तु ते अन्यत्र एव भवन्तु पृथग् भवन्तु दूरेण भवन्तु परेण भवन्तु। ते भेदार्थिनो भेदपरिष्कारा ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति। GM. 108 प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति। ततः पश्चादागन्तुका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतरकाः। तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः। पूर्वका भिक्षव आपद्यन्ते स्थूलात्ययान्। ते भेदसामन्तकाः।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः। चत्वारो वा उत्तरे वा। ते तत्र पश्यन्ति आगन्तुकाकाराण्यागन्तुकलिंगान्यागन्तुकनिमित्तानि। तद्यथा अज्ञातकं पात्रं चीवरं यष्टिं विसिकां कुण्डीं तुम्बकं खोलान् पूलानुपानहौ। तेषामेवं भवति। सन्ति भिक्षवो येऽनागतकाः। भिक्षवो येऽनागतकाः कल्पयन्त्यस्माकं तैर्विना ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कर्तुं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्देष्टुम्। तेऽधर्मसंज्ञिनो व्यग्रसंज्ञिनो ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति। ततः पश्चादागन्तुका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतरकाः। तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः। पूर्वका भिक्षवः सातिसाराः। व्यग्रसामन्तकाः।

GM. 109 यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः। चत्वारो वा उत्तरे वा। ते तत्र पश्यन्त्यागन्तुकाकाराण्यागन्तुकलिंगान्यागन्तुकनिमित्तानि। तद्यथा अज्ञातकं पात्रं चीवरं यष्टिं विसिकां कुण्डीं तुम्बकं खोलान् पूलानुपानहौ। तेषामेवं भवति। सन्ति भिक्षवो येऽनागतका इति। येऽनागतकाः कल्पयन्त्यस्माकं तैर्विना ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कर्तुं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्देष्टुम्। ते कल्पार्थिनः कल्पपरिष्कारा यावत्तावन्मार्गित्वा ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति। ते ततः पश्चादागन्तुका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतरकाः। तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः। पूर्वका भिक्षवः सातिसाराः। कल्पसामन्तकाः।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः। चत्वारो वा उत्तरे वा। ते तत्र पश्यन्त्यागन्तुकाकाराण्यागन्तुकलिंगान्यागन्तुकनिमित्तानि। तद्यथा अज्ञातकं पात्रं चीवरं यष्टिं विसिकां कुण्डीं तुम्बकं खोलान् पूलानुपानहौ। तेषामेवं भवति। सन्ति भिक्षवो येऽनागतका इति। येऽनागतका न कल्पयन्त्यस्माकं तैर्विना ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कर्तुं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्देष्ट्वम्। तानध्याशयनं मार्गयित्वा न लभन्ते। ते ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति। ततः पश्चादागन्तुका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतरकाः।
GM. 110 तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः। पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः।

यथापि तत्तदेव पोषधे पंचदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः। चत्वारो वा उत्तरे वा। ते तत्र पश्यन्त्यागन्तुकाकाराण्यागन्तुकलिंगान्यागन्तुकनिमित्तानि। तद्यथा अज्ञातकं पात्रं चीवरं यष्टिं विसिकां कुण्डीं तुम्बकं खोलान् पूलानुपानहौ। तेषामेवं भवति। सन्ति भिक्षवो येऽनागतका इति। येऽनागतका न कल्पयन्त्यस्माकं तैर्विना ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कर्तुं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्देष्टुम्। ते तानध्याशयनं मार्गित्वा लभन्ते। तैः सार्धं निषद्य पोषधं कुर्वन्ति। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति। पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्ष[वः] सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः। चत्वारो वा उत्तरे वा। तत्र गृह्णन्त्यागन्तुकाकाराण्यागन्तुकलिंगान्यागन्तुकनिमित्तानि। तद्यथा यष्टिशब्दं पदशब्दमुत्कासनशब्दमागन्तुकानां भिक्षूणां स्वरगुप्तिम्। तेषामेवं भवति। सन्ति भिक्षवो येऽनागतकाः। नश्यन्तु ते अन्यत्र

एव भवन्तु पृथग् भवन्तु । [ते] भेदार्थिनो भेदपरिष्कारा ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । ततः पश्चादागन्तुका भिक्षव आगच्छन्त्य- ल्पतरकाः । तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । पूर्वका भिक्षव आपद्यन्ते स्थूलात्ययान् । भेदसामन्तकाः ।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः । चत्वारो वा उत्तरे वा । तत्र गृह्णन्त्यागन्तुकानां पूर्ववद्यावत् ते तानध्या- शयनं मार्गन्ति । लभन्ते ते । तैः सार्धं निषद्य पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्दे- शमुद्दिशन्ति । पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः ।

यथा नैवासिकैः सन्निषण्णैः सन्निपतितैरागन्तुका आगच्छन्त्यल्पा एवं समका बहुतरकाः ।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यामागन्तुका भिक्षवः सन्निषण्णाः सन्निपतिताः । GM. 111
चत्वारो वा उत्तरे वा । [ते] तत्र पश्यन्ति नैवासिकाकाराणि नैवासिकलिंगानि नैवासिक- निमित्तानि । तद्यथा विहारं सिक्तं संमृष्टं सुकुमारीं गोमयकार्षीमनुप्रदत्ताम् । शयना- सनप्रज्ञप्तिं कृताम् । तैलप्रद्योतानादीपितान् । तेषामेवं भवति । सन्ति भिक्षवो येऽनागतका इति । येऽनागतका नश्यन्तु अन्यत्र एव भवन्तु पृथक् भवन्तु दूरेणापरेण भवन्तु । ते भेदार्थिनो भेदपरिष्कारा ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतरकाः । तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । पूर्वका भिक्षव आपद्यन्ते स्थूलात्ययान् । ते भेदसामन्तकाः ।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यां ते आगन्तुका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः । चत्वारो वा उत्तरे वा । ते तत्र पश्यन्ति नैवासिकाकाराणि [नैवासि]-
कलिंगानि नैवासिकनिमित्तानि । तद्यथा विहारं सिक्तं संमृष्टं सुकुमारीं गोमयकार्षीमनु- GM. 112
प्रदत्ताम् । शयनासनप्रज्ञप्तिं कृताम् । तेषामेवं भवति । सन्ति भिक्षवो येऽनागतका इति । येऽनागतका भिक्षवो न कल्पयन्त्यस्माकं तैर्विना ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कर्तुं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्देष्टुम् । तेऽधर्मसंज्ञिनो व्यग्रसंज्ञिनो ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतरकाः । तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । पूर्वका भिक्षवः सातिसारा भवन्ति । व्यग्रसामन्तकाः ।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यामागन्तुका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः। चत्वारो वा उत्तरे वा। ते तत्र पश्यन्ति नैवासिकाकाराणि नैवासिकलिङ्गानि नैवासिकनिमित्तानि। तद्यथा विहारं सिक्तं संमृष्टं सुकुमारीं गोमयकाषीमनुप्रदत्ताम्। शयनासनप्रज्ञप्तिं कृताम्। तैलप्रद्योतानादीपितान्। तेषामेवं भवति। सन्ति भिक्षवो येऽनागतका इति। येऽनागतका इति न कल्पयन्त्यस्माकं तैर्विना ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कर्तुं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्देष्टुम्। ते कल्पार्थिनः कल्पपरिष्कारा यावत्तावन्मार्गित्वा ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति। ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतरकाः। तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः। पूर्वका भिक्षवः सातिसाराः। कल्पसामन्तकाः।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यामागन्तुका भिक्षवः सन्निषण्णाः सन्निपतिताः। चत्वारो वा उत्तरे वा। ते तत्र पश्यन्ति नैवासिकाकराणि नैवासिकलिङ्गानि नैवासिक-
GM. 113 निमित्तानि। तद्यथा विहारं सिक्तं संमृष्टं सुकुमारीं गोमयकार्षीमनुप्रदत्ताम्। शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा तैलप्रद्योताना [दी] पितान्। तेषामेवं भवति। सन्ति भिक्षवो येऽनागतका इति। येऽनागतका न कल्पतेऽस्माकं तैर्विना ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कर्तुं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्देष्टुम्। तानध्याशयनं मार्गन्ति। ते तानध्याशयनं मार्गित्वा न लभन्ते। ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति। ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षव आगच्छन्त्यल्पतरकाः। तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः। पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यामागन्तुका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः। चत्वारो वा उत्तरे वा। ते तत्र पश्यन्ति नैवासिकाकाराणि [नैवासिकलिङ्गानि] नैवासिकनिमित्तानि। तद्यथा विहारं सिक्तं संमृष्टं सुकुमारीं गोमयकार्षीमनुप्रदत्ताम्। शयनासनप्रज्ञप्तिं कृत्वा तैलप्रद्योतानादीपितान्। तेषामेवं भवति। सन्ति भिक्षवो येऽनागतका इति। येऽनागतका इति न कल्पतेऽस्माकं तैर्विना ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कर्तुं प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्देष्टुम्। ते तानध्याशयनं मार्गन्ति। ते तानध्याशयनं मार्गित्वा लभन्ते। तैः सार्धं निषद्य ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः। प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः। पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः।

यथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यामागन्तुका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः।
GM. 114 चत्वारो वा उत्तरे वा। तत्र गृह्णन्ति नैवासिकाकाराणि नैवासिकलिङ्गानि नैवासिक-

निमित्तानि । [तद्यथा] यष्टिशब्दं पदशब्दमुत्कासनशब्दं भाण्डकशब्दं कुण्डिकाशब्दं नैवासिकानां भिक्षूणां स्वरगुप्तिम् । तेषामेवं भवति । सन्ति भिक्षवो येऽनागतकाः । येऽनागतका अन्यत्रैव भवन्तु बहिर्गच्छन्तु दूरेणापरेण । [ते] भेदार्थिनो भेदपरिष्कारा ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । [ततः पश्चा]न्नैवासिका भिक्षवः आगच्छन्ति बहुतरकाः । तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा पोषधः कर्तव्यः । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देश उद्देष्टव्यः । पूर्वका भिक्षवः सातिसाराः ।

तथापि तत्तदेव पोषधे पञ्चदश्यामागन्तुका भिक्षवः सन्निषण्णा भवन्ति सन्निपतिताः । चत्वारो वा उत्तरे वा । तत्र गृह्णन्ति नैवासिकानां पूर्ववद्यावत्ते तानध्याशयनं मार्गन्ति । अध्याशयनं मार्गित्वा लभन्ते । ते तैः सार्धं निषद्य पोषधं कुर्वन्ति । प्रातिमोक्षसूत्रोद्देशमुद्दिशन्ति । पूर्वका भिक्षवो न सातिसाराः ।

यथागन्तुकः सन्निषण्णैः सन्निपतितैर्नैवासिका आगच्छन्त्यल्पा एवं समका बहुतरकाः ।

अन्तरोद्दानम् ।

भेदविमतिव्यग्राः कल्पानलभंस्ते लभन्ते ।

गन्तव्यं भिक्षुणा तदेव पोषधे पञ्चदश्यां सभिक्षुकादावासात्सभिक्षुकमावासं यत्र भिक्षवो भवन्ति परिशुद्धाः समानदृष्टयः । न गन्तव्यं भिक्षुणा तदेव पोषधे पञ्चदश्यां GM. 115 सभिक्षुकादावासात्सभिक्षुकमावासं यत्र भिक्षवो भवन्ति कलहकारका भण्डनकारका विवादकारका विग्रहकारका आधिकरणिकाः ।

गन्तव्यं भिक्षुणा तदेव पोषधे पञ्चदश्यां सभिक्षुकादावासात्सभिक्षुकमावासं [सभिक्षुकमनावासं] यत्र भिक्षवो भवन्ति परिशुद्धाः समानदृष्टयः । न गन्तव्यं भिक्षुणा तदेव पोषधे पञ्चदश्यां सभिक्षुकादावासात्सभिक्षुकमावासं सभिक्षुकमनावासं यत्र भिक्षवो भवन्ति कलहकारका भण्डनकारका विग्रहकारका विवादकारका आधिकरणिकाः ।

गन्तव्यं भिक्षुणा तदेव पोषधे पञ्चदश्यां सभिक्षुकादावासात्सभिक्षुकमाववासं सभिक्षुकमनावासं सभिक्षुकमावासम[ना]वासं यत्र भिक्षवो भवन्ति परिशुद्धाः समानदृष्टयः । न गन्तव्यं भिक्षुणा तदेव पोषधे पञ्चदश्यां सभिक्षुकादावासात्सभिक्षुकमावासं सभिक्षुकमनावासं सभिक्षुकमावासमनावासं स्थापयित्वा आपदासु वा सर्वसंघेन वा ।

गन्तव्यं भिक्षुणा तदेव पोषधे पञ्चदश्यां सभिक्षुकादावासादभिक्षुकमावासं सभिक्षुक-

मनावासं सभिक्षुकमावासमनावासं यत्र गत्वा स्पर्शो भवति कायेन वा चित्तेन वा । न
GM. 116 गन्तव्यं भिक्षुणा तदेव पोषधे पञ्चदश्यां सभिक्षुकादावासादभिक्षुकमावासं सभिक्षुकमना-
वासं सभिक्षुकमावासमनावासं स्थापयित्वा आपदासु सर्वसंघेन वा ।

गन्तव्यं भिक्षुणा तदेव पोषधे पञ्चदश्यां सभिक्षुकादावासादभिक्षुकमावासमनावासमभिक्षुकमावा[समभिक्षुकम]नावासं यत्र गत्वा स्पर्शो भवति कायेन वा चित्तेन वा । न गन्तव्यं भिक्षुणा तदेव पोषधे पञ्चदश्यां सभिक्षुकादावासादभिक्षुकमावासमभिक्षुकमनावासमभिक्षुकमावासानावासं स्थापयित्वा आपदासु वा सर्वसंघेन वा ।

गन्तव्यं भिक्षुणा तदेव पोषधे पञ्चदश्यां सभिक्षुकादावासादनावासादभिक्षुकमावासमभिक्षुकमावासमनावासं यत्र गत्वा स्पर्शो भवति [कायेन वा चित्तेन वा । ...]

प्रवारणावस्तु

· · · आरामद्वारमागत्य गां हत्वा महिषीं छागलिकां वा रुधिराङ्गकानि रुधिरविलेख- GM. 119
कानि कृत्वा भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयन्ति । निर्गच्छन्त्वार्याः । वयमत्र वत्स्यामः । अहं चेत्त्रिवाचिकया प्रवारयेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः ब्रह्मचर्यान्तरायः यत्त्वहमेकवाचिकया प्रवारणया प्रवारयेयम् । स एकवाचिकया प्रवारणया प्रवारयति । अस्मिन्नर्थे एकवाचिका प्रवारणा ।

अ[पर]स्मिन्नर्थे एकवाचिका प्रवारणा । यथापि तत्तदेव पञ्चदश्यां प्रवारणायामन्यतमेन महल्लेन बालेन मूढेनाव्यक्तेनाकुशलेन गोचरे वा गोचरमार्गे वा कुलस्त्री वा कुलकुमारी वा आक्रुष्टा भवत्याभाष्टाः परामृष्टा वा । मनुष्या प्रकुप्य आरामद्वारमागत्य यथागृहीतकमुद्घोषयन्ति । गृह्णन्तु भवन्तः श्रमणान् शाक्यपुत्रीयान् हनन्तु बध्नन्तु प्रवासयन्तु । राज्ञो हस्त्यारोहा भविष्यन्त्यश्वारोहा इष्टकारोहा ध्वजारोहा पताकारोहाः पृथग्राजकृत्यानि राजकरणीयानि करिष्यन्ति । तत्र प्रवारकस्य भिक्षोरेवं भवति । अद्य संघस्य प्रवारणा पांचदशिका अन्यतमेन च महल्लकेन मूढेनाव्यक्तेनाकुशलेन गोचरे वा गोचरमार्गे वा कुलस्त्री वा कुलकुमारी वा आक्रुष्टा भवत्याभाष्टाः परामृष्टा वा । मनुष्याः प्रकुपिता आरामद्वारमागत्य यथागृहीतकं घोषयन्ति । गृह्णन्तु भवन्तः श्रमणान् शाक्यपुत्रीयान् हनन्तु बध्नन्तु । राज्ञो हस्त्यारोहा अश्वारोहा इष्टकारोहा ध्वजारोहा पताकारोहाः पृथग्राजकृत्यानि राजकरणीयानि करि- GM. 120
ष्यन्ति । अहं चेत्तिवाचिकया प्रवारणया प्रवारयेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमेकवाचिक[या] प्रवारणया प्रवारयेयम् । स एकवाचिकया प्रवारणया प्रवारयति । अस्मिन्नर्थे एकवाचिका प्रवारणा ।

अपरस्मिन्नर्थे एकवाचिका प्रवारणा । यथापि तद्विहारः अमनुष्याध्युषिते प्रदेशे प्रतिष्ठापितो भवति । अन्यतमेन च महल्लेन बालेन मूढेनाव्यक्तेनाकुशलेनाप्रतिरूपे प्रदेशे उच्चारप्रस्रावं क्षेटं शिंघानकं वान्तं विरिक्तं छोरितमशुचिप्रसिक्तं वा शयनासनं प्रविक्षिप्तम् । अमनुष्याः प्रकुपिता गोचरेऽवतिष्ठन्ति गोचरमार्गेऽपि चंक्रमे मेढ्यां द्वारकोष्ठकेऽपि भिक्षूनध्याविशन्ति । तत्र प्रवारकस्य भिक्षोरेवं भवति । अद्य सङ्घस्य प्रवारणा पांचदशिका । अयं च विहारो व्याडाध्युषिते प्रदेशे प्रतिष्ठापितः । अन्यतमेन च बालेन मूढेनाव्यक्तेनाकुशलेनाप्रतिरूपे प्रदेशे उच्चारप्रस्रावं क्षेटं शिंघानकं वान्तं विरिक्तं

छोरितमशुचिप्रसिक्तं वा शयनासनं प्रविक्षिप्तम् । व्याडाः प्रकुपिता गोचरेऽपि तिष्ठन्ति गोचरमार्गेऽपि चङ्क्रमेऽपि मेड्यां द्वारकोष्ठकेऽपि भिक्षूनध्याविशन्ति । अहं चेत्त्रिवाचिकया प्रवारणया प्रवारयेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो
GM. 121 ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमेकवाचिकया प्रवारणया प्रवारयेयम् । स एकवाचिकया प्रवारणया प्रवारयति । अस्मिन्नर्थे एकवाचिका प्रवारणा ।

अपरस्मिन्नर्थे एकवाचिका प्रवारणा । यथापि तद्विहारो नागाध्युषिते प्रदेशे प्रतिष्ठापितो भवति । अन्यतमेन च महल्लेन बालेन मूढेनाव्यक्तेनाकुशलेनाप्रतिरूपे प्रदेशे वा गोचरे वा गोचरमार्गे वा उच्चारप्रस्रावं क्षेटं शिङ्घानकं वान्तं विरिक्तं छोरितमशुचिप्रसिक्तं वा शयनासनं प्रविक्षिप्तम् । नागाः प्रकुपिता गोचरेऽपि तिष्ठन्ति गोचरमार्गेऽपि चङ्क्रमेऽपि मेड्यां द्वारकोष्ठकेऽपि भिक्षूनध्याविशन्ति । तत्र प्रवारकस्य भिक्षोरेवं भवति । अद्य संघस्य प्रवारणा पांचदशिका । अयं च विहारो नागाध्युषिते प्रदेशे प्रतिष्ठापितः । अन्यतमेन च महल्लेन बालेन मूढेनाव्यक्तेनाकुशलेनाप्रतिरूपे प्रदेशे उच्चारप्रस्रावं क्षेटं शिङ्घानकं वान्तं विरिक्तं छोरितमशुचिप्रसिक्तं वा शयनासनं प्रविक्षिप्तम् । नागाः प्रकुपिता गोचरेऽपि तिष्ठन्ति गोचरमार्गेऽपि चंक्रमेऽपि मेड्यां द्वारकोष्ठकेऽपि भिक्षूनध्याविशन्ति । पल्यङ्कानपि संपरिवर्तयन्ति । अहं चेत्त्रिवाचिकया प्रवारणया प्रवारयेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमेकवाचिकया प्रवारणया प्रवारयेयम् । स एकवाचिकया प्रवारणया प्रवारयति । अस्मिन्नर्थे एकवाचिका प्रवारणा ।

अपरस्मिन्नर्थे एकवाचिका प्रवारणा । यथापि तद्विहारो दावमध्ये प्रतिष्ठापितो
GM. 122 भवति । अग्निर्मुक्तः इत्यग्निर्ग्रामनिगमराजराष्ट्रधानीं दहन् परैति । गोचरमपि दहति गोचरमार्गमपि चङ्क्रमं मेडीं द्वारकोष्ठकं विहारमपि दहति विहारसामन्तकमपि । तत्र प्रवारकस्य भिक्षोरेवं भवति । अद्य सङ्घस्य प्रवारणा पांचदशिका । अयं च विहारो दावमध्ये प्रतिष्ठापितः । अग्निर्मुक्तः इत्यग्निर्ग्रामनिगमराजराष्ट्रधानीं दहन् परैति । गोचरमपि गोचरमार्गमपि चङ्क्रमं मेडीं द्वारकोष्ठकं विहारमपि दहति विहारसामन्तकमपि । अहं चेत्त्रिवाचिकया प्रवारणया प्रवारयेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमेकवाचिकया प्रवारणया प्रवारयेयम् । स एकवाचिकया प्रवारणया प्रवारयति । अस्मिन्नर्थे एकवाचिका प्रवारणा ।

अपरस्मिन्नर्थे एकवाचिका प्रवारणा । यथापि तद्विहारः अनूपमध्ये प्रतिष्ठापितो भवति । उपरि पर्वतसंक्षेपे स्थूलबिन्दुको देवो वर्षन् ग्रामनिगमराजराष्ट्रधानीं वहन्

परैति। गोचरमपि वहति गोचरमार्गमपि चङ्क्रमं मेडीं द्वारकोष्ठकं विहारमपि संस्यन्दयति। तत्र प्रवारकस्य भिक्षोरेवं भवति। अद्य संघस्य प्रवारणा पांचदशिका। अयं विहारोऽनूपमध्ये प्रतिष्ठापितः। उपरिं पर्वतसंक्षेपे स्थूलबिन्दुको देवो वर्षन् ग्रामनिगमराजराष्ट्रधानीं वहन् परैति। गोचरमपि गोचरमार्गमपि चंक्रमं मेडीं द्वारकोष्ठकं विहारमपि संस्यन्दयति। अहं चेत्त्रिवाचिकया प्रवारणया प्रवारयेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः। यत्त्वहमेकवाचिकया प्रवारणया प्रवारयेयम्। स एक- GM. 123 वाचिकया प्रवारणया प्रवारयति। अस्मिन्नर्थे एकवाचिका प्रवारणा।

कस्मिन्नर्थे द्विवाचिका प्रवारणा। यत्तु तृतीयायां वाच्यवकाशो न भवति। अस्मिन्नर्थे द्विवाचिका प्रवारणा।

कस्मिन्नर्थे त्रिवाचिका प्रवारणा। समावस्थायाः।

कस्मिन्नर्थे गणप्रवारणा। यथापि तद्भयं भवति। अटवी संक्षोभचक्रसमारूढा। जनपदास्तेन ते त्वाहिण्डन्ति। तत्तु भिक्षुणेति सचीवरं कण्ठे बद्ध्वा समवलोक्य अन्योन्यं प्रक्रमितव्यम्। अद्यायुष्मन्तः संघस्य प्रवारणा पांचदशिका। यदा संघसामग्रीं लप्स्यामस्तदा प्रवारयिष्यामः। अस्मिन्नर्थे गणप्रवारणा।

यथा भदन्त भिक्षव इदमेवंरूपं क्रियाकारं कृत्वा वर्षा उपगच्छन्ति। यस्यास्माकमायुष्मतोऽन्तर्वर्षे ज्ञातिरागच्छेद् दातव्या प्रवारणा। देया भदन्त प्रवारणा न देया। देया उपालिन्। स चेद्वस्तुं स्थापयेन्न पुद्गलम्। देया प्रवारणा न देया। नोपालिन्। स इदं स्याद्वचनीयः। न वयमायुष्मन् इत्यर्थं सन्निषण्णाः सन्निपतिताः। कश्चिदायुष्मन् वस्तुं स्थापयेन्न पुद्गलमपि त्वात्मविशुद्ध्यर्थं प्रवारणा उक्ता भगवता। सचेदाकांक्षसि प्रवारय। सचेत्पुद्गलं स्थापयति न वस्तुम्। देया प्रवारणा न देया। नोपालिन्। स इदं स्याद्वचनीयः। न वयमायुष्मन्नित्यर्थं सन्निषण्णाः सन्निपतिताः। कश्चिदायुष्मन् वस्तुं स्थापयेत् पुद्गलमपि त्वात्मविशुद्ध्यर्थं प्रवारणा उक्ता भगवता। सचेदाकाङ्क्षसि GM. 124 प्रवारय। सचेद्वस्तुं स्थापयति पुद्गलं च। देया प्रवारणा न देया। नोपालिन्नेतानाकारान् स्थापयित्वा।

उद्दानम्। भिक्षुं राजा गृह्णाति स्मरेच्च दशकाभिश्च।
आपत्तिं सप्तिकां कुर्याच्चोदनामिव सप्तिकाम्॥

यथापि तच्चदेव प्रवारणायां पंचदश्यां भिक्षू राज्ञा गृहीतो भवति चौरैर्वा धूर्तैर्वा बधकैः प्रत्यर्थिभिः प्रत्यमित्रैः। तस्य भिक्षुभिर्दूतोऽनुप्रेषयितव्यः। मुञ्चैनं भिक्षुं

सब्रह्मचारी एषोऽस्माकम् । स चेन्मुञ्चतीत्येवं कुशलं नोचेन्मुञ्चति द्वितीयो दूतोऽनुप्रेषयितव्यः । मुञ्चतैनं भिक्षुम् । अस्त्यस्माकमनेन सार्धं किंचिदेव करणीयम् । सचेन्मुंचतीत्येवं कुशलं नोचेन्मुंचति भिक्षुभिर्मण्डलकं गत्वा प्रवारयितव्यम् । तत पश्चाद् द्वितीये दिवसे तस्य भिक्षोर्मोक्षाय युञ्जितव्यम् । सचेद्युञ्जन्तीत्येवं कुशलं नोचेद्युञ्जन्ति सातिसारा भवन्ति ।

यथापि तत्तदेव प्रवारणायां पञ्चदश्यां भिक्षोरापत्तिस्मरणिकेन भिक्षुणा सापत्तिभिक्षोः पुरस्ताद्यथाधर्मं प्रतिकर्तव्यम् । ततः पश्चात्प्रवारयितव्यम् । एवं हि प्रवारयितव्यं न त्वेवाहं प्रवारणायामन्तरायं वदामि । पूर्ववद्यावद्यथा पोषधवस्तुन्येवं विस्तरेण दर्शिका कर्तव्या ।

यथापि तत्तदेव प्रवारणायां पञ्चदश्यां भिक्षुरापत्तिं प्रतिजानाति । सचेत्पाराजिकां प्रतिजानाति नाशयित्वा प्रवारयितव्यम् । सचेत्संघावशेषं प्रतिजानाति अधिष्ठाय
GM. 125 प्रवारयितव्यम् । सचेत्पायन्तिकां प्रतिदेशनीयां दुष्ठुलां प्रतिजानाति । देशयित्वा प्रवारयितव्यम् ।

यथापि तत्तदेव प्रवारणायां पंचदश्यां वस्त्वविदितं भवति । केचिन्निरवशेषसंज्ञिनः । ये निरवशेषसंज्ञिनस्तैर्नाशयित्वा प्रवारयितव्यम् । ये सावशेषसंज्ञिनस्तैरधिष्ठाय प्रवारयितव्यम् ।

यथापि तत्तदेव प्रवारणायां पञ्चदश्यामापत्तिरविनिश्चिता भवति । तत्तु केचिद्देशनकरणीयमित्याहुः । केचित्संवरणीयमित्याहुः । तत्र ये देशनकरणीयमित्याहुस्तैर्देशयित्वा प्रवारयितव्यम् । ये संवरणीयमित्याहुस्तैः संवरणं कृत्वा प्रवारयितव्यम् ।

यथापि तत्तदेव प्रवारणायां पंचदश्यां भिक्षुभिर्भिक्षुश्चोदयितव्यः । स चेच्चोदको न कायेन संवृतो भवति न वाचा । एवं रूपंचोदकमामर्षयित्वा प्रमर्षयित्वा प्रवारयितव्ययम् । स चेच्चोदकः कायेन संवृतो भवति न वाचा । एवंरूपमपि चोदकमामर्षयित्वा प्रमर्षयित्वा प्रवारयितव्यम् । स चेच्चोदकः कायेन संवृतो भवति वाचा च । एवंरूपमपि चोदकमामर्षयित्वा प्रवारयितव्यम् ।

सचेच्चोदकः कायेन संवृतो वा वाचा [च] न सूत्रधरो न विनयधरो न मातृकाधरः । एवंरूपं चोदकमाज्ञापयित्वा संज्ञापयित्वा प्रवारयितव्यम् । सचेच्चोदकः कायेन संवृतो वाचा च सूत्रधरो विनयधरो मातृकाधरो न सूत्रव्यक्तो न विनयव्यक्तो न
GM, 126 मातृकाव्यक्तो न सूत्रकोविदो न विनयकोविदो न मातृकाकोविदः । एवंरूपमपि

चोदकमाज्ञापयित्वा संज्ञापयित्वा प्रवारयितव्यम् । स चेच्चोदकः कायेन संवृतो वाचा [च] सूत्रधरो विनयधरो मातृकाधरः सूत्रव्यक्तो विनयव्यक्तो मातृकाव्यक्तः सूत्रकोविदो विनयकोविदो मातृकाकोविदो न सूत्रकुशलो न विनयकुशलो न मातृकाकुशलः । एवंरूपमपि चोदकमाज्ञापयित्वा संज्ञापयित्वा प्रवारयितव्यम् ।

सचेच्चोदकः कायेन संवृतो भवति वाचा [च] सूत्रधरो विनयधरो मातृकाधरः सूत्रव्यक्तो विनयव्यक्तो मातृकाव्यक्तः सूत्रकोविदो विनयकोविदो मातृकाकोविदः सूत्रकुशलो विनयकुशलो मातृकाकुशलः । किंतु संचिन्त्य संघमध्ये अधर्मं धर्मतो दीपयति धर्मं चाधर्मतः । अविनयं विनयतो विनयं चाविनयतः । एवंरूपमपि चोदकमाज्ञापयित्वा संज्ञापयित्वा प्रवारयितव्यम् ।

सचेच्चोदकः कायेन संवृतो भवति यावत्सचेन्न संचिन्त्य संघमध्ये अधर्मं धर्मतो दीपयति धर्मं चाधर्मतः । अविनयं विनयतो [दीपयति] विनयं चाविनयतः । एवंरूपमपि चोदकमाज्ञापयित्वा संज्ञापयित्वा प्रवारयितव्यम् ।

सचेच्चोदकः कायेन संवृतो भवति वाचा [च] सूत्रधरो विनयधरो मातृकाधरः सूत्रव्यक्तो विनयव्यक्तो मातृकाव्यक्तः सूत्रकोविदो विनयकोविदो मातृकाकोविदः सूत्रकुशलो विनयकुशलो मातृकाकुशलः । न संचिन्त्य संघमध्ये अधर्मं धर्मतो दीपयति धर्मं चाधर्मतः । अविनयं विनयतो दीपयति विनयं चाविनयतः । स इदं स्याद्वचनीयः । यदायुष्मन् चोदकेन वदसि पाराजिकया संघावशेषया प्रतिदेशनि[कया] दुष्टुलया G.M. 127 रात्रिकृतेन दिवसकृतेन पथकृतेनोत्पथकृतेन गच्छतस्तिष्ठतो निषण्णस्यानिषण्णस्य । सचेत्पाराजिकया न संघावशेषया न पायन्तिकया न प्रतिदेशनिकया न दुष्ठुलया । स चेत्संघावशेषया न पाराजिकया न पायन्तिकया न प्रतिदेशनिकया न दुष्ठुलया । स चेत्पायन्तिकया न पाराजिकया न संघावशेषया न प्रतिदेशनिकया न दुष्ठुलया । स चेत्प्रतिदेशनिकया न पाराजिकया न संघावशेषया न पायन्तिकया न दुष्ठुलया । स चेद् दुष्ठुलया न पाराजिकया न संघावशेषया न पायन्तिकया न प्रतिदेशनिकया ।

सचेत्प्रथमया पाराजिकया न द्वितीयया न तृतीयया न चतुर्थिकया । सचेद् द्वितीयया न प्रथमया न तृतीयया न चतुर्थिकया । सचेत् तृतीयया न प्रथमया न द्वितीयया न चतुर्थिकया । सचेत् चतुर्थिकया न प्रथमया न द्वितीयया न तृतीयया । सचेत् प्रथमया संघावशेषया न द्वितीयया न यावत्त्रयोदश पदः । सचेद् यावत् त्रयोदशमिकया [न] प्रथमया [न] द्वितीयया न तृतीयया यावन्न द्वादशमिकया । सचेत्प्रथमया पायन्तिकया

न द्वितीयया [न यावन्न]वतिमया । सचेन्नवतिमया न प्रथमया न द्वितीयया यावन्नैकनवतिमया । सचेत् प्रथमया प्रतिदेशनीया न द्वितीयया न तृतीयया न चतुर्थिकया । सचेद् द्वितीयया न प्रथमया न तृतीयया न चतुर्थिकया । सचेत् तृतीयया न प्रथमया न द्वितीयया न चतुर्थिकया । [सचेत् चतुर्थिकया] न प्रथमया
G.M. 128 न द्वितीयया न तृतीयया । सचेत्प्रथमया दुष्टुलया न द्वितीयया न तृतीयया न यावन्नवतिमया । सचेदन्तिमया न प्रथमया न द्वितीयया यावदन्तिमया ।

सचेद्रात्रिकृतेन [न] दिवसकृतेन । सचेद् दिवसकृतेन न रात्रिकृतेन । सचेदुत्पथकृतेन न पथकृतेन । सचेत्पथकृतेन नोत्पथकृतेन । सचेद् गच्छतो न तिष्ठतो न निषण्णस्य नानिषण्णस्य । सचेत् तिष्ठतो न गच्छतो न निषण्णस्य नानिषण्णस्य । सचेत् निषण्णस्य न गच्छतो [न तिष्ठतो ना]निषण्णस्य । सचेदनिषण्णस्य न गच्छतो न तिष्ठतो न निषण्णस्य ।

सचेच्चोदकः एवं साधु च सुष्ठु च समेन युज्यमानः समनुशास्यमानः समनुगाह्यमानः स्थानात्स्थानं संक्रामति अचोदकः स्यात् अचोदितः स्यात् । सचेच्चोदकः स्थानात्स्थानं न संक्रामति चोदकः स्यात् । सचेच्चोदकः स्थानात्स्थानं न संक्रामति चोदित इदं स्याद्वचनीयः । यदायुष्मन् तस्मिन् समये कायसंस्कारः वाक्संस्कारः मनःसंस्कारः । सचेत् पाराजिकां प्रतिजानाति नाशयित्वा प्रवारयितव्यम् । सचेत् संघावशेषां प्रतिजानाति अधिष्ठाय प्रवारयितव्यम् । सचेत् पा[त]यन्तिकां प्रतिदेशनीयां दुष्टुलां प्रतिजानाति देशयित्वा प्रवारयितव्यम् ।

उद्दानम् । महदपि [स्थापनं] कर्म नाना पंचिका ।
गमिकेन स्थानं कुर्यात्परिशुद्धानां प्रवारणा ॥२॥

यथापि तत्तदेव प्रवारणायां पंचदश्यां नैवासिका भिक्षवः संनिषण्णा भवन्ति
G.M. 129 सन्निपतिताः पञ्च वा उत्तरे वा । तेषामेवं भवति । सन्ति भिक्षवो येऽनागतका इति । येऽनाग[तकाः कल्पत्य]स्माकं तैर्विना ज्ञप्तिं कृत्वा प्रवारयितुम् । ते कल्पार्थिनः कल्पपरिष्कारा ज्ञप्तिं कृत्वा प्रवारयन्ति । ततः पश्चान्नैवासिका भिक्षवः संनिषण्णाः सन्निपतिता आगच्छन्त्यल्पतरकाः । तैः पुनरपि ज्ञप्तिं कृत्वा प्रवारयितव्यम् । पूर्वका भिक्षवः सातिसाराः । कल्पसामन्तकाः । पूर्ववद् यावद् यथा पोषधवस्तुन्येवं

यथोक्ता उद्दानगाथा वाच्यम्। एकस्तु विशेषस्तत्र नैवासिका भिक्षवः सन्निषण्णाः सन्निपतिताश्चत्वारो वा उत्तरे वा दृष्ट्वापि वाच्यं पञ्च वा उत्तरे वेति।

उद्दानम्। वर्षोपगतकान् भिक्षून् ज्ञात्वा कलहकारकान्।
साखिल्यकेन प्रत्युद्गम्य नियतं चातुर्मासिके।
ग्लानकश्च वस्तु च वर्गो भवति समुद्यतः ॥३॥

आयुष्मान् उपाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति। यथापि तद् भदन्त वर्षोपगता भिक्षवः शृण्वन्ति भिक्षव आगच्छन्ति कलहकारका भण्डनकारका विग्रहकारका विवादकारका आधिकरणिकाः। तेऽस्माकं चोदयिष्यन्ति स्मारयिष्यन्ति। अलज्जितायो वैतरिकत्वेन। तैस्तेषां कथं प्रतिपत्तव्यम्। तैस्तूपालिन् भिक्षुभिर्द्वित्राणि वा पोषधकर्माणि अतिक्रम्य प्रवारयितव्यम्। सचेत्संपद्यते इत्येवं कुशलम्। नोचेत्संपद्यते तैर्भिक्षुभिर्द्वौ त्रयो वा आपदर्थका मण्डलकाः संमन्तव्याः। सचेत्संपद्यते इत्येवं कुशलम्। नोचेत्संपद्यते वाक्-साखिल्यकेन प्रत्युद्गम्य पात्रचीवरं प्रतिग्रहीतव्यम्। पात्रचीवरेणामोहयित्वा प्रमोह- G.M. 130
यित्वा प्रवारयितव्यम्। सचेत् संपद्यते इत्येवं कुशलम्। नोचेत्संपद्यते धर्मश्रवणं दातव्यम्। धर्मश्रवणेनामोहयित्वा प्रमोहयित्वा प्रवारयितव्यम्। सचेत्संपद्यते इत्येवं कुशलम्। नोचेत्संपद्यते तैरुपालिन् भिक्षुभिर्मण्डलकं गत्वा पोषधः कर्तव्यः। स चेत्ते एवं वदेयुः। अद्यायुष्मन्तः संघस्य प्रवारणा पाञ्चदशिका। कस्माद् यूयं पोषधं कुरुथेति। ते इदं स्युर्वचनीयाः। आगन्तुका यूयम् आयुष्मन्तो नैवासिका भिक्षवोऽनेनार्थेन। तेषामेवं भवति। नियतमायुष्मतां चातुर्मासिकी प्रवारणा भविष्यतीति। ततः पश्चात्तै-र्गतवेगैर्गतप्रत्यर्थिभिः पुनरपि प्रवारयितव्यः।

यथापि तत्तदेव प्रवारणायां पञ्चदश्यां ग्लानः अग्लानस्य प्रवारणां स्थापयति। ग्लानः इदं स्याद्वचनीयः। आगम[य]त्वमायुष्मन् ग्लानस्त्वम् अप्रयोगक्षमः। यथापि तत्तदेव प्रवारणायां पञ्चदश्यामग्लानो ग्लानस्य प्रवारणां स्थापयत्यग्लान इदं स्याद्वचनीयः। आगम[य] त्वमायुष्मन् ग्लानोऽसौ अप्रयोगक्षमः।

यथापि तत्तदेव प्रवारणायां पञ्चदश्यां ग्लानः ग्लानस्य दूतेन प्रवारणां स्थापयति। दूतः इदं स्याद्वचनीयः। आगमय त्वमायुष्मन् ग्लानोऽसौ अप्रयोगक्षमः। यथापि तत्तदेव प्रवारणायां . . . . . .।

वर्षावस्तु

G.M. 133 ...ततः पश्चात् क्रियाकारः आराधयितव्यः। शृणोतु भदन्तः संघः। अस्मिन्नावासेऽयं चायं च क्रियाकारः। यो युष्माकमुत्सहतेऽनेन चानेन च क्रियाकारेण वर्षामुपगन्तुं स शिलाकां गृह्णातु। न च वः केनचिद् भिक्षुणा [वर्षोपगतो भिक्षुश्चोदयितव्यः स्मारयितव्यः।] यो वः कस्यचित्किं [चिद्] विजानीते स इदानीं वदतु। मा पश्चादन्तवर्षे रणमुत्पादयिष्यथ। यो वः अन्तवर्षे रणमुत्पादयिष्यति तस्य संघे[न] उत्तरे उपपरीक्षितव्यं मंस्यते।

ततः पश्चात् शयनासनग्राहकेण भिक्षुणा शिलाकाश्चार[यितव्याः। आदौ देशकेन शिलाका ग्रहीतव्याः।] ततः पश्चात् संघस्थविरेणैव। आसनादुत्थाय शिलाकागृहैः शनैः स्थापयितव्याः। एवं यावत् संघनवकेन। श्रामणेरानाचार्योपाध्यायैः शिलाका ग्राहयितव्याः। ततः पश्चात् गणयितव्याः। अस्मिन्नावासे इयद्भिर्भिक्षुभिः [शिलाका गृहीतेति। ततः पश्चात् शयनासनग्रा]हकेण भिक्षुणा ताडवं कुञ्चिकां च गृहीत्वा संघस्थविरस्य पुरतः स्थित्वा वक्तव्यम्। स्थविर अमुको विहारः सलाभः सचीवरिकः। गृहाण। स चेद् गृह्णाति यत्संघस्थविरस्य विहारः स द्वितीयस्थविराय दातव्यः। [संघ]स्थविरो न गृह्णाति द्वितीयस्थविराय दातव्यः। द्वितीयस्थविरो न गृह्णाति तृतीयस्थविराय दातव्यः। सचेत् तृतीयस्थविरेण गृहीतो भवति।
G.M. 134 संघस्थविरो याचेत। प्रथमायां वाचि न दातव्यः। द्वितीयायां वाचि [न दातव्यः। तृतीयायां वाचि दातव्यः। सं]घस्थविरेण विनयाति[सा]रिणी दुष्ठुलापत्तिर्देशयितव्या। एवं यावत् संघनवकेन गृहीतस्य। सचेत्संघतृतीयनवको याचते प्रथमायां वाचि न दातव्यः। द्वितीयायां न दातव्यः। तृतीयायां दातव्यः। [संघतृतीयनवकेन विनयातिसारिणी दु]ष्ठुलापत्तिर्देशयितव्या।

भिक्षवः सर्वान् विहारानुद्दिशन्ति। आगन्तुका भिक्षवो विहन्यन्ते। भगवानाह। आगन्तुकानां भिक्षूणामर्थायानुद्दिष्टं वस्तु धारयितव्यम्। भिक्षवो द्वारकोष्ठकेऽप्युद्दिशन्ति। [भगवानाह। न द्वारकोष्ठके उद्देष्टव्यम्। भिक्षवोऽङ्गने उद्दिशन्ति। भगवानाह। नाङ्गने उद्देष्टव्यम्। भिक्षवः प्रासादे उद्दिशन्ति।] भगवानाह। प्रासादे नोद्देष्टव्यमिति। निरावासेषु प्रासादेषु काकचटकपारावता वासं कुर्वन्ति। भगवानाह। वारिको भिक्षुरुद्देष्टव्यः। तेन प्रत्यवेक्षितव्यम्। सचेद् अण्डानि अनतिरिक्तानि भवन्ति।

[अनतिरिक्तं निष्काप]यितव्यानि । [त्रैम्बुकत्रैला] टा वासं कुर्वन्ति । भगवानाह । प्रत्यवेक्षितव्यम् । अण्डान्यनतिरिक्तानि भवन्ति । शातयितव्यानि । अहो चेदतिरिक्तानि सूत्रकं बन्धितव्यं वृद्धिं न गमिष्यन्तीति । ततः पश्चात् शयनासनं दातव्यम् । G.M. 135 यदि तावदल्पानि वस्तूनि भवन्ति एवम् एकमेकं दातव्यं बहूनि भवन्ति द्वयं द्वयं वा] त्रयं त्रयं दातव्यम् । अपराणि महान्ति वस्तूनि भवन्ति । वृद्धवृद्धा भिक्षवः क्लाम्यन्ते परिकर्ममाणाः । भगवानाह । तान् निष्ठितानि दातव्यानि ।

ततः पश्चात् शयनासनग्राहकेण भिक्षुणा क्रियाकार आरोचयितव्यः । न केनचिद् भिक्षुणा शयनासनं [विना प्रत्यास्तरणेन परिभुञ्जितव्यम् ।] न कल्पप्रत्यास्तरणेन न प्लोतिकेन घनेन वा एकपुटप्लोतिकेन वा द्विपुटेन वा । यावत्सांघिकं शयनासनम् । अपरिभोगेण परिभुञ्जीत तस्य संघ उत्तरे उपपरीक्षितव्यं मंस्यते । शयनासनग्राहकेण भिक्षुणा[न्वर्धमासं शयनासनं या]वद् वृद्धं पश्यत्यपरिभोगेण शयनासनं परिभुञ्जानं संघेनारोचयित्वा आक्षेप्तव्यम् । आहोस्विन्नवकम् आचार्या उपाध्याया आरोचयित्वा आक्षेप्तव्यम् ।

ततः पश्चात् दानाग्र्यमारोचयितव्यम् । अमुकेन गोचरग्रामेण संघेन वर्षा उप-[गन्तव्येति आरोचयितव्यम् । ततः पश्चाद् भिक्षुणा गो]चरं वावलोकयित्वा छन्ने प्रविश्य वर्षा उपगन्तव्या । कथमावासोऽवलोकयितव्यः । किन्नु भविष्यन्ति येऽस्मिन् स्थाने विज्ञाः सब्रह्मचारिणो येऽनुत्पन्नं दुःखं दौर्मनस्यं नोत्पादयिष्यन्ति । उत्पन्नं च क्षिप्रमेव प्रतिविनोदयिष्यन्ति [ये सुखं वा सौमनस्यं जनयिष्यन्ति । पुद्गलस्य प्रव्रज्या]-यापनं च साधु च सुष्ठु चानुरक्षितव्यं मंस्यन्ते । ग्लानस्य चाग्लानोपस्थायिकः G.M. 136 एवमावासोऽवकल्पयितव्यः । कथं गोचरोऽवलोकयितव्यः । [किन्नु] अस्मिन्ग्रामो-पविचरग्रामे पिण्डकस्य दायकः ग्लानस्याच्छादनं भैषज्यदायकमित्येवं गोचरोऽवलोक-यितव्यः ।

ततः पश्चाच्छन्ने प्रविश्य भिक्षोर्यथावृद्धिकया समीचीं कृत्वा उत्कुटुकेन स्थित्वाञ्जलिं प्रगृह्य इदं स्याद्वचनीयम् । समन्वाहर त्वमायुष्मन् । अद्य संघवर्षोपस्थान-[मासार्धं षोडशम् । अहम्] एवं नामामुष्मिन्नावासेऽन्तःसीमे पूर्विकां त्रैमासीं वर्षामुपगच्छामि । अमुकेन वैयावृत्तकरेण अमुकेन गोचरग्रामेण यावदेवास्यावासस्य खण्डफुट्या प्रतिसंस्करणार्थमिह मे वर्षा [उपगच्छामि । एवं द्वितीयं तृतीयमारो-चयितव्यम् ।]

भिक्षवो वर्षा उपगन्तव्या न च पुनर्वर्षोषितेन भिक्षुणा बहिःसीमा गन्तव्या।
सचेद् गच्छति न तत्र वस्तव्यम्। उक्तं भगवता न हि भिक्षुणा वर्षोषितेन बहिःसीमा
गन्तव्या स चेद्गच्छति न तत्र वस्तव्यमिति। [हस्तिपालग्रामे उदयनगृह] पतिः
प्रतिवसति। तस्य गृहकलत्रं तु प्रत्युपस्थितम्। आत्मनो वेष्टनम्। तेन तत्र प्रभूतो
वस्तुलाभः आमिषलाभश्च समुपानीतः। तेन भिक्षूणां दूतोऽनुप्रेषितः। आगच्छन्तु
आर्याः परिभोक्ष्यन्ते इति। भिक्षवः पृच्छितुमारब्धाः किं [सातिरेकैस्त्रि]भिर्योजनैः
शक्ष्यामो यावदद्यैव गत्वागन्तुं न शक्ष्यामः। ते संलक्षयन्ति। उक्तं भगवता न भिक्षुणा
वर्षोपगतेन बहिःसीमा गन्तव्या। स चेद् गच्छति न तत्र वस्तव्यमिति। ते न गताः।
G.M. 137 तत्र ये भिक्षवो हस्तिपालग्रामो [पचारे वर्षोपगतास्तेषां] प्रभूतो वस्तुलाभः आमिष-
लाभश्चानुप्रदत्तः। ते त्रयाणां वार्षिकाणामत्ययात्कृतचीवरा निष्ठितचीवराः समादाय
पात्रचीवरं येन श्रावस्ती तेन चारिकां प्रक्रान्ताः। अनुपूर्वेण चारिकां चरन्तः श्रावस्ती-
मनुप्राप्ताः। दूरतो दृष्ट्वाभिहिताः। स्वागतं स्वागतमायुष्मन्तः। विश्रामिता उक्ताः।
कुतो यूयमायुष्मन्तः एतर्ह्यागच्छथ कुत्र वा स्थ। वर्षा उपगता हस्तिपालग्रामका
वयमायुष्मन्त एतर्ह्यागच्छामः। हस्तिपालग्रामके चास्म वर्षा उपगताः। किं यूयमायु-
ष्मन्तो हस्तिपालग्रामके सुखस्पर्शं वर्षा उषिताः न च स्थ क्लान्ताः पिण्डकेन। तत्र
वयमायुष्मन्तो हस्तिपालग्रामके सुखस्पर्शं वर्षा उपगताः। न चास्म क्लान्ताः पिण्डकेन।
यथाकथमायुष्मन्तो हस्तिपालग्रामके सुखस्पर्शं वर्षा उपगताः। न चास्म क्लान्ताः
पिण्डकेन। तत्र हस्तिपालग्रामके उदयनो नाम गृहपतिः प्रतिवसति। तस्य
गृहकलत्रं प्रत्युपस्थितम्। आत्मनो वेष्टनम्। तेनास्माकं प्रभूतो वस्तुलाभः आमिष-
लाभश्चानुप्रदत्तः। एवं वयमायुष्मन्तो हस्तिपालग्रामके सुखस्पर्शं वर्षा उषिताः। न
चास्म क्लान्ताः पिण्डकेन। ते कथयन्ति। आयुष्मन्तोऽस्माकमपि तेन गृहपतिना
दूतोऽनुप्रेषितः। आगच्छन्त्वार्याः परिभोक्ष्यन्त इति। तैरस्माभिः पृष्टः। कियद्दूरे
हस्तिपालग्रामकः। सातिरेकैस्त्रिभिर्योजनैः। तेषामस्माकं बुद्धिरुत्पन्ना। उक्तं भगवता
न भिक्षुणा वर्षोपगतेन बहिःसीमा गन्तव्या। सचेद् गच्छति न तत्र वस्तव्यमिति
वयं न गताः। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवान् संलक्षयति।
G.M. 138 आकांक्षति कतमः श्रावको वस्तुलाभमामिषलाभञ्च। यत्त्वहं भिक्षूणां सुखस्पर्शविहारार्थं
दातॄणां च देयधर्मपरिभोगार्थं सप्ताहमनुजानीयाम्। तस्मादनुजानामि सप्ताहमधिष्ठाय
गन्तव्यं करणीयेन।

उक्तं भगवता सप्ताहमधिष्ठाय गन्तव्यं करणीयेनेति। भिक्षवो न जानते कस्य

करणीयम् । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । उपासकस्य करणीयेन उपासिकायाः करणीयेन भिक्षोः करणीयेन भिक्षुण्याः शिक्षमाणायाः श्रामणेरकस्य श्रामणेरिकायाः करणीयेन ।

किमुपासकस्य करणीयेन । यथापि तदुपासकस्य गृहकलत्रं प्रत्युपस्थितं भवति आत्मनो वेष्टनम् । तेन तत्र प्रभूतो वस्तुलाभ आमिषलाभश्च समुपानीतः । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वार्याः परिभोक्ष्यन्ते । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय उपासकस्य करणीयेन । इदमुपासकस्य करणीयम् । अपरमप्युपासकस्य करणीयम् । यथापि तदुपासकश्चातुर्दिशे भिक्षुसंघे विहारं प्रतिष्ठापयितुकामो भवति । तेन तत्र प्रभूतो वस्तुलाभ आमिषलाभश्च समुपानीतः । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति आगच्छन्त्वार्याः परिभोक्ष्यन्ते । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय उपासकस्य करणीयेन । इदमुपासकस्य करणीयम् । अपरमप्युपासकस्य करणीयम् । यथापि तदुपासकः अस्मिन्नेव विहारे शयनासनमनुप्रदातुकामो भवति । तेन तत्र प्रभूतो वस्तुलाभः आमिषलाभश्च समुपानीतो भवति । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वा[र्याः] परिभोक्ष्यन्ते । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय G.M. 139 उपासकस्य करणीयेन । इदमुपासकस्य करणीयम् । अपरमप्युपासकस्य करणीयम् । यथापि तदुपासकस्तस्मिन्नेव विहारे ध्रुवभिक्षां प्रज्ञपयितुकामो भवत्यनुकूलयज्ञः । तेन तत्र प्रभूतो वस्तुलाभः आमिषलाभश्च समुपानीतो भवति । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वार्याः परिभोक्ष्यन्ते । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय उपासकस्य करणीयेन । इदमुपासकस्य करणीयम् । अपरमप्युपासकस्य करणीयम् । यथापि तदुपासकस्तस्मिन्नेव विहारे तथागतस्य शरीरस्तूपं प्रतिष्ठापयितुकामो भवति । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वार्या धर्मसहाया भविष्यन्ति । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय उपासकस्य करणीयेन । इदमुपासकस्य करणीयम् । अपरमप्युपासकस्य करणीयम् । यथापि तदुपासकस्तस्मिन्नेव स्तूपे यष्ट्यारोपणं छत्रारोपणं ध्वजारोपणं पताकारोपणम् । अलमेकं चन्दनसेकं कुंकुमसेकमनुप्रदातुकामो भवति । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वार्या धर्मसहाया मे भविष्यन्ति । गन्तव्यं भिक्षुणा उपासकस्य करणीयेन सप्ताहमधिष्ठाय । इदमुपासकस्य करणीयम् । अपरमप्युपासकस्य करणीयम् । यथापि तदुपासककरणीयं चतुर्णां सूत्रनिकायानामन्यतमान्यतमं सूत्रनिकायं विस्तरेणोद्दिष्टं भवति प्रवृत्तञ्च । तेन तत्र प्रभूतो वस्तुलाभ आमिषलाभश्च समुपानीतो भवति । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वार्याः परिभोक्ष्यन्ते । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय उपासकस्य करणीयेन । इदमुपासकस्य करणीयम् । अपरमप्युपासकस्य करणीयम् । यथापि तदुपासकस्य G.M. 140

कौकृत्यमुत्पन्नं भवति। स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति। आगच्छन्त्वार्याः उत्पन्नं कौकृत्यं प्रतिविनोदयिष्यन्ति। गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय उपासकस्य करणीयेन। इदमुपासकस्य करणीयम्। अपरमप्युपासकस्य करणीयम्। यथापि तदुपासकस्य पापकं दृष्टिगतमुत्पन्नं भवति। स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति। आगच्छन्त्वार्या उत्पन्नं पापकं दृष्टिगतं प्रतिनिसृजापयिष्यन्ति। गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय उपासकस्य करणीयेन। इदमुपासकस्य करणीयम्। अपरमप्युपासकस्य करणीयम्। यथापि तत्संघ उपासकस्य संघेन पात्रं निकुब्जयितुकामो भवति। स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति। आगच्छन्त्वार्या धर्मेण पक्षं भजिष्यन्ति। गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय उपासक[स्य] करणीयेन। इदमुपासकस्य करणीयम्। अपरमप्युपासकस्य करणीयम्। यथापि तदुपासकस्य संघेन पात्रं निकुब्ज[मुत्कुब्जाप]यितुकामो भवति। स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति। आगच्छन्त्वार्याः पात्रं निकुब्जमुत्कुब्जापयिष्यथ। गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय उपासकस्य करणीयेन। इदमुपासकस्य करणीयम्। अपरमप्युपासकस्य करणीयम्। यथापि तदुपासकस्य आबाधिको दुःखितो बाढग्लानः। स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति। आर्या वाचं दास्यन्ति। गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय उपासकस्य करणीयेन। इदमुपासकस्य करणीयम्।

किमुपासिकायाः करणीयम्। [एतदेव सर्वमुपासिकायाः करणीयं] स्थापयित्वा गृहकलत्रमात्मनो वेष्टनं च।

G.M. 141 किं भिक्षोः करणीयम्। यथापि तद्भिक्षुश्चातुर्दिशे भिक्षुसंघे आरामं निर्यातयितुकामो भवति। तेन तत्र प्रभूतो वस्तुलाभ आमिषलाभश्च समुपानीतो भवति। स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति। आगच्छन्त्वायुष्मन्तः परिभोक्ष्यन्ते। गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय भिक्षोः करणीयेन। इदं भिक्षोः करणीयम्। अपरमपि भिक्षोः करणीयम्। यथापि तद्भिक्षुरस्मिन्नेवारामे विहारं शयनासनं ध्रुवभिक्षां तथागतस्य शारीरस्तूपम्। अलमेकं यष्ट्यारोपणं ध्वजारोपणं सूत्रनिकायानामन्यतमान्यतमं सूत्रनिकायं कौकृत्यं पापकं दृष्टिगतमुत्पन्नं भवति। स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति। आगच्छन्त्वायुष्मन्तः उत्पन्नं पापकं दृष्टिगतं प्रतिनिसृजापयिष्यन्ति। गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय भिक्षोः करणीयेन। इदं भिक्षोः करणीयम्। पूर्ववत् सर्वं विस्तरेण वाच्यम्।

अपरमपि भिक्षोः करणीयम्। यथापि तत्संघो भिक्षोरिमान्येवंरूपाणि प्रणिधिकर्माणि कर्तुकामो भवति। तद्यथा तर्जनीयं कर्म निगर्हणीयं प्रवासनीयं प्रतिसंहरणीयम्

अदर्शनायोत्क्षेपणीयम् अप्रतिकर्मणयोत्क्षेपणीयम् अप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयं कर्म । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वायुष्मन्तो धर्मेण पक्षं भजिष्ये । अभिगन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय भिक्षोः करणीयेन । इदं भिक्षोः करणीयम् । अपरमपि भिक्षोः करणीयम् । यथापि तत्संघेन भिक्षोरिमान्येवंरूपाणि प्रणिधिकर्माणि कृतानि भवन्ति । तद्यथा तर्जनीयं कर्म निगर्हणीयं कर्म प्रवासनीयं प्रतिसंहरणीयम् अदर्शनायो- G.M. 142 त्क्षेपणीयम् अप्रतिकर्मणयोत्क्षेपणीयम् अप्रतिनिसृष्टे पापके दृष्टिगते उत्क्षेपणीयं कर्म । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वायुष्मन्तो वाचं भा[षि]ष्यन्ति उसारयिष्यन्ति । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय भिक्षोः करणीयेन । इदं भिक्षोः करणीयम् । अपरमपि भिक्षोः करणीयम् । यथापि तद्भिक्षुराबाधिको दुःखितो बाढग्लानो भवति । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वायुष्मन्तो वाचं भा[षि]ष्यन्ति । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय भिक्षोः करणीयेन । इदं भिक्षोः करणीयम् ।

किं भिक्षुण्या करणीयम् । स्थापयित्वा प्रणिधिकर्माणि ।

किं शिक्षमाणायाः करणीयम् । एतदेव सर्वं शिक्षमाणायाः करणीयम् । अपरमपि शिक्षमाणायाः करणीयम् । यथापि तत् शिक्षमाणो द्वे वर्षे षट्सु धर्मेषु षट्स्वनुधर्मेषु शिक्षितं भवति । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वार्या उपसंपादयिष्यन्ति । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय शिक्षमाणायाः करणीयेन । इदं शिक्षमाणायाः करणीयम् ।

किं श्रामणेरकस्य करणीयम् । एतदेव सर्वं श्रामणेरकस्य करणीयम् । अपरमपि श्रामणेरकस्य करणीयम् । यथापि तच्छ्रामणेरकः स परिपूर्णविंशतिवर्षो भवति । स भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वायुष्मन्तः उपसम्पादयिष्यन्ति । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय श्रामणेरकस्य करणीयेन । इदं श्रामणेरकस्य करणीयम् ।

किं श्रामणेरिकायाः करणीयम् । एतदेव सर्वं श्रामणेरिकायाः करणीयम् । G.M. 143 अपरमपि श्रामणेरिकायाः करणीयम् । यथापि तच्छ्रामणेरिका गृहादाप्ता द्वादशवर्षा भवति । कुमारिका कुभावा अष्टादशवर्षा । सा भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयति । आगच्छन्त्वार्याः । द्वे वर्षे षट्सु धर्मेषु षट्स्वनुधर्मेषु शिक्षां दास्यन्ति । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय श्रामणेरिकायाः करणीयेन । इदं श्रामणेरिकायाः करणीयम् ।

उद्दानम्

भैषज्यमुपस्थापकः स्त्री पुरुषः पण्डकः ।
निमित्तं निश्रयो ज्ञातयः अन्तरायेण प्रक्रमेत् ॥१॥

यथापि तद्वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहमस्मिन्नावासे वर्षा उपगतः । न च मेऽस्ति कश्चित्पिण्डकस्य दाता । सोऽहं पिण्डकमलभमानः क्लमेयं कालं वा कुर्याम् । स मे स्यादन्तरायः अप्राप्तस्य प्राप्तये । अनधिगतस्याधिगमाय । असाक्षात्कृतस्य साक्षात्क्रियायै । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात् प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहमस्मिन्नावासे वर्षा उपगतः । न च मे कश्चिद् ग्लानस्य ग्लानोपस्थापकस्य भैषज्यमलभमानः क्लमेयं वा कालं कुर्याम् । स मे स्यादन्तरायः अप्राप्तस्य प्राप्तये । अनधिगतस्याधिगमाय । असाक्षात्कृतस्य
G.M. 144 साक्षात्क्रियायै । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात्प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्वर्षोपगतस्य भिक्षोः स्त्री उपसंक्रम्य अप्रतिरूपया उपनिमन्त्रणया उपनिमन्त्रयति । [वस आर्य रम आर्य] दुहितरन्ते दास्यामि स्नुषान्ते दासीं ते कर्मकरीं ते दास्यामि । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहमस्मिन्नावासे वर्षा उपगतः । इयं च मे स्त्री उपसंक्रम्य अप्रतिरूपया उपनिमन्त्रणया उपनिमन्त्रयति । वस आर्य रम आर्य। अहं ते उपस्थास्यामि दुहितरं ते दास्यामि स्नुषां ते दासीं ते कर्मकरीं ते दास्यामि । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात्प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्वर्षोपगतं भिक्षुं पुरुष उपसंक्रम्याप्रतिरूपया उपनिमन्त्रणया उपनिमन्त्रयति । वस आर्य रम आर्य । दुहितरं ते दास्यामि स्नुषां ते दासीं ते कर्मकरीं ते दास्यामि । तद् वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । [अह]मस्मिन्नावासे वर्षा उपगतः । अयं च मे पुरुष उपसंक्रम्याप्रतिरूपया उपनिमन्त्रणया उपनिमन्त्रयति । वस आर्य रम आर्य । दुहितरं ते दास्यामि स्नुषां ते दासीं ते कर्मकरीं ते दास्यामि । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात्प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

G.M. 145 यथापि तद्वर्षोपगतं भिक्षुं षण्डक उपसंक्रम्याप्रतिरूपया उपनिमन्त्रणया उपनिमन्त्रयति । वस आर्य रम आर्य। अहं ते उपस्थास्यामि दासीं ते कर्मकरीं ते दास्यामि ।

तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहमस्मिन्नावासे वर्षा उपगतः । अयं च मे षण्डक उपसंक्रम्याप्रतिरूपया उपनिमन्त्रणया उपनिमन्त्रयति । वस आर्य रम आर्य । अहं ते उपस्थास्यामि । दासीं ते कर्मकरीं ते दास्यामि । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात्प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्वर्षोपगतेन भिक्षुणा अन्यतमान्यतमं शिशुमुदारवर्णं रञ्जनीयं मातृग्रामं दृष्ट्वा अयोनिशो निमित्तमुद्गृहीतं भवति । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहमस्मिन्नावासे वर्षा उपगतः । मया चान्यतमान्यतमं शिशुमुदारवर्णं रञ्जनीयं मातृग्रामं दृष्ट्वा अयोनिशो निमित्तमुद्गृहीतम् । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात् प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्वर्षोपगतस्य भिक्षोर्निधय उपदर्शयन्ति । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । [अहम]स्मिन्नावासे वर्षा उपगतः । इदमेव निधय उपदर्शयन्ति । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः [श्रामण्यान्तरायो] ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात्प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं G.M. 146 कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्वर्षोपगतं भिक्षुं ज्ञातय उपसंक्रम्याप्रतिरूपया उपनिमन्त्रणया उपनिमन्त्रयन्ति । कस्मात्त्वमार्य मुण्डः पात्रपाणिरनुवेश्मानुवेश्म कुलान्युपसंक्रामसि । इमानि च ते शीतलानि काषायाणि वस्त्राणि कायं परितापयन्ति । एहि त्वमार्य निषद्य कामांश्च परिभुङ्क्ष्व दानानि च देहि पुण्यानि च कुरु । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहमस्मिन्नावासे वर्षा उपगतः । इमे चेमे ज्ञातयः उपसंक्रम्याप्रतिरूपया उपनिमन्त्रणया उपनिमन्त्रयन्ति । कस्मात् त्वमार्य मुण्डः पात्रपाणिरनुवेश्मानुवेश्म कुलान्युपसंक्रामसि । इमानि च ते शीतलानि काषायाणि वस्त्राणि कायं परितापयन्ति । एहि त्वमार्य निषद्य कामांश्च परिभुङ्क्ष्व दानानि च देहि पुण्यानि च कुरु । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः [श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः] । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात्प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्राजा चतुरङ्गं बलकायं सन्नाह्य हस्तिकायमश्वकायं रथकायं पत्तिकायं यावदाराम[द्वार]मागत्य यथागृहीतकं घोषयति । गृह्णन्तु भवन्तः श्रमणान्

शाक्यपुत्रीयान् पूर्ववद्यथा प्रवारणावस्तुन्येवं विस्तरेण वाच्यम् । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहमस्मिन्नावासे वर्षा उपगतः । अयं च राजा चतुरङ्गं बलकायं G.M. 147 सन्नाह्य पूर्ववद्यावत्सचेदहमस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात्प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्वर्षोपगतो भिक्षुर्यं स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतो भवति स राज्ञा उपगृहीतो भवति बद्धो वा घातितो वा सन्तःस्वापतेयं वास्यापहृतम् । राजभयेन वा परराष्ट्रं परविषयं निष्पलान उच्छिद्य वा कालगतः । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहमस्मिन्नावासे यं स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतः स राज्ञा गृहीतो बद्धो वा घातितो वा सन्तःस्वापतेयं वास्यापहृतम् । राजभयेन वा परराष्ट्रं परविषयं निष्पलान उच्छिद्य कालगतः । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात्प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तच्चौरा गृहघातं वा नगरघातं वा जनपदघातं वा कृत्वा आरामद्वारमागत्य गां वा हत्वा महिषीं वा छागलिकां वा रुधिराङ्ककानि रुधिरविलेखकानि कृत्वा भिक्षूणां दूतमनुप्रेषयन्ति । निर्गच्छन्त्वार्या वयमत्र वत्स्यामः । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहमस्मिन्नावासे वर्षा उपगतः । इमे चेमे चौरा ग्रामघातं कृत्वा पूर्ववद्यावदस्मादावासात्प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

G.M. 148 यथापि तद्भिक्षुर्यं स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतो भवति स चौरैर्गृहीतो भवति । चौरभयेन वा परराष्ट्रं परविषयं निष्पलान उच्छिद्य वा कालगतः । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । 'अहमस्मि [न्नावासे] यं स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतः । [स चौरैर्गृहीतो बद्धो वा घातितो वा सन्तःस्वापतेयं वास्यापहृतम् । चौरभयेन वा परराष्ट्रं परविषयं निष्पलान उच्छिद्य वा कालगतः ।] अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा [वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः। यत्त्वहमस्मादावासात् प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात् प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृ] त्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तदन्यतमेन महल्लेन बालेन मूढेनाऽव्यक्तेनाकुशलेन [गोचरे वा गोचरमार्गे वा कुलस्त्री वा कुलकुमारी वा आकृष्टा भवत्याभाष्टा परामृष्टा वा । मनुष्या प्रकुप्य

आरामद्वारमागत्य यथागृहीतकमुद्घोपयन्ति। पूर्ववद् या]वत्स तस्मादावासात् प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्भिक्षुर्यं स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतो भवति। [स मनुष्येणोपगृहीतो भवति बद्धो वा घातितो वा सन्तःस्वापतेयं वास्यापहृतम्। मनुष्यभयेन वा परराष्ट्रं परवि]षयं निष्पलानः उच्छिद्य वा कालगतः। तत्र वर्षोषितस्य भिक्षोरेवं भवति। अहमस्मिन्नावासे यं [स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतः स मनुष्येणोपगृहीतो बद्धो वा घातितो वा सन्तःस्वापतेयं वास्यापहृतम्। मनुष्यभयभीतो] परराष्ट्रं वा परविषयं निष्पलानः उच्छिद्य वा कालगतः। अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे [अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो G.M. 149
ब्रह्मचर्यान्तरायः। यत्त्वहमस्मादावासात् प्रक्रामेयम्। स तस्मादावासात्प्रक्रामत्येतदे]व प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्विहारः अमनुष्याध्युषिते प्रदेशे प्रतिष्ठापितो भव[ति। अन्यतमेन च महल्लेन बालेन मूढेनाव्यक्तेनाकुशलेनाप्रतिरूपे प्रदेशे उच्चारप्रस्रावं पूर्ववद् यावत् शयनासनं प्रविक्षिप्तम्। स तस्मादावासात् प्र]क्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्भिक्षुर्यं स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य [वर्षा उपगतो भवति। सः अमनुष्यगृहीतो बद्धो वा घातितो वा सन्तःस्वापतेयं वास्यापहृतम्। अमनुष्यभयभीतः परराष्ट्रं वा] परविषयं निष्पलानः उच्छिद्य वा कालगतः। तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति। अहमस्मिन्नावा [से स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतः। सः अमनुष्येण गृहीतो बद्धो वा घातितो वा सन्तःस्वापतेयं वास्यापहृतम्। अमनुष्यभयभीतो] वा परराष्ट्रं परविषयं निष्पलानः उच्छिद्य वा कालगतः। अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा उपगच्छेयं स्या[न्मे अतो निदानं जीवितान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः श्रामण्यान्तरायः। यत्त्वहमस्मादावासात् प्रक्रामेयम्। स तस्मादावासात् प्रक्रामत्येतदेव प्रत्य]यं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्विहारः व्याडाध्युषिते प्रदेशे प्रतिष्ठापितो भवति। अन्यतमेन च महल्लेन बालेन पूर्ववद् यावत् शयनासनं प्रविक्षिप्तम्। व्याडाः प्रकुपिताः गोचरेऽवतिष्ठन्ति गोचरमार्गे चंक्रमे मेड्यां द्वारकोष्ठकेऽपि भिक्षूनध्याविशन्ति। तत्र वर्षोपगतस्य G.M. 150

भिक्षोरेवं भवति । पूर्ववद् यावत् स तस्मादावासात् प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्भिक्षुर्यँ स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य [वर्षा उपगतो भवति ।] स व्याडैर्गृहीतो बद्धो वा घातितो वा सन्तःस्वाप[तेयं वास्यापहृतम् । व्याडभयभीतः परराष्ट्रं वा परविषयं निष्पलानः उच्छिद्य वा कालगतः । अहमस्मिन्नावासे स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतः । स व्याडैर्गृहीतः पूर्ववत् यावत् कालगतः । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवि]तान्तरायो श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात्प्रक्राम[त्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्विहारो नागाध्युषिते प्रदेशे प्रतिष्ठापितो भवति । अन्यतमेन महल्लेन बालेन पूर्ववत् यावत् शयनासनं प्रविक्षिप्तम् । नागाः प्रकुपिता गोचरेऽपि तिष्ठन्ति गोचरमार्गेऽपि पूर्ववत् यावत् अध्याविशन्ति । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । पूर्ववद् यावत् स तस्मादावासात् प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृ]त्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्भिक्षुर्यँ स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतः । स नागैर्गृही[तो बद्धो वा घातितो वा सन्तःस्वापतेयं वास्यापहृतम् । नागभयभीतो परराष्ट्रं वा परविषयं निष्पलानः उच्छिद्य वा कालगतः । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति ।]
G.M. 151 अहमस्मिन्नावासे स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतः । स नागैर्गृहीतो वा बद्धो वा घातितो वा [सन्तःस्वापतेयं वास्यापहृतम् । पूर्ववत् यावत् कालगतः । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो] निदानं जीवितान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः श्रामण्यान्तरायः । यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात् प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्विहारो दावमध्ये प्रतिष्ठापितो भवति । अग्निर्मुक्तः इत्यग्निर्ग्रामनिगमराजराष्ट्रधानीं दहन् परैति । गोचरमपि दहति गोचरमार्गमपि चंक्रमं मेडीं द्वारकोष्ठकं विहारमपि दहति विहारसामन्तकमपि । पूर्ववत् यावत् [स तस्मादावासात्] प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्भिक्षुर्यँ स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतः । सः अग्निना दग्धः । अग्निभयेन [वा] परराष्ट्रं परविषयं निष्पलानः उच्छिद्य वा कालगतः । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहमस्मिन्नावासे स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतः । सोऽग्निना

दग्धः सन्तःस्वापते [यं वास्याग्निना दग्धम् । अग्निभयेन परराष्ट्रं वा परविषयं निष्पलानः उच्छिद्य वा कालगतः । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहं] स्त्रीपुरुषपण्डक-मुपनिश्रित्य वर्षा उपगतः । सोऽग्निना दग्धः सन्तःस्वापतेयं वास्याग्निना दग्धम् । अग्निभयेन वा [परराष्ट्रं वा परविषयं निष्पलानः उच्छिद्य वा कालगतः । तत्र वर्षोप-गतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवि-तान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः श्रामण्यान्तरायः ।] यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स G.M. 152
तस्मादावासात्प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

[यथापि तद्विहारः अनूपमध्ये प्रतिष्ठापितो भवति । उपरि पर्वतसंक्षेपे स्थूल-विन्दुको देवो वर्षन् ग्रामनिगमराजराष्ट्रधानीं वहन् परैति । गोचरमपि पूर्ववत् यावत् संस्यन्दयति । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहं च अस्मिन्नावासे वर्षा उपगतः । अयं विहारः अनूपमध्ये प्रतिष्ठापितः । उपरि पर्वतसंक्षेपे पूर्ववत् यावत् स तस्मादावासात् प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्भिक्षुर्यं स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य वर्षा उपगतः । स उदकेनोढः सन्तः-स्वापतेयं वास्योदकेनोढं भवति । उ[च्छिद्य वा कालगतः । तत्र वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहमस्मिन्नावासे स्त्रीपुरुषपण्डकमुपनिश्रित्य] वर्षा उपगतः । स उदकेनोढः उदकभयेन वा परराष्ट्रं परविषयं निष्पलानः उच्छिद्य वा [कालगतः । तस्य वर्षोपगतस्य भिक्षोरेवं भवति । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयं स्यान्मे अतो निदानं जीवितान्तरायः श्रामण्यान्तरायो ब्रह्मचर्यान्तरायः । यत्त्वहमस्मादावासात् प्रक्रामे-यम् । स तस्मादावा]सात्प्रक्रामत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

उद्दानम्

अना[प]त्तिः संवासेन प्रति [संस्कर्तव्यम् ।
पूर्वं द्वादश पश्चिमं च द्वादश] ॥२॥

यथापि तद्वर्षोपगतो भिक्षुः पश्यति । अस्मिन्नावासे भिक्षुर्ज्ञापयति संज्ञापयति G.M. 153
शिक्षयति ग्राहयति संघभेदाय पराक्रामति । स्थानमेतद्विद्यते यदस्मिन्नेवान्तर्वर्षे संघो भिद्यते । त [स्य वर्षोपगतस्य भिक्षोरेतदभवत् । अस्मिन्नावासे वर्षोपगतो भिक्षुर्ज्ञा-पयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघभेदाय] पराक्रामति । स्थानमेतद्विद्यते यद-स्मिन्नेवान्तर्वर्षे संघो भिद्यते । अहं चेदस्मिन्नावासे वर्षा वसेयम् । [असमग्रचित्तो भवेयं चाप्राप्तस्य प्राप्तये अनधिग] तस्याधिगमाय असाक्षात्कृतस्य साक्षात्क्रियायै ।

यत्त्वहमस्मादावासात्प्रक्रामेयम् । स तस्मादावासात्प्रक्रा[मत्येतदेव प्रत्ययं कृत्वा अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्वर्षोपगतो भिक्षुः शृणोति । अमुष्मिन् आवासे भिक्षुस्तथा तथा ज्ञापयति] संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रामति । स्थानमेतद्विद्यते यत्त्वमुष्मिन्नावासेऽन्त [र्वर्षे संघो भिद्येत । स भिक्षुर्मम आलप्तकः संलप्तकः संस्तुतकः सप्रेमकः । तस्य भिक्षोरेतदभवत् । स चेत् तत्र गत्वा मया एवं कर्तव्यं] यथा तस्मिन्नावासे अस्मिन्नेवान्तर्वर्षे संघो न भिद्येत । गन्तव्यं भिक्षुणा सप्ताहमधिष्ठाय संघस्य क[रणीयेन । सचेद् गच्छतीत्येवं कुशलं नो चेद्गच्छति सातिसारो भवति । सचेत्तुगतस्य सप्ताहोऽतिक्रान्तः] अनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

यथापि तद्वर्षोपगतो भिक्षुः शृणोति । अमुष्मिन्नावासे भिक्षुर्भिक्षुं तथा तथा ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति संघस्य भेदाय पराक्रामति । स्थानमेतद् विद्यते
G.M. 154 यत्त्वमुष्मिन्नावासे अन्तर्वर्षे संघो भिद्येत । अस्ति तस्य भिक्षोरालप्तकः संलप्तकः संस्तुतकः सप्रेमकः । अपितु यस्यासौ भिक्षुरालप्तकः संलप्तकः संस्तुतकः [सप्रेमकः स ममापि आलप्तकः संलप्तकः सप्रेमकः । तस्य भिक्षोरेतदभवत् । स चेत् तत्र गत्वा मया एवं कर्तव्यं यथा तस्मिन्नावासे अस्मिन्नेवान्तर्वर्षे संघो न भिद्येत । गन्तव्यं भिक्षुणा संघ]करणीयेन । स चेद्गच्छतीत्येवं कुशलं नो चेद्गच्छति सातिसारो भवति । सचेत्तु गतस्य सप्ताहोऽतिक्रान्तोऽनापत्तिर्वर्षोच्छेदे ।

[यथापि तद्भिक्षुः प्रतिशृणोति । अमुष्मिन्नावासे पूर्विकां त्रैमासीं वत्स्ये तस्मिन्नावासे तौ वसतः । पोषधान्ते] तस्यैवं भवति । इहापि मे वसतः स एव । [तत्रापि] मे वसतः [स एव । स प्रतिश्रुत्य तस्मिन्नावासे न वसति । प्रतिश्रवेण दुष्कृतः] । तस्यैवं भवति । इहापि मे वसतः स एव । [तत्रापि] मे वसतः · · ·

[यथापि तद्भिक्षुः प्रतिशृणोति । अमुष्मिन्नावासे पूर्वि]कां त्रैमासीं वत्स्ये । स प्रतिश्रुत्य गच्छति । गत्वा शलाकादीन्न प्रतिगृह्णाति । तस्मिन्नावासे पूर्विकां त्रैमासीं न प्रज्ञायते । प्रतिश्रवेण च दुष्कृतः ।

[यथापि तद् भिक्षुः प्रतिशृणोति । अमुष्मिन्नावासे पूर्विकां त्रैमासीं वत्स्ये । स प्रतिश्रुत्य गच्छति । गत्वा शलाकादीन् गृह्णाति । पश्चात् शयनासनं न प्रतिगृह्णाति । अपि] च तस्य तस्मिन्नावासे पूर्विकां त्रैमासीं न प्रज्ञायते । प्रतिश्रवेण च दुष्कृतः ।

यथापि तद्भिक्षुः प्रतिश्रृणोति अमुष्मिन्नावासे पूर्विकां त्रैमासीं वत्स्ये। [स प्रतिश्रुत्य गच्छति। गत्वा शलाकादीन् प्रतिगृह्णाति शयनासनं च। स प्रतिश्रुत्य कृत्यकरणीयेन गच्छति। अपि च तस्य तस्मिन्नावासे पूर्विकां त्रै]मासीं न प्रज्ञायते। प्रतिश्रवेण च दुष्कृतः। G.M. 155

यथापि तद्भिक्षुः प्रतिश्रृणोति। अमुष्मिन्नावासे पूर्विकां त्रैमासीं वत्स्ये। स प्रतिश्रुत्य गच्छति। गत्वा स शलाकादीन् प्रतिगृह्णाति [शयनासनं च। स प्रतिश्रुत्य कृत्यकरणीयेन सप्ताहमनधिष्ठाय सीमातिक्रान्तः। तत्र गत्वापि च तस्य अमु]ष्मिन्नावासे पूर्विकां त्रैमासीं न प्रज्ञायते। प्रतिश्रवेण च दुष्कृतः।

[यथापि तद्भिक्षुः प्रतिश्रृणोति। अमुष्मिन्नावासे पूर्विकां त्रैमासीं वत्स्ये। स प्रतिश्रुत्य गच्छति। गत्वा स शलाकादीन् प्रतिगृह्णाति शयनासनं च। कृत्यकरणीयेन सप्ताहमधिष्ठाय सीमातिक्रान्तः। अपि च तस्य अमुष्मिन्नावासे पूर्विकां त्रैमासीं न प्रज्ञायते। प्रतिश्रवेण न दुष्कृतः।] स चेत्तत्र [कृत्यकरणीयेन] सप्ताहोऽतिक्रान्तः अनापत्ति[र्वर्षोच्छेदे। षट्कर्म एवं कर्तव्यम्। यथा पूर्विकां त्रैमासीं तथापि पश्चिमिकां] त्रैमासीम्।

वर्षावस्तु समाप्तम् ॥

चर्मवस्तु

G.M. 159 उद्दानम् ।

पञ्चभिरुपसंप [दाशयनासन] ··· ··· ।
··· ··· ··· ॥१॥

[बुद्धो भगवाञ्छ्रावस्त्यां विहरति स्म जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे । तस्मिन् समयेऽश्मकनगरान्तके वासव] ग्रामके बलसेनो नाम गृहपतिः प्रतिवसत्याढ्यो महाधनो महाभोगो [विस्तीर्णविशालपरिग्रहो वैश्रवणधनप्रतिस्पर्द्धी । तेन सदृशात् कुलात् कलत्रमानीतम् । स तया सार्द्धं क्रीडति रमते परिचारय]ति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयतो न पुत्रो न दुहिता । [सोऽपुत्रः पुत्राभिनन्दी शिव-वरुण-कुबेर-शक्र-ब्रह्मादीनायाचते । आरामदेवतां वनदेवतां शृङ्गाटकदेवतां बलि]प्रतिग्राहिकां देवतां सहजां सहधर्मिकां नित्यानुबद्धामपि देवतामायाचते । अस्ति चैष लोकप्रवा[दो यदा याचनहेतोः पुत्राः जायन्ते दुहितरश्चेति । तच्च नैवम् । यद्येवमभविष्यदेकैकस्य पुत्रसहस्रमभविष्यत् तद् यथा राज्ञश्चक्रवर्तिनः । अपि तु त्रयाणां स्थाना] नां सम्मुखीभावात् पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च । कतमेषां त्रयाणाम् । मातापितरौ रक्तौ भवतः संनिपतितौ माता कल्या भवति ऋतुमती गन्धर्वश्च प्रत्युपस्थितो भवति । एषां त्रयाणां स्थानानां सम्मुखीभावात् पुत्रा जायन्ते दुहितरश्च । स चैवमायाचनपरस्तिष्ठति ।

G.M. 160 अन्य तमश्च स [त्त्वश्चरमभविकश्चरितैषी गृहीतमोक्षमार्गोऽन्तर्मुखो निर्वाणे बहिर्मुखः संसाराद् अनर्थिकः सर्वभ]वगतिच्युत्युपपत्तिषु अन्तिमदेहधारी अन्यतमस्मात् देवनिकायाच्च्युत्वा तस्याः प्रजापत्याः कुक्षिमवक्रान्तः । पञ्चावेणिका धर्मा एकत्ये पण्डितजातीये मातृग्रामे । कतमे [पञ्च । रक्तं पुरुषं जानाति विरक्तं जानाति । कालं जानाति ऋतुं जानाति । गर्भमवक्रान्तं जानाति । यस्य सका]शाद् गर्भमवक्रामति तं जानाति । दारकं जानाति । दारिकां जानाति । सचेद् दारको भवति दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति । सचेद् दारिका भवति वामं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति । [सात्तमनात्तमनाः स्वामिनम् आरोचयति । दिष्ट्यार्यपुत्र वर्द्धस्वापन्नसत्त्वास्मि संवृत्ता । यथा च] मे दक्षिणं कुक्षिं निश्रित्य तिष्ठति नियतं दारको भविष्यति । सोऽप्यात्तमनात्तमना उदानमुदानयति । अप्येवाहं चिरकालाभिलषितं पुत्र[मुखं पश्येयं सम]-जातो मे स्यान्नावजातः । कृत्यानि मे कुर्वीत भृतः प्रतिबिभृयाद्दायाद्यं प्रतिपद्येत कुल-

वंशो मे चिरस्थितिकः स्यात्। अस्माकं चाप्यतीतकालगतानामल्पं वा प्रभूतं वा दानानि दत्त्वा पुण्यानि कृत्वा अस्माकं नाम्ना दक्षिणामादेक्ष्यति। इदं [तयोर्यत्र G.M. 161 यत्रोपपन्नयोर्गच्छतोरनुगच्छत्विति। आपन्नसत्त्वां चैनां विदित्वा उपरि प्रासादतलगतामयन्त्रि]तां धारयति शीते शीतोपकरणैरुष्णे उष्णोपकरणैर्वैद्यप्रज्ञप्तैराहारैर्नातितिक्तैर्नात्यम्लैर्नातिलवणैर्नातिमधुरैर्नातिकटु [कैर्नातिकषायैस्तिक्ताम्ललवणमधुरकटुककषायविवर्जितैराहारैर्हारार्द्धहारविभूषितगात्रीम्] अप्सरसमिव नन्दनवनविचारिणीं मञ्चान्मञ्चं पीठात् पीठम् अनवतरन्तीम् अधरिमां भूमिम्। न चास्या किञ्चिदमनोज्ञशब्दश्रवणं यावद् [एव गर्भस्य परिपाकाय। साष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात् प्रसूता। दारको जातः। अभिरूपो दर्शनीयः] प्रासादिको गौरः कनकवर्णश्छत्राकारशिराः प्रलम्बबाहुर्विस्तीर्ण- [विशाल]-ललाटः सङ्गतभ्रूरुत्तुङ्गनासो रत्नप्रत्युप्तिकया कर्णिकया आमुक्तयालङ्कृतः। बल [सेनेन गृहपतिना रत्नपरीक्षका आहूयोक्ताः। भवन्तो रन्तानां मूल्यं कुरुत इति। न शक्यते रत्नानां] मूल्यं कर्तुम् [इति]। धर्मता खलु यस्य रत्नस्य न शक्यते मूल्यं कर्तुं तस्य कोटिर्मूल्यं क्रियते। ते कथयन्ति। गृहपते एषां रत्नानां कोटिर्मूल्यम् इति। तस्य ज्ञातयः [संगमय समागमय त्रीणि सप्तकान्येकविंशतिदिवसानि विस्तरेण जातस्य जातिमहं कृत्वा नामधेयं व्यवस्था] पयन्ति। किं भवतु G.M. 162 दारकस्य नामेति। ज्ञातय ऊचुः। अयं दारकः कोटिमूल्यया रत्नप्रत्युप्तिकया [आमुक्तया] जातः श्रवणेषु च नक्षत्रेषु। भवतु दारकस्य श्रो[णः कोटीकर्ण इति नाम। यस्मिन्नेव दिवसे श्रोणः कोटीकर्णो जातस्तस्मिन्नेव दिवसे बलसेनस्य गृहपतेर्द्वौ प्रेष्य] दारकौ जातौ। तेनैकस्य दासक इति नामधेयं व्यवस्थापितम् अपरस्य पालक इति। श्रोणः कोटीकर्णोऽष्टाभ्यो धात्रीभ्योऽनुप्रदत्तो द्वाभ्याम् अंसधात्रीभ्यां द्वाभ्यां [क्रीडनिकाभ्यां द्वाभ्यां मलधात्रीभ्यां द्वाभ्यां क्षीरधात्रीभ्याम्। सोऽष्टाभिर्धात्रीभिरुन्नीयते वर्द्ध्यते क्षीरेण दध्ना] नवनीतेन सर्पिषा सर्पिर्मण्डेनान्यैश्चोत्तप्तोत्तप्तैरुपकरणविशेषैराशु वर्ध्यते ह्रदस्थमिव पङ्कजम्। स यदा महान् संवृत्तस्तदा लिप्यामुपन्यस्तः संख्यायां [गणनायां मुद्रायाम् उद्धारे न्यासे निक्षेपे वास्तुपरी] क्षायां रत्नपरीक्षायाम्। सोऽष्टासु परीक्षासूद्घाटको वाचकः पण्डितः पटुप्रचारः संवृत्तः। तस्य पित्रा] त्रीणि वासगृहाणि मापितानि। हैमन्तिकं ग्रैष्मिकं वार्षिकम्]। त्रीण्युद्यानानि मापितानि हैमन्तिकं [ग्रैष्मिकं वार्षिकम्। त्रीण्यन्तःपुराणि प्रत्युपस्थापि]तानि ज्येष्ठकं मध्यमं कनीयसम्। स उपरिप्रासादतलगतो निष्पुरुषेण तूर्येण क्रीडति रमते परिचारयति। बलसेनो गृहपतिर्नित्यमेव कृ[षिकर्मान्ते उद्युक्तः। स कोटीकर्णस्तं पितरं पश्यति

G.M. 163 नित्यं कृषिकर्मान्ते उद्युक्तम् । स कथयति । तात कस्यार्थे त्वं नित्यमेव कृषिकर्मान्ते
उ] द्युक्तः । स कथयति । पुत्र यथा त्वमुपरिप्रासादतलगतो निष्पुरुषेण [तूर्येण]
क्रीडसि रमसे परिचारयसि यद्यहमप्येवमेव क्रीडेयं रमेयं परिचारयेयं [न चिरादेवास्माकं
भोगास्तनुत्वं परिक्षयं पर्यादानं गच्छेयुः । स संलक्षयति । ममैवार्थं चोदना क्रियते ।
स कथयति । तात यद्येवं पण्यमादाय] देशान्तरं गच्छामि । [पिता कथयति] ।
पुत्र तावन्तं मे रत्नजातमस्ति यदि त्वं तिलतण्डुलकोलकुलत्थन्यायेन रत्नानि परिभोक्ष्यसे
[तथापि] मे रत्नानां परिक्षयो न स्यात् । [स कथयति । तातानुजानीहि मां
गच्छामि पण्यमादाय देशान्तरमिति । बलसेनेन तस्यावश्यं निर्बन्धं ज्ञात्वा अनुज्ञातः ।
बलसेनेन गृहपतिना वासवग्रामके घण्टावघोषणं कारितं यो युष्माकम् उत्सहते श्रोणेन
कोटीकर्णेन सार्थवाहेन [सार्धम]-शुल्केनातर्पण्येन महासमुद्रमवतर्तुं स महासमुद्रगमनीयं
पण्यं समुदानयतु । पञ्चभिर्वणिक्शतैर्महासमुद्रगमनीयं पण्यं समुदानीतम् । बलसेनो
G.M. 164 [नाम गृहपतिः संलक्षयति] । कीदृशेन यानेन श्रोणः कोटीकर्णो यास्यति । स
संलक्षयति । स चेद्धस्तिभिर्हस्तिनः सकुमारा दुर्भराश्च । अश्वा अपि सुकुमारा
दुर्भराश्च । गर्दभाः स्मृतिमन्तः सुकुमाराश्च । गर्दभयानेन गच्छत्विति । स पित्राहू-
योक्तः । पुत्र न त्वया सार्थस्य पुरस्ताद् गन्तव्यं [नापि पृष्ठतः] । यदि बलवांश्च चौरो
भवति सार्थस्य पुरस्तान्निपतति दुर्बलो भवति पृष्ठतो निपतति । त्वया सार्थस्य मध्ये
गन्तव्यं न [चेत् हते सार्थवाहे हतः सार्थो भवेत्] । दासकपालकावपि अभिहितौ ।
पुत्रो युवाभ्यां न केनचित् प्रकारेण श्रोणः कोटीकर्णो मोक्तव्य इति । अथापरेण समयेन
श्रोणः कोटीकर्णः कृतकौतुकमङ्गलस्वस्त्ययनो मातुः सकाशमुपसंक्रम्य पादयोर्निपत्य
कथयति । अम्ब गच्छामि अवलोकिता भव महासमुद्रमवतरामि । सा रुदितुमारब्धा ।
स कथयति । अम्ब कस्माद् रोदिषि । माता साश्रुदुर्दिनवदना कथयति । पुत्र
कदाचिदहं पुत्रकं पुनरपि जीवन्तं द्रक्ष्यामि इति । स संलक्षयति । अहं मङ्गलैः
संप्रस्थितः । इयमीदृशमगमङ्गलमभिधत्ते । स रुषितः कथयति । अम्ब अहं कृतकौतुक-
मङ्गलस्वस्त्ययनो महासमुद्रं संप्रस्थितः । त्वं चेदृशान्यमङ्गलानि करोषि । अपायान्
किं न पश्यसीति । सा कथयति । पुत्र खरं ते वाक्कर्म निश्चारितम् । अत्ययमत्ययतो
G.M. 165 देशय । अप्येवैतत् कर्म तनुत्वं परिक्षयं पर्यादानं गच्छेत् । सा तेनात्ययमत्ययतः
क्षमापिता । अथ श्रोणः कोटीकर्णः कृतकौतुकमङ्गलस्वस्त्ययनः शकटैर्भारैर्मोटैः पिटकै-
रुष्ट्रैर्गोभिर्गर्दभैः प्रभूतं समुद्रगमनीयं पण्यमारोप्य महासमुद्रं संप्रस्थितः ।

सोऽनुपूर्वेण ग्रामनगरनिगमपल्लीपत्तनेषु चञ्चूर्यमाणो महासमुद्रतटमनुप्राप्तः ।

निपुणतः सामुद्रं यानपात्रं प्रतिपद्य महासमुद्रमवतीर्णो धनहारकः सोऽनुगुणेन वायुना रत्नद्वीपमनुप्राप्तः। तेन तत्रोपपरीक्ष्योपपरीक्ष्य रत्नानां तद्वहनं पूरितं तद् यथा तिलतण्डुलकोलकुलत्थानाम्। सोऽनुगुणेन वायुना संसिद्धयानपात्रो जम्बुद्वीपमनुप्राप्तः। स सार्थस्तस्मिन्नेव समुद्रतीरे आवासितः। असौ [श्रोणः कोटीकर्णो]ऽपि [सार्थवाहो] दासकपालकावादाय [सार्थमध्याद्] एकान्तेऽपक्रम्य आयं व्ययं च तुलयितुमारब्धः। पश्चात्तेनासौ दासकोऽभिहितः। दासक पश्य सार्थः किं करोतीति। स गतः। यावत् पश्यति सार्थं सुप्तम्। सोऽपि तत्रैव सुप्तः। दासकश्चिरायतीति कृत्वा पालकोऽभिहितः। पालक पश्य सार्थः किं करोतीति। स गतः। यावत् पश्यति स्थोरां लर्दयन्तं सार्थम्। सोऽपि स्थोरां लर्दयितुमारब्धः। दासकः संलक्षयति। पालकः सार्थवाहं शब्दापयिष्यति। पालको ऽपि संलक्षयति। दासकः सार्थवाहं शब्दापयि- G.M. 166 ष्यतीति। स सार्थः [सरात्रिमेव] स्थोरां लर्दयित्वा संप्रस्थितः। सोऽपि गाढनिद्रावष्टब्धः शयितः। [स] सार्थस्तावद्गतो यावत् प्रभातम्। ते कथयन्ति। भवन्तः क्व सार्थवाहः। पुरस्ताद् गच्छति। पुरस्ताद् गत्वा पृच्छन्ति क्व सार्थवाहः। पृष्ठत आगच्छति। पृष्ठतो गत्वा पृच्छन्ति क्व सार्थवाहः। मध्ये गच्छति। मध्ये गत्वा पृच्छन्ति। यावत् तत्रापि नास्ति। दासकः कथयति। मम बुद्धिरुत्पन्ना पालकः सार्थवाहं शब्दापयिष्यति। पालकोऽपि कथयति। मम बुद्धिरुत्पन्ना दासकः सार्थवाहं शब्दापयिष्यतीति। भवन्तो न शोभनं कृतं यदस्माभिः सार्थवाहश्छोरितः। आगच्छत निवर्तामः। ते कथयन्ति। भवन्तो यदि वयं निवर्तिष्यामः सर्व एवानयेन व्यसनमापत्स्यामः। आगच्छत क्रियाकारं तावत् कुर्मः। तावन्न केनचिच्छ्रोणस्य कोटीकर्णस्य मातापितृभ्यामारोचयितव्यं यावद् भाण्डं न प्रतिशामितं भवतीति। ते क्रियाकारं कृत्वा गताः। श्रोणस्य कोटीकर्णस्य मातापितृभ्यां श्रुतं श्रोणः कोटीकर्णोऽभ्यागत इति। तौ प्रत्युद्गतौ। क्व सार्थवाहः। मध्ये आगच्छति। मध्ये गत्वा पृच्छतः क्व सार्थवाह इति। ते कथयन्ति। पृष्ठत आगच्छति। पृष्ठतो गत्वा पृच्छतः। क्व सार्थवाहः। पुरस्ताद् गच्छतीति। तैस्तावदाकुलीकृतौ यावद्भाण्डं प्रतिशामितम्। ततः पश्चात्ते कथयन्ति। अम्ब विस्मृतोऽस्माभिः सार्थवाह इति। ताभ्यामेक G.M. 167 आगत्य कथयति। अयं श्रोणः कोटीकर्णोऽभ्यागत इति। तस्य तावभिसारं दत्त्वा प्रत्युद्गतौ न पश्यतः। अपर आगत्य कथयति। अयं श्रोणः कोटीकर्णोऽभ्यागत इति। तस्य तावभिसारं दत्त्वा प्रत्युद्गतौ न पश्यतः। तौ यावत् न कस्यचित् पुनरपि श्रद्धातुमारब्धौ। ताभ्यामुद्यानेषु देवकुलेषु छत्राणि घण्टाव्यजनानि अक्षराणि

लिखितानि यदि तावच्छ्रोणः कोटीकर्णो जीवति लब्धागमनाय । [अथ] च्युतः कालगतो गत्युपपत्तिस्थानात् स्थानान्तरविशेषतायै । तौ शोकेन रुदन्तावन्धीभूतौ । सोऽपि सूर्यस्याभ्युद्गमनकालसमये सूर्यांशुभिराभान्वितः प्रतिबुद्धो यावत् सार्थं न पश्यति । नान्यत्र तावेव गर्दभाववतिष्ठतः । स तौ योजयित्वा संप्रस्थितः । वालुकास्थले वायुना मार्गः पिहितः । स्मृतिमन्तो गर्दभा जिघ्रित्वा संप्रस्थिताः शनैर्गच्छन्तीति
G.M. 168 प्रतोदयष्ट्या स्पृष्टाः शालाटवीं प्रविष्टाः । ते तृषार्ता [विह्वलवदना] जिह्वां निर्नामय्य गच्छन्ति । तान् दृष्ट्वा तस्य कारुण्यमुत्पन्नम् । स संलक्षयति । यद्येतान् नोत्स्रक्ष्यामि एभिरेव सार्धमनयेन व्यसनमापत्स्ये ।

स तानुत्सृज्य पद्भ्यां संप्रस्थितः । यावत् पश्यति आयसं नगरम् उच्चं च प्रगृहीतं च । तत्र द्वारे पुरुषस्तिष्ठति कालो रौद्र [श्चण्डो] लोहिताक्ष उद्बद्धपिण्डो लोहलगुडव्यग्रहस्तः । स तस्य सकाशमुपसंक्रान्तः । भोः पुरुष । अस्त्यत्र पानीयम् । स तूष्णीमवस्थितः । भूयस्तेन पृष्टोऽसौ पुरुषोऽस्त्यत्र पानीयमिति । भूयोऽपि स तूष्णीमवस्थितः । तेन [सार्थवाहेन] तत्र प्रविश्य पानीयं पानीयमिति शब्दो निश्चारितः । यावत् पञ्चमात्रैः प्रेतसहस्रैर्दग्धस्थूणासदृशैरस्थियन्त्रवदुच्छ्रितैः स्वकेशरोमप्रच्छन्नैः पर्वतसन्निभोदरैः सूचीच्छिद्रोपममुखैरनुपरिवारितः श्रोणः कोटीकर्णः । [ते कथयन्ति । सार्थवाह] कारुणिकस्त्वमस्माकं तृषार्तानां पानीयमनुप्रयच्छ । स कथयति । भवन्तोऽहमपि पानीयमेव मृगयामि कुतोऽहं युष्माकं पानीयमनुप्रयच्छामीति । ते कथयन्ति । सार्थवाह प्रेतनगरमिदं कुतः खल्वत्र पानीयम् । अद्यास्मा-
G.M. 169 भिर्द्वादशभिर्वर्षैस्त्वत्सकाशात् पानीयं पानीयमिति शब्दः श्रुतः । स कथयति । के यूयं भवन्तः केन वा कर्मणा इहोपपन्नाः । [त ऊचुः] । श्रोण दुष्कुहका जम्बुद्वीपका मनुष्या नाभिश्रद्दधास्यन्ति । [स चाह] । अहं भवन्तः प्रत्यक्षदर्शी कस्मान्नाभिश्रद्दधास्ये । ते गाथां भाषन्ते ।

आक्रोशका रो[षका वयं] मत्सरिणः कुटुकुञ्चका वयम् ।
दानञ्च न दत्तमण्वपि तेन वयं प्रेतलोकमागताः ॥२॥

श्रोण गच्छ पुण्यमहेशाख्यस्त्वम् । अस्ति कश्चित्त्वया दृष्टः प्रेतनगरं प्रविष्टः स्वस्तिक्षेमाभ्यां निर्गच्छन् । स संप्रस्थितः । यावत् तेनासौ पुरुषो दृष्टः । स तेनोक्तः । भद्रमुख अहोवत त्वया ममारोचितं स्याद् यथेदं प्रेतनगरमिति नाहमत्र प्रविष्टः स्याम् । स

तेनोक्तः। श्रोण गच्छ पुण्यमहेशाख्यस्त्वम्। येन त्वं प्रेतनगरं प्रविश्य स्वस्तिक्षेमाभ्यां निर्गतः।

स संप्रस्थितो यावदपरं पश्यत्यायसं नगरम् उच्चं च प्रगृहीतं च। तत्रापि द्वारे पुरुषस्तिष्ठति कालश्चण्डो लोहिताक्ष उद्बद्धपिण्डो लोहलगुडव्यग्रहस्तः। स तस्य सकाशमुपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्यैवमाह। भोः पुरुष अस्त्यत्र नगरे पानीयम्। स तूष्णीमवस्थितः। भूयस्तेन पृष्टः। भोः पुरुष अस्त्यत्र नगरे पानीयम्। स तूष्णीमवस्थितः। तेन तत्र प्रविश्य पानीयं पानीयमिति शब्दः कृतः। अनेकैः प्रेतसहस्रैर्दग्धस्थूणाकृतिभिरस्थियन्त्रवदुच्छ्रितैः स्वकेशरोमप्रतिच्छन्नैः पर्वतसन्निभोदरैः G.M. 170 सूचीच्छिद्रोपममुखैरनुपरिवारितः। [ते कथयन्ति]। श्रोण कारुणिकस्त्वमस्माकं तृषार्तानां पानीयमनुप्रयच्छ। स कथयति। अहमपि भवन्तः पानीयमेव मृगयामि कुतोऽहं युष्माकं पानीयं ददामीति। ते कथयन्ति। श्रोण प्रेतनगरमिदं कुतोऽत्र पानीयम्। अद्यास्माभिर्द्वादशभिर्वर्षैस्त्वत्सकाशात् पानीयं पानीयमिति शब्दः श्रुतः। स चाह। के यूयं भवन्तः केन वा कर्मणा इहोपपन्नाः। त ऊचुः। श्रोण दुष्कुहका जम्बुद्वीपका मनुष्या नाभिश्रद्धास्यन्ति। स चाह। अहं भवन्तः प्रत्यक्षदर्शी कस्मान्नाभिश्रद्धास्ये। ते गाथां भाषन्ते।

आरोग्यमदेन मत्तका यौवनभोगमदेन मत्तकाः।
दानं च न दत्तमण्वपि येन वयं प्रेतलोकमागताः॥३॥

श्रोण गच्छ पुण्यकर्मा त्वम्। अस्ति कश्चित्त्वया दृष्टः श्रुतः प्रेतनगरं प्रविश्य [स्वस्तिक्षेमाभ्यां] जीवन् निर्गच्छन्। स संप्रस्थितः। यावत् तेनासौ पुरुषो दृष्टः। स तेनोक्तः। भद्रमुख अहो वत यदि त्वया ममारोचितं स्याद् यथेदं प्रेतनगरमिति नैवाहमत्र प्रविष्टः स्याम्। स कथयति। श्रोण गच्छ पुण्यमहेशाख्यस्त्वम्। अस्ति कश्चित् त्वया दृष्टः श्रुतो वा प्रेतनगरं प्रविश्य [स्वस्तिक्षेमाभ्यां] जीवन् निर्गच्छन्।

स संप्रस्थितः। यावत् पश्यति सूर्यस्यास्तंगमनकाले विमानं चतस्रोऽप्सरसः G.M. 171 अभिरूपाः प्रासादिका दर्शनीयाः। एकश्च पुरुषोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः अङ्गदकुण्डलविचित्रमाल्याभरणानुलेपनस्ताभिः सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। स तैर्दूरत एव दृष्टः। ते तं प्रत्यवभाषितुमारब्धाः। स्वागतं श्रोण मासि तृषितो बुभुक्षितो वा। स संलक्षयति। नूनं देवोऽयं वा नागो वा यक्षो वा भविष्यति। आह च। आर्य तृषितोऽस्मि बुभुक्षितोऽस्मि। स तैः स्नापितो भोजितः। स तस्मिन् विमाने तावत्

स्थितो यावत् सूर्यस्याभ्युद्गमनकालसमयः। स तैरुक्तः। श्रोण अवतर आदीनवोऽत्र भविष्यति। सोऽवतीर्य एकान्ते प्रक्रम्यावस्थितः। ततः पश्चात् सूर्यस्याभ्युद्गमनकालसमये तद्विमानमन्तर्हितम्। ता अप्यप्सरसोऽन्तर्हिताश्चत्वारः श्यामशबलाः कुक्कुराः प्रादुर्भूताः। तैस्तं पुरुषमवमूर्धकं पातयित्वा तावत् पृष्ठवंशान्युत्पाट्योत्पाट्य भक्षितानि यावत् सूर्यस्यास्तंगमनकालसमयः। ततः पश्चात् पुनरपि तद् विमानं प्रादुर्भूतं ता अप्सरसः प्रादुर्भूताः। स च पुरुषोऽभिरूपो दर्शनीय-प्रासादिकोऽङ्गद-कुण्डलविचित्रमाल्याभरणानुलेपनस्ताभिः सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। स तेषां सकाशमुपसंक्रम्य कथयति। के यूयं केन च कर्मणा इहोपपन्नाः। [ते प्रोचुः]। श्रोण दुष्कुहका जम्बुद्वीपका मनुष्या नाभिश्रद्दधास्यन्ति। स चाह। अहं प्रत्यक्षदर्शी
G.M. 172 कथं नाभिश्रद्दधास्ये। श्रोण अहं वासवग्रामके औरभ्रिकः आसीत्। उरभ्रान् प्रघात्य प्रघात्य मांसं विक्रीय विक्रीय जीविकां कल्पयामि। आर्यश्च महाकात्यायनो ममानुकम्पया आगत्य कथयति। भद्रमुख अनिष्टोऽस्य कर्मणः फलविपाकः। विरम त्वमस्मात् पापकाद् असद्धर्मात्। नाहं तस्य वचनेन विरमामि। भूयो भूयः स मां विच्छन्दयति। भद्रमुखानिष्टोऽस्य कर्मणः फलविपाकः। विरम त्वमस्मात् पापकादसद्धर्मात्। तत्राप्यहं न प्रतिविरमामि। स मां पृच्छति। भद्रमुख किं त्वमेतानुरभ्रान् दिवा प्रघातयस्याहोस्विद् रात्रौ। मयोक्तः। आर्य दिवा [प्रघातयामीति]। स कथयति। [भद्रमुख] रात्रौ शीलसमादानं किं न गृह्णासि। मया तस्यान्तिकाद् रात्रौ शीलसमादानं गृहीतम्। [यत् तद् रात्रौ शीलसमादानं गृहीतं] तस्य कर्मणो विपाकेन रात्रावेवंविधं दिव्यं सुखं प्रत्यनुभवामि। यन्मया दिवा उरभ्राः प्रघातितास्तस्य कर्मणो विपाकेन दिवा एवंविधं दुःखं प्रत्यनुभवामि। गाथां च भाषते।

दिवसं परप्राणपीडको रात्रौ शीलगुणैः समन्वितः।
तस्यैतत् कर्मणः फलं ह्यनुभवामि कल्याणपापकम् ॥४॥

श्रोण गमिष्यसि त्वं वासवग्रामकम्। गमिष्यामि। तत्र मम पुत्रः प्रतिवसति। स उरभ्रान् प्रघात्य प्रघात्य जीविकां कल्पयति। स त्वया वक्तव्यः दृष्टस्ते मया पिता।
G.M. 173 कथयति। स अनिष्टोऽस्य कर्मणः फलविपाको विरमास्मात् पापकादसद्धर्मात्। भोः पुरुष यत् त्वमेवं कथयसि दुष्कुहका जम्बुद्वीपका मनुष्या इति। नाभिश्रद्दधास्यन्ति। श्रोण यदि न श्रद्दधास्यति वक्तव्यस्तव पिता कथयति असिस्थानाधस्तात् सुवर्णस्य कलशः पूरयित्वा स्थापितः। तमुद्धृत्यात्मानं सम्यक् सुखेन प्रीणय आर्यं च

महाकात्यायनं कालेन कालं पिण्डकेन प्रतिपादयास्माकं च नाम्ना दक्षिणामादेशय। अप्येवैतत् कर्म तनुत्वं परिक्षयं पर्यादानं गच्छेत्।

स संप्रस्थितः। यावत् सूर्यस्याभ्युद्गमनकालसमये पश्यत्यपरं विमानम्। तत्र एका अप्सरा अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका। एकश्च पुरुषः अभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः अङ्गदकुण्डलविचित्रमाल्याभरणानुलेपनस्तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। स तं दूरत एव दृष्ट्वा प्रत्यवभाषितुमारब्धः। स्वागतं श्रोण मा तृषितोऽसि मा बुभुक्षितोऽसि वा। स संलक्षयति। नूनमयं देवो वा नागो वा यक्षो वा भविष्यति। स कथयति। तृषितोऽस्मि बुभुक्षितश्च। स ताभ्यां स्नापितो भोजितः। स तस्मिन् विमाने तावत् स्थितः यावत् सूर्यस्यास्तंगमनकालसमयः। स ताभ्यामुक्तः। श्रोण अवतरस्वादीनवोऽत्र भविष्यति। स दृष्टादीनवोऽवतीर्य एकान्तेऽवस्थितः। ततः पश्चात् सूर्यस्यास्तंगमनकालसमये तद् विमानमन्तर्हितम्। साप्यप्सरा अन्तर्हिता। महती शतपदी G.M. 174
प्रादुर्भूता। तया तस्य पुरुषस्य कायेन कायं सप्तकृत्वो वेष्टयित्वा तावदुपरिमस्तकं भक्षितं यावत् स एव सूर्यस्याभ्युद्गमनकालसमयः। ततः पश्चात् पुनरपि तद् विमानं प्रादुर्भूतम्। साप्यप्सरा प्रादुर्भूता। स च पुरुषोऽभिरूपो दर्शनीयः प्रासादिकः अंगदकुण्डलविचित्रमाल्याभरणानुलेपनस्तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति। स तमुपसंक्रम्य पृच्छति। को भवान् केन कर्मणा इहोपपन्नः। स एवमाह। श्रोण दुष्कुहका जम्बुद्वीपका मनुष्या नाभिश्रद्धास्यन्ति। स कथयति। अहं प्रत्यक्षदर्शी कस्मान्नाभिश्रद्धास्ये। स कथयति। अहं वासवग्रामके ब्राह्मण आसीत् पारदारिकः। आर्यश्च महाकात्यायनो ममानुकम्पयागत्य कथयति। भद्रमुखानिष्टोऽस्य कर्मणः फलविपाको विरमत्वमस्मात् पापकाद् असद्धर्मात्। तस्य वचनेनाहं न प्रतिविरमामि। भूयो भूयः स मां विच्छन्दयति। भद्रमुख अनिष्टोऽस्य कर्मणः फलविपाकः विरमास्मात्पापकादसद्धर्मात्। तथाप्यहं तस्मात् पापकादसद्धर्मान्न प्रतिविरमामि। स मां पृच्छति। भद्रमुख परदारान् किं त्वं दिवा गच्छस्याहोस्विद् रात्रौ। स मया अभिहितः। आर्य रात्रौ। स कथयति। भद्रमुख दिवा किं न शीलसमादानं गृह्णासि। मया तस्यान्तिके दिवा शीलसमादानं गृहीतम्। यत् तन्मयार्यस्य [महा]कात्यायनस्यान्तिकाद् दिवा शीलसमादानं G.M.175
गृहीतं तस्य कर्मणो विपाकेन दिवा एवंविधं दिव्यं सुखं प्रत्यनुभवामि यत् तद् रात्रौ परदाराभिगमनं कृतं तस्य कर्मणो विपाकेन रात्रावेवंविधं दुःखं प्रत्यनुभवामि। गाथां च भाषते।

रात्रौ परदारमूर्छितो दिवसं शीलगुणैः समन्वितः ।
तस्यैतत् कर्मणः फलं ह्यनुभवामि कल्याणपापकम् ॥५॥

श्रोण गमिष्यसि त्वं वासवग्रामकम् । तत्र मम पुत्रो ब्राह्मणः पारदारिकः । स वक्तव्यः । दृष्टस्ते मया पिता । स कथयति अनिष्टोऽस्य कर्मणः फलविपाको विरमास्मात् पापकादसद्धर्मात् । [स चाह] । भोः पुरुष त्वमेवं कथयसि । दुष्कुहका जम्बुद्वीपका मनुष्या इति । नाभिश्रद्दधास्यति । श्रोण यदि न श्रद्दधास्यति वक्तव्यः तव पित्राग्निष्टोमस्याधस्तात् सुवर्णकलशः पूरयित्वा स्थापितः । तमुद्धृत्यात्मानं सम्यक् सुखेन प्रीणय आर्यं च महाकात्यायनं कालेन कालं पिण्डकेन प्रतिपादय अस्माकं च नाम्ना दक्षिणामादेशय । अप्येवैतत् कर्म तनुत्वं परिक्षयं पर्यादानं गच्छेत् ।

स संप्रस्थितः । यावत् पश्यति अपरं विमानम् । तत्रैका स्त्री अभिरूपा दर्शनीया प्रासादिका अङ्गदकुण्डलविचित्रमाल्याभरणानुलेपना । तस्याश्चतुर्षु पर्यङ्कपादकेषु चत्वारः प्रेता बद्धास्तिष्ठन्ति । सा तं दूरत एव दृष्ट्वा प्रत्यनुभाषितुमारब्धा । श्रोण G.M. 176 स्वागतं मा तृषितोऽसि मा बुभुक्षितोऽसि वा । स संलक्षयति । नूनं देवीयं वा नागी वा यक्षी वा भविष्यति । स कथयति । आर्ये तृषितोऽस्मि बुभुक्षितोऽस्मि । तयासौ स्नापितः भोजितः उक्तश्च । श्रोण यद्येते किञ्चिन्मृगयन्ति मा दास्यसीत्युक्त्वा तेषां सत्त्वानां कर्म स्वकृतं प्रत्यक्षीकर्तुकामा विमानं प्रविश्यावस्थिता । ते मृगयितुमारब्धाः । श्रोण कारुणिकस्त्वं बुभुक्षिता वयमस्माकमनुप्रयच्छ । तेनैकस्य क्षिप्तं बुसप्लावी प्रादुर्भूता । अपरस्य [क्षिप्त] मयोगुडं भक्षयितुमारब्धः । अपरस्य क्षिप्तं स्वमांसं भक्षयितुमारब्धः । अपरस्य क्षिप्तं पूयशोणितं प्रादुर्भूतम् । सा पश्यति विस्रगन्धेन निर्गतम् । श्रोण निवारितस्त्वं मया कस्मात् त्वयैषां दत्तम् । किं मम करुणया त्वमेव कारुणिकतरः । स कथयति । भगिनि तवैते के भवन्ति । सा कथयति । अयं मे स्वामी । अयं मे पुत्रः । इयं मे स्नुषा । इयं मे दासी । [स आह] । के यूयं केन वा कर्मणा इहोपपन्नाः । तयोक्तम् । श्रोण दुष्कुहका जम्बुद्वीपका मनुष्या G.M. 177 नाभिश्रद्दधास्यन्ति । अहं भगिनि प्रत्यक्षदर्शी [कस्मा]न्नाभिश्रद्दधास्ये । सा कथयति । अहं वासवग्रामके ब्राह्मण्यासीत् । मया नक्षत्ररात्रौ प्रत्युपस्थितायां प्रणीतमाहारं सज्जीकृतम् । आर्यश्च महाकात्यायनो ममानुकम्पया वासवग्रामकं पिण्डाय प्राविक्षत् । स मया दृष्टः कायप्रासादिकश्चित्तप्रासादिकः । चित्तमभिप्रसन्नं दृष्ट्वा स मया प्रसादजातया पिण्डकेन प्रतिपादितः । तस्या मम बुद्धिरुत्पन्ना स्वामिनमनुमोदयामि

प्रामोद्यमुत्पादयिष्यतीति । स स्नात्वा आगतो मयोक्तः । आर्यपुत्रानुमोदस्व मयार्यो महाकात्यायनः पिण्डकेन प्रतिपादितः । स रुषितो यावद् ब्राह्मणानां न दीयते ज्ञातीनां वा ज्ञातिपूजा न क्रियते तावत् त्वया तस्मै मुण्डकाय श्रमणकायाग्रपिण्डकं दत्तम् । सोऽमर्षजातः कथयति । कस्मात् स मुण्डकः श्रमणको वुसप्लावीं न भक्षयतीति । तस्य कर्मणो विपाकेनायं वुसप्लावीं भक्षयति । मम बुद्धिरुत्पन्ना पुत्रं तावदनुमोदयामि । प्रामोद्यमुत्पादयिष्यतीति । सोऽपि मयोक्तः । पुत्रानुमोदस्व मयार्यो महाकात्यायनः पिण्डकेन प्रतिपादितः । सोऽपि रुषितो यावद् ब्राह्मणानां न दीयते ज्ञातीनां वा ज्ञातिपूजा न क्रियते तावत् त्वया तस्मै मुण्डकाय श्रमणकायाग्रपिण्डं दत्तम् । सोऽप्यमर्षजातः कथयति । कस्मात् स मुण्डकः श्रमणकोऽयोगुडं न भक्षयतीति । तस्य कर्मणो विपाकेनायमयोगुडं भक्षयति । नक्षत्ररात्र्यां प्रत्युपस्थितायां ज्ञातयः G.M. 178 प्रहेणकानि मम प्रेषयन्ति । तान्यहं स्नुषायाः समर्पयामि । सा प्रणीतानि प्रहेणकानि भक्षयित्वा मम लूहानि उपनामयति । अहं तेषां ज्ञातीनां सन्दिशामि । किंनु यूयं दुर्भिक्षे यथा लूहानि प्रहेणकानि प्रेषयथेति । ते मम सन्दिशन्ति । न वयं लूहानि प्रेषयामः अपि तु प्रणीतान्येव प्रहेणकानि प्रेषयामः । मया स्नुषाभिहिता । बधूके मा त्वं प्रणीतानि प्रहेणकानि भक्षयित्वास्माकं लूहान्युपनामयसि । सा कथयति । किं न स्व [मांसानि भक्षयति याहं त्वदीयानि प्रहेणकानि भक्षयामीति । इयं तस्य कर्मणो विपाकेन स्वमांसानि भक्षयति । नक्षत्ररात्र्यां प्रत्युपस्थितायामहं दारिकाया हस्ते प्रणीतानि प्रहेणकानि दत्त्वा ज्ञातीनां प्रेषयामि । सा [दारिका तानि] प्रणीतानि प्रहेणकानि मार्गेऽन्तर्भक्षयित्वा तेषां लूहान्युपनामयति । ते मम सन्दिशन्ति । किंनु त्वं दुर्भिक्षे यथा लूहान्यस्माकं प्रहेणकानि प्रेषयसीति । अहं तेषां सन्दिशामि । नाहं लूहानि प्रहेणकानि प्रेषयामि अपितु प्रणीतान्येवाहं प्रेषयामीति । मया दारिकाभिहिता । दारिके मा त्वं प्रणीतानि प्रहेणकानि भक्षयित्वा तेषां लूहान्युपनामयसि । सा कथयति । किंनु पूयशोणितं न भक्षयति था त्वदीयानि प्रहेणकानि भक्षयतीति । तस्य कर्मणो विपाकेनेयं पूयशोणितं भक्षयति । मम बुद्धिरुत्पन्ना । तत्र प्रतिसन्धि G.M. 179 गृह्णामि यत्रैतान् सत्त्वान् स्वकं स्वकं कर्मफलं परिभुञ्जानान् पश्यामीति । यन्मयार्यमहाकात्यायनं पिण्डकेन प्रतिपाद्य प्रणीते त्रयस्त्रिंशे देवनिकाये उपपत्तव्यं साहं मिथ्याप्रणिधानं कृत्वा प्रेतमहर्द्धिका संवृत्ता ।

श्रोण गमिष्यसि त्वं वासवग्रामकं तत्र मम दुहिता वेश्यां वाहयति । सा त्वया [वक्तव्या । दृष्टास्ते मया पिता माता भ्राता भ्रातुर्जाया दासी । ते कथयन्ति ।

अनिष्टोऽस्य कर्मणः फलवि]पाको विरमास्मात् पापकादसद्धर्मात् । भगिनि त्वमेव कथयसि दुष्कुहका जम्बुद्वीपका मनुष्या नाभिश्रद्दधास्यन्ति । श्रोण यदि न श्रद्धधास्यति वक्तव्या तव पौराणे पैत्रिके [वासगृहे चत्वारो लोहसंघाटाः सुवर्णस्य पूर्णास्तिष्ठन्ति मध्ये च सौवर्णदण्डकमण्डलुः । ते कथ]यन्ति तमुद्धृत्यात्मानं सम्यक्सुखेन प्रीणय आर्यं च महाकात्यायनं कालेन कालं पिण्डकेन प्रतिपादय अस्माकं च नाम्ना दक्षिणामादेशय । अप्येवैतत् [कर्म तनुत्वं परिक्षयं पर्यादानं गच्छेत् । तेन तस्याः प्रतिज्ञातम् ।

एवं तस्य परिभ्रमतो द्वादशवर्षा अतिक्रान्ताः] । तयोक्तः । श्रोण गमिष्यसि त्वं वासवग्रामकम् । भगिनि गमिष्यामि । स तस्मिन्नेव विमाने अधिरूढः । तया G.M. 180 तेषामेव प्रेतानामाज्ञा दत्ता भवन्तो गच्छत श्रोणं [कोटीकर्णं सुप्तमेव वासवग्रामके पैत्रिके उद्याने स्थापयित्वा आगच्छत । स तैर्वासवग्रामके पैत्रिके] उद्याने स्थापितः । स प्रतिविबुद्धो यावत् पश्यति घण्टाच्छत्राणि व्यजनान्यक्षराणि लिखितानि । यदि तावच्छ्रोणः कोटीकर्णो जीवति [लब्ध्वागमनाय क्षिप्रमागमनाय च्युतः कालगतो गत्युपपत्तिस्थानात् स्थानान्तरविशेषतायै । स संलक्षयति । यद्यहं मातापितृभ्यां] मृत एव गृहीतः कस्माद् भूयोऽहं गृहं प्रविशामि गच्छाम्यार्यं महाकात्यायनस्यान्तिके प्रव्रजामीति । अथ श्रोणः कोटीकर्णो येना [युष्मान् महाकात्यायनस्तेनोपसंक्रान्तः । अद्राक्षीदायुष्मान् महाकात्यायनः श्रोणं कोटीकर्णम् । पूरादेव दृष्ट्वा च] पुनः श्रोणं कोटीकर्णमिदमवोचत् । एहि श्रोण स्वागतं ते दृष्टस्ते श्रोण अयं लोकः परश्च लोकः । स कथयति । दृष्टो भदन्त महाकात्यायन [लभेयाहं भदन्त महाकात्यायन स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसंपदं भिक्षुभावं चरेयम]हं भगवतोऽन्तिके ब्रह्मचर्यम् । [स आर्येणोक्तः ।] श्रोण तां तावत् पूर्विकां प्रतिज्ञां परिपूरय यथागृहीतान् सन्देशान् समर्पयेति ।

स तस्यौरभ्रिकस्य सकाशमुपसंक्रान्तः । भद्र[मुख दृष्टस्ते पिता मया । स कथयति अनिष्टोऽस्य कर्मणः फलविपाको विरमास्मात् पापकाद सद्धर्मात् । भोः] पुरुष अद्य मम पितुर्द्वादश वर्षाणि कालगतस्य । अस्ति कश्चिद् दृष्टः परलोकात्
G.M. 181 पुनरागच्छन् । भद्रमुख एषोऽहमागतः । नासौ श्रद्दधाति । [भद्रमुख यदि न श्रद्दधासि स तव पिता कथयति असिस्थानाधस्तात् सुवर्णस्य कलशः पूर्णस्तिष्ठति । तमुद्धृत्या]त्मानं सम्यक्सुखेन प्रीणय आर्यं च महाकात्यायनं कालेन कालं पिण्डकेन

प्रतिपादयास्माकं च नाम्ना दक्षिणामादेशय। अ[प्येवैतत् कर्म तनुत्वं परिक्षयं पर्यादानं गच्छेत्। स संलक्षयति। न क]दाचिदेवं मया श्रुतपूर्वं पश्यामि स चेद् भूतं भविष्यति सर्वमेतत् सत्यम्। तेन गत्वा खनितं यावत् तत् सर्वं तत् तथैव तेनाभिश्रद्दधीतम्।

ततः पश्चात् स पारदारिकस्य सकाशमुपसंक्रान्तः। [उपसंक्रम्य कथयति। भद्रमुख दृष्टस्ते मया पिता। स कथयति। अनिष्टोऽस्य कर्मणः फलविपाको विरमास्मात् पापकादसद्धर्मात्। स क]थयति। भोः पुरुष अद्य मम पितुर्द्वादश वर्षाणि कालं गतस्य। अस्ति कश्चित् त्वया दृष्टः परलोकं गत्वा पुनरागच्छन्। भद्रमुख एषोऽहमागतः। नासौ श्रद्दधाति। स कथयति। [भद्रमुख स चेन्नाभिश्रद्दधासि तव पित्राग्निष्टोमस्याधस्तात् सुवर्णस्य कलशः पूरयित्वा स्थापितः। स कथयति। तमु]द्धृत्यास्मानं सम्यक् सुखेन प्रीणयार्यं च महाकात्यायनं कालेन कालं पिण्डकेन प्रतिपादयास्माकं च नाम्ना दक्षिणामादेशय। अप्येवैतत् कर्म तनुत्वं [परिक्षयं पर्यादानं गच्छेत्। स संलक्षयति। न कदाचिदेतन्मया श्रुतपूर्वं पश्यामि स चेद् भूतं भविष्यति सर्वमे]तत् सत्यम्। तेन गत्वा खनितं यावत् पश्यति G.M. 182 तत्सर्वं तत् तथैव तेनाभिश्रद्दधीतम्।

स गणिकायाः सकाशमुपसंक्रान्तः। [उपसंक्रम्य कथयति।] भगिनि दृष्टस्ते मया माता पिता भ्रातु[र्जाया दासी। ते कथयन्ति। अनिष्टोऽस्य कर्मणः फलविपाको विरमास्मात् पापकादसद्धर्मात्। सा कथयति। भोः पुरु]ष अद्य मम मातापित्रोर्द्वादश वर्षाणि कालगतयोः। अस्ति कश्चित् त्वया दृष्टः परलोकं गत्वा पुनरागच्छन्। स कथयति। एषोऽहमागतः। सा न श्रद्दधाति। [स कथयति। भगिनि स चेन्नाभिश्रद्दधासि तव पौराणे पैत्रिके वासगृहे चत्वारो लोहसंघा]टाः सुवर्णपूर्णास्तिष्ठन्ति। मध्ये च सौवर्णदण्डकमण्डलुः। ते कथयन्ति। तमुद्धृत्यास्मानं सम्यक् सुखेन प्रीणयार्यं च महाकात्यायनं कालेन कालं पिण्डकेन प्रतिपादयास्माकं च नाम्ना दक्षिणामादेशय। अ[प्येवैतत् कर्म तनुत्वं परिक्षयं पर्यादानं गच्छेत्।] सा संलक्षयति। न कदाचिन्मया श्रुतपूर्वं पश्यामि स चेद् भूतं भविष्यति सर्वमेतत् सत्यम्। तया गत्वा खनितं यावत् तत्सर्वं तत् तथैव तयाभिश्रद्दधीतम्।

[श्रोणः कोटीकर्णः संलक्षयति। सर्वोऽयं लोकः सुवर्णस्य श्रद्दधाति न तु

कश्चिन्मम श्रद्धया गच्छतीति । तेन वैपु]ष्पितम् । तस्य शिशुत्वे सुवर्णेन दशना G.M. 183 बद्धाः । तयासौ प्रत्यभिज्ञातः । स्यादार्यः श्रोणः कोटीकर्णः एव मे [भगिनि] संजानीते । तया [गत्वा] तस्य मातापितृभ्यामारोचितम् । अम्ब तात कोटीकर्णोऽ[भ्यागत इति । अनेकैस्तेषामारोचितम् । ते न कस्यचित् श्रद्धया गच्छन्ति । ते कथयन्ति । पुत्रि त्वमप्यस्माकमुत्प्रासयसि । यावदसौ स्वयमेव गतः । तेन द्वारकोष्ठके स्थित्वोत्काशनशब्दः कृतः ।] हिरण्यस्वरोऽसौ । स तैः स्वरेण प्रत्यभिज्ञातः । तौ कण्ठे परिष्वज्य रुदितुमारब्धौ । तेषां वाष्पेण पटहानि । स्फुटितानि । द्रष्टुमारब्धौ । स कथयति । अम्ब तातानुजानीध्वं प्रव्रजिष्यामि [सम्यगेव श्रद्धया अगाराद् अनागारिकम् । तौ कथयतः । पुत्रवां त्वदीयेन शोकेन रुदन्तावन्धीभूतौ । इदानीं त्वम् एवागम्य चक्षुः प्रतिलब्धम् । यावदावां जीवावस्तावन्न प्रव्रजितव्यम् । यदा कालं करिष्यावस्तदा प्रव्रजिष्यसि । तेनायुष्मतो महाकात्यायनस्यान्तिकाद् धर्मं श्रुत्वा स्रो]त आपत्तिफलं साक्षात्कृतं मातापितरौ च शरणागमनशिक्षापदेषु प्रतिष्ठापितौ । आगमचतुष्टयमधीतम् । सकृदागामिफलं साक्षात् कृतम् । मातापितरौ सत्येषु प्रतिष्ठापितौ । अपरेण समयेन तस्य मातापितरौ कालगतौ । स तं धनजातं दीनानाथकृपणवनीपकेभ्यो दत्त्वा दरिद्रान् अदरिद्रान् कृत्वा येनायुष्मान् महाकात्यायनस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्यायुष्मतो महाकात्यायनस्य पादौ शिरसा G.M. 184 वन्दित्वा एकान्ते ऽस्थात् । एकान्ते स्थितः श्रोणः कोटीकर्णः आयुष्मन्तं महाकात्यायनमिदमवोचत् । लभेयाहमार्य महाकात्यायन स्वाख्याते धर्मविनये प्रव्रज्यामुपसम्पदं भिक्षुभावम् । यावच्चरेयमहं भगवतोऽन्तिके ब्रह्मचर्यम् । स आयुष्मता महाकात्यायनेन प्रव्राजितः । तेन प्रव्रज्य मातृकाधीता । अनागामिफलं साक्षात्कृतम् ।

अश्मापरान्तकेषु जनपदेषु अल्पभिक्षुकं कृच्छ्रेण दशवर्गो गणः परिपूर्यते । स त्रैमासीं श्रामणेरो विधारितः । धर्मता खलु यथा बुद्धानां भगवतां श्रावकाणां द्वौ संनिपातौ भवतः । यश्चाषाढ्यां वर्षोपनायिकायां यश्च कार्तिक्यां पौर्णमास्याम् । तत्र ये आषाढ्यां वर्षोपनायिकायां संनिपतन्ति ते तांस्तान् उद्देश-योग-मनसिकारान् उद्गृह्य पर्यवाप्य तासु तासु ग्रामनगरनिगमराष्ट्रराजधानीषु वर्षामुपगच्छन्ति । ये कार्तिक्यां पौर्णमास्यां संनिपतन्ति ते यथाधिगतमारोचयन्ति । उत्तरे च परिपृच्छन्ति । एवमेव महाश्रावकाणामपि । अथ ये आयुष्मतो महाकात्यायनस्य सार्धंविहार्यन्तेवासिका भिक्षवस्तांस्तान् उद्देशयोगमनसिकारविशेषानुद्गृह्य पर्यवाप्य तासु तासु ग्रामनगरनिगमराष्ट्रराजधानीषु वर्षामुपगतास्ते त्रयाणां वार्षिकाणां मासानामत्ययात् कृतचीवरा

निष्ठितचीवराः समादाय पात्रचीवरं येनायुष्मान् महाकात्यायनस्तेनोपसंक्रान्ताः ।
उपसंक्रम्यायुष्मतो महाकात्यायनस्य पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्ते निषण्णाः । एकान्ते G.M. 185
निषद्य यथाधिगतमारोचयन्ति उत्तरे च परिपृच्छन्ति । दशवर्गो गणः परिपूर्णः । स
तेनोपसंपादितः । तेन पिटकत्रयमधीतम् । सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम् । अर्हन्
संवृत्तस्त्रैधातुकवीतरागो [समलोष्ट्र]कांचनः आकाशपाणितल[सम]चित्तो
वासीचन्दनकल्पोऽविद्याविदारिताण्डकोशो विद्याभिज्ञाप्रतिसंवित्प्राप्तो भवलाभलोभसत्कार-
पराङ्मुखः [सेन्द्रोपेन्द्राणां देवानां पूज्यो मान्यो]ऽभिवाद्यश्च संवृत्तः ।

अथायुष्मतो महाकात्यायनस्य सार्धं विहार्यन्तेवासिका आयुष्मन्तं महाकात्यायनं यावत् तावत् पर्युपास्यायुष्मन्तं महाकात्यायनमिदमवोचन् । दृष्टोऽस्माभिरुपाध्याय पर्युपासितश्च । गच्छामो वयं भगवन्तं पर्युपासिष्यामहे । वत्स एवं कुरुध्वम् । पर्युपासितव्या एव हि तथागता अर्हन्तः सम्यक्संबुद्धाः ।

तेन खलु [पुनः समयेन श्रोणः कोटीकर्णस्तस्यामेव पर्षदि संनिषण्णोऽभूत्
संनिपतितः । अथायुष्मान् श्रोणः कोटीकर्ण उत्थायासनादेकांसमुत्तरा]संगं कृत्वा दक्षिणं
जानुमण्डलं पृथिव्यां प्रतिष्ठाप्य [येनायुष्मान् महाकात्यायनस्तेनाञ्जलिं कृत्वा प्रणम्या]-
युष्मन्तं महाकात्यायनमिदमवोचत् । दृष्टो मयोपाध्यायानुभावेन स भगवान् धर्मकायेन
नो तु रूपकायेन । [गच्छाम्युपाध्याय रूपकायेनापि तं भगवन्तं द्रक्ष्यामि । स आह ।
एवं वत्स कुरुष्व । दुर्लभदर्शना हि वत्स तथागता अर्हन्तः] सम्यक्संबुद्धाः तद्यथा G.M. 186
औदुम्बरपुष्पम् । अस्माकं च [वचनेन भगवतः पादौ शिरसा वन्दस्वाल्पाबाधतां च
यावत् सुखस्पर्शविहारतां च पञ्च प्रश्नानि च पृच्छ ।

अश्मापरान्तकेषु भदन्द जनपदेषु अल्पभिक्षुकं कृच्छ्रेण दशवर्गगणः परिपूर्यते ।
तत्रास्माभिः कथं प्रतिपत्तव्यम् । खरा भूमिर्गोकण्टकाधाना । अश्मापरान्तकेषु जनपदेषु
इदमेवंरूप [मास्तरणं] प्रत्यास्तरणं तद् [यथा अजचर्म गोचर्म मृगचर्म च्छागचर्म ।
तदन्येषु जनपदेष्विदमेवंरूपमास्तरणं प्रत्यास्तरणं तद्यथा एरको मेरको जन्दुरको
मन्दुरकः । एवमेवाश्मापरान्तकेषु जनपदेष्विदमेवंरूपमास्तरणं [प्रत्यास्तरणं] तद्यथा G.M. 187
अजचर्म पूर्ववत् । उदकशुद्धिका मनुष्या स्नानसमुदाचाराः । भिक्षुर्भिक्षोश्चीवरकाणि
प्रेषयति । इतश्च्युतानि तत्रासंप्राप्तानि । कस्यैतानि नैसर्गिकाणि । अधिवासयत्या-
युष्मान् श्रोणः कोटीकर्ण आयुष्मतो महाकात्यायनस्य तूष्णींभावेन ।

अथायुष्मान् श्रोणः कोटीकर्णस्तस्या एव रात्रेरत्ययात् पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय वासवग्रामकं पिण्डाय प्राविक्षत् । यावदनुपूर्वेण श्रावस्तीमनुप्राप्तः । अथायुष्मान् श्रोणः कोटीकर्णः पात्रचीवरं प्रतिशामय्य पादौ प्रक्षाल्य येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य वन्दित्वैकान्ते निषण्णः । तत्र भगवानायुष्मन्तमानन्दमामन्त्रयते स्म । गच्छानन्द तथागतस्य श्रोणस्य च कोटीकर्णस्यैकविहारे मञ्चं प्रज्ञपय । एवं भदन्तेत्यायुष्मानानन्दस्तथागतस्य श्रोणस्य च कोटीकर्णस्य यावत् प्रज्ञप्य येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य भगवन्तमिदमवोचत् । प्रज्ञप्तो भदन्त तथागतस्य श्रोणस्य च कोटीकर्णस्यैकविहारे मञ्चो यस्येदानीं भगवान् कालं मन्यते । अथ भगवान् येन श्रोणस्य कोटीकर्णस्य विहारस्तेनोपसंक्रान्तो [यावद्] विहारं प्रविश्य निषण्णः । यावत् G.M. 88 प्रतिमुखं स्मृतिमुपस्थाप्य । अथायुष्मानपि श्रोणः कोटीकर्णो बहिर्विहारस्य पादौ प्रक्षाल्य विहारं प्रविश्य निषण्णः पर्यङ्कमाभुज्य यावद् ऋजुकायं प्रणिधाय प्रतिमुखं स्मृतिमुपस्थाप्य । तां खलु रात्रिं भगवानायुष्मांश्च श्रोणः कोटीकर्ण आर्यस्य तूष्णींभावेनातिनामितवान् । अथ भगवान् रात्र्याः प्रत्यूषसमये आयुष्मन्तं श्रोणं कोटीकर्णमामन्त्रयते स्म । प्रतिभातु ते श्रोण धर्मो यो मया स्वयमभिज्ञायाभिसंबुध्याख्यातः । अथायुष्मान् श्रोणो भगवता कृतावकाशः अश्मापरान्तिकया स्वरगुप्तिकया उदानात् पारायणात् सत्यदृष्टः शैलगाथा-मुनिगाथा-स्थविरगाथा-स्थविरीगाथार्थ-वर्गीयाणि च सूत्राणि विस्तरेण स्वरेण स्वाध्यायं करोति । अथ भगवान् श्रोणस्य कोटीकर्णस्य कथापर्यवसानं विदित्वा आयुष्मन्तं श्रोणं कोटीकर्णमिदमवोचत् । साधु साधु श्रोण मधुरस्ते धर्मो भाषितः प्रणीतश्च यो मया स्वयमभिज्ञायाभिसंबुध्याख्यातः ।

अथायुष्मतः श्रोणस्य कोटीकर्णस्यैतदभवत् । अयं मे कालो भगवत उपाध्यायस्य वचसाराधयितुमिति विदित्वोत्थायासनाद् यावद् भगवन्तं प्रणम्येदमवोचत् । अश्मापG.M. 89 रान्तकेषु जनपदेषु वासवग्रामके भदन्त महाकात्यायनः प्रतिवसति यो मे उपाध्यायः । स भगवतः पादौ शिरसा वन्दतेऽल्पाबाधतां लघूत्थानतां च पृच्छति यावत् स्पर्शविहारतां च पञ्च च प्रश्नानि पृच्छति । विस्तरेणोच्चारयितव्यानि ।

अथ भगवान् श्रोणं कोटीकर्णमिदमवोचत् । अकालस्ते श्रोण प्रश्नव्याकरणाय । सङ्घमध्ये प्रश्नः पृच्छयेत । तत्र कालो भविष्यति प्रश्नस्य व्याकरणाय । अथ भगवान् काल्यमेवोत्थाय पुरस्ताद् भिक्षुसङ्घस्य प्रज्ञप्त एवासने निषण्णः । अथायुष्मान् श्रोणः [कोटीकर्णो येन भगवांस्तेनोपसंक्रम्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वैकान्तेऽस्थात् ।] एकान्तस्थितो भगवन्तमिदमवोचत् । अश्मापरान्तकेषु जनपदेषु वासव-

ग्रामके भदन्त महाकात्यायनः प्रतिवसति यो मे उपाध्यायः। स भगवतः पादौ शिरसा वन्दतेऽल्पाबाधतां च पृच्छति यावत् स्पर्शविहारतां च पञ्च च प्रश्नानि विस्तरेणारोचयति यथा पूर्वमुक्तानि यावत् कस्य नैसर्गिकाणि। भगवानाह। तस्मादनुजानामि। प्रत्यन्तिमेषु जनपदेषु विनयधरपञ्चमेन गणेनोपसंपदा। सदा स्नानम्। एकपलाशिके उपानहे धारयितव्ये न द्विपुटे न त्रिपुटे। सा चेत् क्षयधर्मिणी भवति अर्गलकं दत्त्वा धारयितव्ये। भिक्षुर्भिक्षोश्चीवरकाणि प्रेषयति इतश्च्युतानि तत्रासंप्राप्तानि न कस्यचिन्नैसर्गिकाणि।

आयुष्मानुदाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति। यदुक्तं भदन्त भगवता प्रत्यन्तिमेषु G.M. 190 जनपदेषु विनयधरपञ्चमेन गणेनोपसंपदा। तत्र कतमोऽन्तः कतमः प्रत्यन्तः। पूर्वेणोदालिन् पुण्ड्रवर्धनं नाम नगरं तस्य पूर्वेण पुण्ड्रकक्षो नाम दावः। [सोऽन्तः।] ततः परेण प्रत्यन्तः। दक्षिणेन शरावती नाम नगरी। तस्याः परेण शरावती नाम नदी। सोऽन्तः। ततः परेण प्रत्यन्तः। पश्चिमेन स्थूणोपस्थूणकौ ब्राह्मणग्रामकौ। सोऽन्तः। ततः परेण प्रत्यन्तः। उत्तरेण उशीरगिरिः। सोऽन्तः। ततः परेण प्रत्यन्तः।

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पृच्छन्ति। किं भदन्त आयुष्मता श्रोणेन कोटीकर्णेन कर्म कृतं यस्य कर्मणो विपाकेनाढ्ये महाधने महाभोगे कुले जातो रत्नप्रत्युप्तिकया कर्णे आमुक्तिकया भगवतः शासने प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्।

भगवानाह। भूतपूर्वं भिक्षवो वाराणस्यां नगर्यां काश्यपो नाम तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो भगवाञ्छास्ता लोक उत्पन्नः। तेन खलु समयेन वाराणस्यां द्वौ जायापतिकौ। ताभ्यां काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्यान्तिके शरणगमनशिक्षापदान्युद्गृहीतानि। G.M.191 यदा काश्यपः सम्यक्संबुद्धः सकलं बुद्धकार्यं कृत्वा निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृतस्तस्य राज्ञा कृकिणा चतूरत्नमयं चैत्यं कारितं समन्ताद् योजनमर्धयोजनमुच्चत्वेन। तेन तत्र खण्डस्फुटप्रतिसंस्करणाय ये पूर्वनगरद्वारे करप्रत्याया उत्तिष्ठन्ते ते तस्मिन् स्तूपेऽनुप्रदत्ताः। यदा कृकी राजा कालगतस्तस्य पुत्रः सुजातो नाम्ना स्वराज्ये प्रतिष्ठापितः। तस्यामात्यैः स्तोकाः करप्रत्याया उपनामिताः। राजा पृच्छति। [किं कारणमस्माकं भवद्भिः स्तोकाः करप्रत्याया उपनामिताः।] किमस्माकं विजिते करप्रत्याया उत्तिष्ठन्ते। ते कथयन्ति। देव कुतः करप्रत्याया उत्तिष्ठन्ते। ये देव

पूर्वद्वारे करप्रत्यायास्ते वृद्धराज्ञा स्तूपे खण्डस्फुटप्रतिसंस्करणाय प्रज्ञप्ताः। यदि देवोऽनुजानीते वयं तान् करप्रत्यायान् समुच्छिन्दामः। स कथयति। भवन्तो यन्मम पित्रा कृतं तदेव ब्रह्मकृतम्। ते संलक्षयन्ति। यदि देवोऽनुजानीते वयं तथा करिष्यामो यथा स्वयमेव ते करप्रत्याया नोत्थास्यन्ति। तैः स द्वारो बद्ध्वा स्थापितः। न भूयः करप्रत्याया उत्तिष्ठन्ते। तस्मिन् स्तूपे च स्फुटितकानि प्रादुर्भूतानि। तौ
G.M. 192 जायापती वृद्धीभूतौ तत्रैव स्तूपे परिकर्म कुर्वाणौ तिष्ठतः। उत्तरापथाच्च सार्थवाहः पण्यमादाय वाराणसीमनुप्राप्तः। तेनासौ दृष्टः स्तूपश्चटितस्फुटितकैः प्रादुर्भूतैः। स दृष्ट्वा पृच्छति। अम्ब तात कस्यैष स्तूप इति। तौ कथयतः। काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य। केन कारितः। कृकिणा राज्ञा। न तेन राज्ञा अस्मिन् स्तूपे खण्डस्फुटप्रतिसंस्करणाय किञ्चित् प्रज्ञप्तम्। तौ कथयतः। प्रज्ञप्तं ये पूर्वनगरद्वारे करप्रत्यायास्तेऽस्मिन् स्तूपे खण्डस्फुटप्रतिसंस्करणाय निर्यातिताः। कृकी राजा कालगतः। तस्य पुत्रः सुजातो नाम्ना स्वराज्ये प्रतिष्ठितः। तेन ते करप्रत्यायाः समुच्छिन्नाः। तेनास्मिन् स्तूपे चटितस्फुटितकानि प्रादुर्भूतानि। तस्य रत्नकर्णिका कर्णे आमुक्तिका। तेन सावतार्य तयोर्दत्ता। अम्ब तातानया रत्नकर्णिकया अस्मिन् स्तूपे खण्डस्फुटप्रतिसंस्कारं कुरुतमिति यावदहं पण्यं विसर्जयित्वागच्छामि। ततः पश्चाद् भूयोऽपि दास्यामि। तैस्तां विक्रीय तस्मिन् स्तूपे खण्डस्फुटप्रतिसंस्कारः कृतः। अपरमुत्सर्पितम्। अथापरेण समयेन स सार्थवाहः पण्यं विसर्जयित्वागतः। तेन स दृष्टः स्तूपेऽसेचनकदर्शनः। दृष्ट्वा स च भूयस्यापि मात्रयाभिप्रसन्नः। स प्रसादजातः
G.M. 193 पृच्छति। अम्ब तात मा युष्माभिः किञ्चिद् उद्धारीकृतम्। तौ कथयतः। पुत्र नास्माभिः किञ्चिद् उद्धारीकृतं किन्त्वपरमुत्सर्पितं तिष्ठति। तेन प्रसादजातेन यत् तत्रावशिष्टम् अपरं च दत्त्वा महतीं पूजां कृत्वा प्रणिधानं च कृतम्। अनेनाहं कुशलमूलेनाढ्ये महाधने महाभोगे कुले जायेयम्। एवंविधानां च धर्माणां लाभी स्याम्। एवंविधमेव शास्ता-[रमारागयेयं मा विरागयेयमिति। किं मन्यध्वे भिक्षवः। योऽसौ सार्थवाह एष एवासौ श्रोणः कोटीकर्णः। यदनेन काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य स्तूपे कारां कृत्वा प्रणिधानं कृतं तस्य कर्मणो विपाकेनाढ्ये महाधने महाभोगे कुले जातः। मम शासने प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्। अहमनेन काश्यपेन सम्यक्संबुद्धेन समबलः समजवः समधूरः समसामान्यप्राप्तः शास्ता आरागितो न विरागित इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः एकान्त शुक्लानां कर्मणामेकान्तशुक्लो विपाकः व्यतिमिश्राणां व्यतिमिश्रः। तस्मात् तर्हि भिक्षव एकान्त-

कृष्णानि कर्माण्यपास्य व्यतिमिश्राणि चैकान्तशुक्लेष्वेव कर्मस्वाभोगः करणीयः। [इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम्। भिक्षव ऊचुः।] किं भदन्तायुष्मता श्रोणकोटीकर्णेन कर्म कृतं यस्य कर्मणो विपाकेन दृष्ट एव धर्मे अपाया दृष्टाः। भगवानाह। यदनेन मातुरन्तिके खरवाक् कर्म निश्चारितं तस्य कर्मणो विपाकेन दृष्ट एव धर्मे अपाया दृष्टाः।

बुद्धो भगवान् श्रावस्त्यां विहरति जेतवनेऽनाथपिण्डदस्यारामे। आयुष्मानुपनन्दः G.M. 194
संघनवकः। तस्य पंक्त्या कटकटायमंचकः प्राप्तः। स भयेन परिवर्तते। मा भेत्स्यतीति संलक्षयति। अहमुपनन्दो मंचकस्यापि स्पृहयामि। नोपनन्द इति नामधेयं धारयामि यदि शय्यां संचकं वा नोपावर्तयामि। स काल्यमेवोत्थाय राज्ञः प्रसेनजितः कोशलस्य [सकाश] मुपसंक्रान्तः। स तेनोक्तः। स्वागतं भदन्तोपनन्दस्य। कश्चिद्भदन्तोपनन्दः सुखं शयितः। स कथयति। गिल्लपेठ किं त्वं न जानीषे यथाहमष्टपुटीं शय्यां कल्पयाम्युपनन्दोऽपि तथैवेति। अहं सङ्घनवको मम पंक्त्या कटकटायमंचकः प्राप्तः। सोऽहं भयेन परिवर्तामि। मा भेत्स्यतीति कल्पते। भदन्तोपनन्दस्येदृशी अष्टपुटी शय्या साधु कल्पते सुष्ठु कल्पते। कुत्र प्रतिक्षिप्तं केन वा प्रतिक्षिप्तम्। यदि ते कल्पते गृहीतो भवतु। [उपनन्दः कथयति।] किं मम कोशलो जनपदो वर्तते। विहारं नामयित्वानुप्रयच्छ। तेन तस्याष्टौ मनुष्या अनुप्रदत्ताः। तत्र चतुर्भिः शयनासनं गृहीतं चतुर्भिः खट्वा। ते गृहीत्वा वीथ्या मध्येन संप्रस्थिताः। ते ब्राह्मणगृहपतिभिर्दृष्टाः। दृष्ट्वा च पृच्छन्ति। कुत्र भवन्तो- G.M. 195
ऽस्य देवशय्यां कल्पयिष्यन्ति। उपनन्दः कथयति। स्वगृहे। कस्यैषा शय्या नीयते। उपनन्दः कथयति। मयैषा लब्धा। तेऽवध्यायन्ति क्षिपन्ति विवाचयन्ति। किं भदन्तोपनन्दस्य श्रामणक [स्य] कामगुणा बाधन्ते। तेन विहारं गत्वा विहारं सिक्तं संमृष्टं सुकुमारी गोमयकार्ष्यनुप्रदत्ता। शय्यां प्रज्ञप्य निषेत्स्यामीति। भगवान् च तं प्रदेशमनुप्राप्तः। सौद्गिल्यजातो भगवन्तमिदमवोचत्। पश्य मम भदन्त कीदृशी शय्या। तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म। आदित एव भिक्षवः उपनन्दो मोहपुरुषः प्रतिगोपको वेदितव्यः। भगवान् संलक्षयति। यः कश्चिदादीनवो भिक्षव उच्चशयनमहाशयने शय्यां कल्पयन्ति। 'तस्मान्न भिक्षुणोच्चशयनमहाशयने निषेत्तव्यम्। निषीदति सातिसारो भवति।

उक्तं भगवता न भिक्षुणोच्चशयनमहाशयने निषेत्तव्यमिति। अन्यतमेन गृहपतिना बुद्धप्रमुखा भिक्षुसंघा अन्तर्गृहे निमन्त्रिताः। स उच्चान्यासनानि प्रज्ञपयितुमारब्धः।

आयुष्मानानन्दः अनुकालं प्रविष्टः। तेन दृष्टः य उच्चान्यासनानि प्रज्ञपयन्। स तेनोक्तः। नैतानि गृहपते भिक्षु [प्रति] रूपाण्यासनानि। अपनय। स तान्यपनयितुमारब्धः। भगवांश्च तत्रागतः। जानकाः पृच्छका बुद्धा भगवन्तः। पृच्छति बुद्धो भगवानायुष्मन्तमानन्दम्। किमिदमानन्द करिष्यसि। भगवन्नयं गृहपतिर्महार्हाणि
G.M. 196 शयनासनानि प्रज्ञपयति। नैतानि गृहपते भिक्षुप्रतिरूपाणि शयनासनानि। अपनयैतानि। सैषोऽपनयति। मानन्द गृहपतिं वारय। प्रज्ञपयन्तु न सर्वत्रानन्द रिद्धिष्यति। तस्मादनुजानाम्यन्तर्गृहे उच्चासने निषत्तव्यम्। नाभिनिपतितव्यम्। विहारे नैव निषत्तव्यम्। निषद्याभिनिपतति सातिसारो भवति।

अन्यतमो भिक्षुस्त्रिचीवरको दक्षिणापथात् श्रावस्तीमनुप्राप्तो भगवतः पादाभिवन्दकः। तस्य चर्मकास्तरिका शोभना। स तत्रोपनन्देन दृष्टः। स तेनोक्तः। पिण्डपातिक प्रयच्छ ममैतत् चर्म चैत्याभिवन्दको गच्छामि। स कथयति। भदन्तोपनन्द गच्छ त्वमावासम्। अहं चैत्याभिवन्दक एवागतः पादाभिवन्दकः। किं त्वं जानीषे असमर्थोपनन्द ईदृशं चर्म समुदानेतुम्। पश्य भदन्तोपनन्द येन त्वमसमर्थस्तेनाहं तव नानुप्रयच्छामि।

राज्ञः प्रसेनजितः कोसलस्य वड्गो नाम गवाध्यक्षः आयुष्मत उपनन्दनस्य सप्रेमकः। स तस्य सकाशमुपसंक्रान्तः। यावद्वसन्तकाले चित्रोपचित्रको वत्सो
G.M. 197 जातः। सैकस्य वत्सस्य पृष्ठं परामृशति। वड्गेणोक्तः। किं भदन्तोपनन्द काङ्क्षसे त्वमस्य मातुः क्षीरम्। नेदम्। स कथयति। एतच्च भवतु। अपि तु यस्य भिक्षोरीदृशं चर्मसु अल्पोत्सुकः कुशलपक्षं कुर्यात्। स कथयति। भदन्तोपनन्द गच्छ। विज्ञातम्। स प्रक्रान्तः। तेन गोपालस्याज्ञा दत्ता एतद्वत्सकं प्रघात्य चर्म गृहीत्वा भदन्तोपनन्दस्य नीत्वानुप्रयच्छस्व। स तं वत्सकं प्रघात्य चर्म गृहीत्वा संप्रस्थितः। सा गौः पुत्रस्नेहेन हंभारवं कुर्वती पृष्ठतः पृष्ठतः समनुसृसार। जेतवनं प्रविष्टा सा गौः जेतवनद्वारे हंभा [रवं] रवमाना तिष्ठति। जानकाः पृच्छका बुद्धा भगवन्तः। पृच्छति बुद्धो भगवानायुष्मन्तमानन्दम्। कस्मादानन्द इयं गौः जेतवनद्वारे तिष्ठति। आयुष्मानानन्दः कथयति। भगवन् तस्या वत्सकः चर्मकार्थाय भदन्तोपनन्देन प्रघातापितः। तेनेयं गौः जेतवनद्वारे हंभारवं रवमाना तिष्ठति। भगवानाह। यः कश्चिदादीनवो भिक्षवश्चर्म धारयन्ति। तस्मान्न भिक्षुणा चर्म धारयितव्यम्। धारयन्ति सातिसारा भवन्ति।

उक्तं भगवता । न चर्म धारयितव्यम् । अन्यतमेन गृहपतिना बुद्धप्रमुखो भिक्षुसंघो निमन्त्रितः । स चर्मकान्यासनानि प्रज्ञपयितुमारब्धः । पूर्ववत्तु [न] सर्वत्र संपत्स्यते । तस्मादन्तर्गृहे चर्मासने निषत्तव्यं न निप [ति] तव्यम् । विहारे [न] निषत्तव्यं न निप [ति]तव्यम् । निषीदति निपतति सातिसारो भवति । G.M. 198

राजगृहनिदानम् । पिलिन्दवत्सस्य [सदा ग्लानकस्य] यानमनुज्ञातम् । षड्वर्गिका यानेन गन्तुमारब्धाः । तस्मान्न गन्तव्यं [यानेन] । स एवादीनवः । तस्माद् द्वाभ्यां गन्तव्यं जीर्णेन वा जरादुर्बलेन ग्लानेन वा अप्रयोगक्षमेण ।

भिक्षवो जनपदचारिकां चरन्ति । नद्या गच्छन्ति । ते तर्तुं न शक्नुवन्ति पात्रचीवरमुत्तोलयित्वा । [एतद् भिक्षवो भगवतः आरोचयन्ति । भगवानाह । भिक्षुणा सन्तरणं] शिक्षितव्यम् । षड्वर्गिका अजिरवतीमुत्तरन्त्यपि स्रोत उत्तरन्त्यपि । यावदातीर्य आगताः । [भगिनि] उत्तारयाम युष्माकमेवं कुरुध्वम् । तैस्तासामङ्ग-प्रत्यङ्गानि परामृष्टानि । भूयः आगच्छत । ताः कथयन्ति । येऽस्माकं स्वामिनापि न प्रदेशा परामृष्टास्ते युष्माभिः परामृष्टाः । ता अवध्यायन्ति क्षिपन्ति विवाचयन्ति । भगवानाह । यः कश्चिदादीनवो भिक्षवो मातृग्रामं स्पृशति । तस्मान्न भिक्षुणा मातृग्रामं स्प्रष्टव्यमिति ।

[उक्तं भगवता । मातृग्रामो न स्प्रष्टव्यः] । नगरमनुष्याः उद्यानप्रियाः । G.M. 199
तेषामुद्यानगतानामन्यतमा स्त्री पानीयस्यार्थाय नदीमवतीर्णा । सा तृष्यते । तां मनुष्योऽवलोकयन् गच्छति । तेन भिक्षुर्दृष्टः । आर्येण काचित् स्त्री प्लवमाना दृष्टा । दृष्टा एषा प्लवते । दिवसे पानीयं प्रतिवीक्षमाणा तिष्ठति एवं प्राणोऽस्यायते । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । उत्तारयितव्या । अपराः कथयन्ति मुंचतु । अतिबला भवन्ति । प्रतिमोक्तव्या । अपरा निश्चेष्टा भवन्ति । ता वालिकास्थलं कृत्वावमूर्धिकाः स्थापयित्वा छोरयित्वा गच्छन्ति । ताः शृगालैर्भक्ष्यन्ते । न च्छोरयित्वा गन्तव्यम् । रज्यन्ति । एकान्ते स्थातव्यम् । ये स्वाध्यायकारका भिक्षवस्तैः स्वाध्यायनिका कर्तव्या । [ये] ध्यायिनस्तैर्मनसिकारः कर्तव्यः । भक्तच्छेदो भवति । ये तत्र गोपालकाः पशुपालका भवन्ति तेषामनुपरितस्तु गन्तव्यम् ।

षड्वर्गिका गोपुच्छेन तरन्ति । अन्यतमो गृहपतिः । तस्य गावः । [तासां] तावदुत्तारोत्तारं कृत्वा यावत् क्षीरमन्तर्हितम् । तेन गोपालकः पृष्टः । कस्मादद्य क्षीरं G.M. 200
नास्ति । ते कथयन्ति । आर्यकैः षड्वर्गीयैः पूर्ववत् । सोऽवध्यायति क्षिपति

विवाचयति । तस्मान्न भिक्षुणा गोपुच्छेन तर्तव्यम् । उक्तं भगवता । न गोपुच्छेन तर्तव्यमिति । भिक्षूणां नदीसन्तरेण विघातो जातः । हस्ति पुच्छेन नेच्छन्ति तर्तुम् । भगवानाह । पंचानां बालधीयानां पुच्छेन तर्तव्यम् । हस्त्याजानेय [स्य] अश्वाजानेयस्य वृषभस्य महिषस्य चमरस्य । अपि तु भृषिणा तर्तव्यम् ।

[उक्तं] भगवता भृषिणा तर्तव्यमिति । षड्वर्गीयैश्चित्रोपचित्राणि कमलमात्राणि स्त्रीपुरुषविप्रतिपन्नानि कृतानि । ते ब्राह्मणगृहपतिभिर्दृष्टाः कथयन्ति । भवन्तः किमिदम् । ते कथयन्ति । भगवता भृषिणा अनुज्ञाताः । तेऽवध्यायन्ति । आर्यं युष्माकं श्रामणकः कामगुणो भवति । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । न भिक्षुभिश्चित्रोपचित्राणि कमलमात्राणि स्त्रीपुरुषैर्विप्रतिपन्नैर्भृषयो धारयितव्याः । अपि तु द्वौ भृषी । काषायः तारणिकश्च ।

G.M. 201 अनाथपिण्डदेन गृहपतिना मंडलवाटं कारितम् । धर्मश्रवणा [य] काष्ठपादुकाभिर्भिक्षव आगताः । तैः स कुट्टिमः काष्ठपादुकाभिः क्षतविक्षतः कृतः । अनाथपिण्डदो गृहपतिः काल्यमेवोत्थाय भगवतः पादाभिवन्दक आगतः । तेन दृष्टम् । दृष्ट्वा कथयति । आर्याः किमत्र राजा प्रसेनजित् चतुरो गोणवलकायेन रात्रिं वासमुपगतः । ते कथयन्ति । न राजा अपि तु भिक्षवः काष्ठपादुकाभिरागताः । तैरेतद्विनाशितम् । सोऽवध्यायते । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवान् संलक्षयति । यः कश्चिदादीनवो भिक्षवः काष्ठपादुकां धारयन्ति । तस्मान्न हि भिक्षुणा काष्ठपादुका धारयितव्या ।

उक्तं भगवता न भिक्षुणा काष्ठपादुका धारयितव्या । भिक्षवोऽन्तर्गृहे उपगच्छन्ति । तेषां पादुकाः कर्दमेन क्लिद्यन्ते । एतद् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । अन्तर्गृहे भिक्षुणा काष्ठपादुका धारयितव्या । श्राद्धा ब्राह्मणगृहपतयः संघे भिक्षूणां काष्ठपादुकामनुप्रयच्छन्ति । भिक्षवो न प्रतिगृह्णन्ति । ते कथयन्ति । आर्य यदा भगवांल्लोके नोत्पन्नस्तदा तीर्थ्या दक्षिणीया आसन् यावद्भगवानाह । प्रतिग्रहीतव्या । प्रतिगृह्य सांघिकायां वर्चस्कुट्यां वा प्रस्रावकुट्यां प्रक्षेपयितव्या ।

उ[द्दा]नम्

वंशपत्रा च श्रोणश्च अनुज्ञाता हि गुप्तये ।
तिर्यग्बद्धिका च पुरा पार्ष्णी पुटी च ॥ ६ ॥

उक्तं भगवता । न काष्ठपादुका धारयितव्या इति । ते वंशपत्रपादुकां धारयन्ति । G.M. 202 स एवादीनवः । भगवानाह । न वंशपत्रपादुका धारयितव्या । ते मुंजपादुकां धारयन्ति । स एवादीनवः । भगवानाह । न मुंजपादुका धारयितव्या । ते रज्जुपादुकां धारयन्ति । स एवादीनवः । भगवानाह । न रज्जुपादुका धारयितव्या । उक्तं भगवता । न रज्जुपादुका धारयितव्या इति भिक्षूणां वातशोणितं भवति । तेषां परिषेकेण चर्मपादुकाः क्लिद्यन्ते । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । यस्य वातशोणितं भवति तेन रज्जुपादुका धारयितव्या ।

यदा श्रोणः कोटीविंशः प्रव्रजितस्तदा पादतलेषु सुवर्णवर्णानि रोमाणि चतुरंगुलमात्राणि षड्वर्गिकैर्दृष्टा[नि] । ते दृष्ट्वा कथयन्ति । एष तावन्नवनीतपिण्डः एकान्तघटने शासने किं प्रव्रज्य करिष्यति । तेन श्रुतम् । तस्य श्रुत्वाभिमानो जातः । स आयुष्मत आनन्दस्य सकाशमुपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्यायुष्मन्तमानन्दं पृच्छति । कतमो भदन्तानन्द एकान्तघटनः समाधिरुक्तो भगवता । चंक्रम्याधिगमः आयुष्मन् श्रोण । तेन शीतवनं श्मशानं गत्वा चंक्रमेऽधिष्ठितः । तस्य चंक्रमतः सुवर्णवर्णानि रोमाणि चतुरंगुलमात्राणि शीर्णानि । ततः पश्चाच्चर्म पश्चाच्छोणितम् । स यावदेकस्माच्चंक्रमशिरसोऽपरं गच्छति तावत्तस्यैकस्मिन् चंक्रमशिरसि काकाः शोणितं पिबन्ति G.M. 203 द्वितीयेऽपि । धर्मता खलु बुद्धा भगवन्तो जीवन्तस्तिष्ठन्तो ध्रियमाणा यापयन्तः कालेन कालं नदीचारिकां चरन्ति विस्तरेण यावदेवास्मिंस्त्वर्थे बुद्धो भगवान्विहारचारिकां चरन् येनायुष्मतः श्रोणस्य कोटीविंशस्य विहारस्तेनोपसंक्रान्तः । अद्राक्षीद्भगवान् श्रोणस्य कोटीविंशस्य चंक्रमम् । दृष्ट्वा च पुनर्जानकाः पृच्छका बुद्धा भगवन्तो जानन्तो पृच्छन्ति । [पृच्छति] बुद्धो भगवानायुष्मन्तमानन्दमेकान्तघटकस्य भिक्षोश्चंक्रमम् । श्रोणस्य भदन्त कोटीविंशस्य । तस्मादानन्द अनुजानामि श्रोणेन कोटीविंशेन एकपलाशिका उपानहा धारयितव्या न द्विपुटी न त्रिपुटी । सा चेत् क्षयधर्मिणी भवति अर्गलकं दत्त्वा धारयितव्या । अथायुष्मानानन्दो येनायुष्मान् श्रोणकोटीविंशस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य श्रोणं कोटीविंशमिदमवोचत् । यत् खल्वायुष्मन् श्रोण जानीथाः शास्त्रा ते एकपलाशिकोपानहा अनुज्ञाता न द्विपुटीति विस्तरः । किं भदन्तानन्द सर्वसंघस्य आहोस्विन्ममैवैकस्य । तवैवैकस्य । अकोप्या भदन्तानन्द शास्तुराज्ञा । स चेदहं धारयिष्यामि स्यान्मे अतो निदानं सब्रह्मचारिणो वक्तारः । प्रभूतं तत्र श्रोणकोटीविंशेन प्रव्रज्यावासं यश्चम्पामसाधारणां ससहस्तिकां चानीकमपहाय प्रव्रजितः स इदानीमुपानहकल्पमात्रे सक्तः । अपि तु यदि भगवान् समागम्य सर्व- G.M. 204

संघस्यानुजानीयादेवमहं धारयेयम् । एतत्प्रकरणमायुष्मानानन्दो भगवतो विस्तरेणारोचयति । भगवानाह । तस्मादनुजानामि श्रोणं कोटीविंशमागम्य सर्वसंघेनैकपलाशिकोपानहा धारयितव्या न द्विपुटी [ति] विस्तरः ।

अन्यतमो महल्लो भगवतः पुरस्तात् सोपानत्कश्चंक्रमति । अथ भगवांस्तं भिक्षुमिदमवोचत् । अपेहि भिक्षो मा मे पुरतस्तिष्ठ । तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म । यस्तावदसौ भिक्षवः शास्ता सर्वलोकामिषसंमृष्टो भवति तस्य तावच्छास्तुः श्रावका नैव लघु लघ्वेव पातकव्रतमापद्यन्ते । कुतः पुनः सर्वलोकामिषविसंयुक्तो विहरामि । भगवान् संलक्षयति । यः कश्चिदादीनवो भिक्षवः उपानहौ धारयन्ति तस्मान्न भिक्षुणा उपानहा धारयितव्या इति ।

अन्यतमश्च शोभितः प्रव्रजित इति । तस्योदकस्थानकं भग्नम् । स पादधावनिकायां पादौ प्रक्षाल्य पानीयेनास्यं पूरयित्वा मयूरगत्या संप्रस्थितः । षड्वर्गिकैर्दृष्टः । ते कथयन्ति । आयुष्मन्तो विना वादित्रेण भिक्षुर्नृत्यति । वादित्रं वादयतेति । ते मुखवादित्रं वादयितुमारब्धाः । ते भिक्षुभिर्भर्त्स्यन्ते । किमौद्धत्यं कुरुत । ते कथयन्ति । किमत्रौद्धत्यम् । न पश्यत यूयं भिक्षुं विना वादित्रेण नृत्यन्तम् । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । जानकाः पृच्छका बुद्धा भगवन्तो जानन्तः पृच्छन्ति । पृच्छति बुद्धो भगवांस्तं भिक्षुं किमभिप्रायेण भिक्षो एवं कृतम् । G.M. 205 शयनासनगुप्त्यर्थं भदन्त । अनापत्तिरस्य भिक्षोः शयनासनगुप्त्यर्थमेवं कुर्वतः । तस्मादनुजानामि शयनासनगुप्त्यर्थमेकपलाशिकोपानहा धारयितव्या । न द्विपुटी न त्रिपुटी । सा चेत् क्षयधर्मिणी भवत्यर्गलकं दत्त्वा धारयितव्या ।

उक्तं भगवता । एकपलाशिकोपानहा धारयितव्या इति । अन्यतमस्य पिण्डपातिकस्य गृहपतिरभिप्रसन्नः । सोऽनुपानहकः श्रावस्तीं पिण्डाय प्रविष्टः । स तेन गृहपतिना अनुपानहको दृष्टः । दृष्ट्वा च कथयति । आर्यस्य नास्त्युपानहः । आगच्छ चर्मकारसकाशं गच्छामः । उपानहौ दापयिष्यामि । स चर्मकारसकाशं गतः । तेन चर्मकार उक्तः । आर्यस्योपानहावनुप्रयच्छेत्युक्त्वा प्रक्रान्तः । तेन खलु समयेन द्वयोरेकपलाशिका उपानहाः क्रियन्ते भिक्षूणामुपरतकानां च । स भिक्षुर्भूयो भूयश्चर्मकारसकाशमुपसंक्रामति । स नानुप्रयच्छति । अपरेण समयेन भूयस्तेन गृहपतिना स भिक्षुर्दृष्टोऽनुपानत्कः । दृष्ट्वा कथयति । आर्य न तेन शिल्पिना उपानहा दत्ता । गृहपति न श्रुतं त्वया दुर्लभः शिल्पी सत्यजल्पक इति । भूयो भूय उपसंक्रमामि

नानुप्रयच्छति । स कथयति । आर्या गच्छ गृहं गच्छामः । स तेन गृहं नीत्वा प्रणीतेनाहारेण संतर्प्य बहुपुटी उपानहा दत्ता । भिक्षुः कथयति । गृहपते भगवता नानुज्ञातम् । स कथयति । आर्य गच्छ एकपुटीं कृत्वा धारयिष्यसि । स तां गृहीत्वा विहारं गतः । स तामादाय शस्त्रकं च वृक्षमूलं गत्वा उत्पाटयितुमारब्धः । भगवांश्च G.M. 206 तं प्रदेशमनुप्राप्तः । भिक्षो किं क्रियते । भगवता बहुपुटी उपानहा प्रतिक्षिप्ता । मम च बहुपुटी एव संपन्ना एकपुटीं कृत्वा धारयिष्यामि । अथ भगवत एतदभवत् । दास्यन्ति वतामी श्राद्धा गृहपतयः श्रावकाणां बहुपुटी उपानहा तस्मादनुजानामि बहुपुटी उपानहा आगारिकविनिर्मुक्तेन कृत्वा धारयितव्या । आयुष्मानुपाली यावत् पृच्छति । यदुक्तं भदन्त भगवता बहुपुटी उपानहा आगारिक विनिर्मुक्तेभिः कृत्वा धारयितव्या । कियता भदन्त आगारिकविनिर्मुक्ता वक्तव्या । अन्तत उपालिन् सप्त वाष्ट वा पदानि परिभुक्तानि भवन्ति ।

वैशाल्यां निदानम् । तेन खलु समयेन वैशाल्यामेवंरूपा उपानहाः क्रियन्ते । तद्यथा हिनिहिनायमानाः किणकिणायमाना मेण्डविषाणिका बोधिपटपत्रकाः चित्रोपचित्राः पंचकार्षापणमूल्याः । षड्वर्गिकैर्हि दृष्टो भवति उपानहा यावत् पिधाय ते पार्ष्णिपादाङ्गुष्ठेन पाटयित्वा ग्रीवायां मेलयित्वा गृह्णन्तीदं ते दानं चित्तालङ्काराय । सामन्तकेन शब्दो विसृतः । आर्यका उपानहान्येवंरूपाणि हरन्ति । एकायुवत्या जामाता आगतः । तस्य तयोपानहा दत्ता । उक्तश्चार्या उपानहां हरन्ति । अप्रमत्तो G.M. 207 भविष्यसि यथा न हरापयसीति । पिण्डपातिकः पिण्डपातं प्रविशति । तेन दृष्टः स एकस्मिन् गृहे प्रविष्टः । असावपि तत्रैव प्रविष्टः । स तस्माद् गृहान्निर्गत्यापरं गृहं प्रविष्टः । पिण्डपातिकोऽपि तत्रैव प्रविष्टः । स कथयति । आर्य कस्यार्थे त्वं मां पृष्ठतः पृष्ठतः समनुबद्धः । किमिच्छस्युपानहामपहर्तुम् । भद्रमुख नाहं तवोपानहाम् अपहरामि त्वहं पिण्डपातं प्रविशामि । स कथयति । आर्य हर वा मा वापि तु युष्माकं सामन्तकेन शब्दो विसृतः 'आर्यका उपानहा हरन्तीति' । एतत् प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । अथ भगवत एतदभवत् । यः कश्चिदादीनव इह भिक्षव एवंरूपाम् उपानहां धारयन्ति हिनिहिनिका इति विस्तरः ।

तस्मान्न भिक्षुणा एवंरूपा उपानहा धारयितव्या हिनिहिनिका इति विस्तरः । भिक्षुरिमामेवंरूपाम् उपानहां धारयति सातिसारो भवति ।

श्रावस्त्यां निदानम् । तेन खलु समयेन भिक्षूणामुपानहाभिः पादपृष्ठे व्रणानि

कृतानि । ब्राह्मणगृहपतिभिर्दृष्टा [नि]। केन युष्माकं व्रणानि कृतानि । उपानहाभिः । किं न यूयं तिर्यग्बद्धा धारयत । भगवता नानुज्ञातम् । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । तिर्यग्बद्धिका धारयितव्या । गृध्रकूट
G.M. 208 एव पर्वतो राजगृहे । पर्वतमभिरुहतां पादाङ्गुष्ठेषु क्षतानि भवन्ति । ते ब्राह्मणगृहपतिभिर्दृष्टा । केन युष्माकं पादाङ्गुष्ठेषु क्षतानि । [गृध्रकूट] पर्वतमभिरुहताम् । न यूयं पुटापुटीं धारयत । नानुज्ञातं भगवता । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । धारयितव्या । तत्रैवावतरतां पाष्ण्यां क्षता भवन्ति । [पूर्ववत् यावद् धारयितव्या] ।

उद्दानम्

नालम्बुजा मुण्डपूला पूला हैमवतेषु च ।
ऋक्षचर्मननुज्ञातमारा शस्त्री च बद्धिका ॥ ७ ॥

श्रावस्त्यां निदानम् । भिक्षूणां नवेन तृणेन पादाः शूलिताः । ब्राह्मणगृहपतयः कथयन्ति । केन युष्माकं पादाः शूलिताः । नवेन तृणेन । यूयं नालम्बुजं किं न धारयत । नानुज्ञातं भगवता । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति ।
G.M. 209 भगवानाह । नालम्बुजा धारयितव्याः । एवं वृद्धे तृणे मुण्डपूला धारयितव्याः । पूला हैमवतेषु च इति ।

यदा विरूढकेन मोहपुरुषेण कापिलवास्तवः शाक्याः प्रघातिताः तत्र केचिदुत्तरापथं गताः केचिद् यावन्नैवालं प्रविष्टाः । श्रावस्तीया वणिजो नैवालं गताः । तैर्वणिजः पृष्टाः । आर्यानन्दो ज्ञातिवत्सलो नास्माकमवलोकयतीति । याव [त्] तैस्तस्यारोचितम् । स नैवालं प्रविष्टः । तस्य हिमेन पादौ स्फुटितौ । स भिक्षुभिरुच्यते । तव पादौ किमर्थमिदानीमीदृशौ । हिमेन । ते तव ज्ञातयः किं कुर्वन्ति । पूलां धारयन्ति । त्वं किमर्थं न धारयसि । भगवता नानुज्ञातः । एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति । भगवानाह । हैमवतेषु जनपदेषु पूला धारयितव्याः ।

आयुष्मानुदाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति । यदुक्तं भदन्त भगवता हैमवतेषु जनपदेषु पूला धारयितव्या इति । कतमे हैमवता जनपदाः । यत्रोदकस्थालकं श्यायति ।

भिक्षोर्लुब्धकोऽभिप्रसन्नः। तस्य ऋक्षचर्म संपन्नम्। स भिक्षोरनुप्रयच्छति। स न गृह्णाति। भगवांश्च तं प्रदेशमनुप्राप्तः। जानकाः पृच्छका बुद्धा भगवन्तः। पृच्छति बुद्धो भगवानायुष्मन्तमानन्दम्। किमेष आनन्द भिक्षोर्लुब्ध [कः] पृष्ठतः पृष्ठतः समनुबद्धः। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। दुर्लभा G.M. 210 आनन्द लुब्धकस्य श्रद्धा। यदि शतसहस्रमपि लभति सर्वं प्रघातयति। तस्मात् यदि लुब्धको ऋक्षचर्मानुप्रयच्छति ग्रहीतव्यम्। गृहीत्वा गन्धकुटिद्वारे प्रज्ञपयितव्यं पादान्ते वा। सर्वं ऋक्षचर्म चाक्षुष्यं स्वस्ति।

भिक्षोरुपानहाश्छिन्नाः। स चर्मकारसकाशं गच्छति। [यावत्] दीर्घकालं गत्वा स्वबुद्धेर्धारयिष्यतीति। सोऽन्यतमेन भिक्षुणा दृष्टः। यावदस्ति मम कौशलं यदि भगवाननुजानीयाद् ग्रन्थयेयम्। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। यस्य कौशलं विद्यते तेन प्रतिगुप्ते प्रदेशे स्थित्वा ग्रन्थयितव्यम्। स कथयति। भगवतानुज्ञातः। ग्रन्थये। तत्रारया शस्त्रकेण बद्धिकया च प्रयोजनम्। एतत्प्रकरणं भिक्षवो भगवत आरोचयन्ति। भगवानाह। तस्मादनुजानामि भिक्षुणा आरा शस्त्रकं बद्धिका च धारयितव्याः।

चर्मवस्तु समाप्तम्।

G.M. 213 [अयं मम कायो रूपी चातुर्महाभूतिकः । वि] ज्ञानमत्र प्रतिष्ठितमत्र पर्यापन्नम् ।
यत्त्वहमस्मात् कायात् मानसं व्युत्थाप्यान्यं कायमभिनिर्मायां रूपिणं मनोमयमविकल-
महीनेन्द्रियम् । स तस्मात् का [यात् मानसं व्युत्थाप्यान्यं कायमभिनिर्मिमीते रूपिणं
मनोमयम] विकलमहीनेन्द्रियम् । तद्यथा [मणिर] ष्टांगो वैडूर्यः शुभो जातिमानच्छो
विप्रसन्नोऽनाविलः पञ्चाङ्गरंगिके सूत्रेऽर्पितः स्यात् नीले पीते लोहिते अवदाते मंजिष्ठे ।
तं चक्षुष्मान् पुरुषो दृष्ट्वा [जानीयादयं मणिरिदं सूत्रमिति । एवमेव] स तस्मात्
कायात् मानसं व्युत्थाप्यान्यं कायमभिनिर्मिमीते रूपिणं मनोमयमविकलमहीनेन्द्रियम् ।
तद्यथा पुरुषो मुंजादिषिकामावृह्यात् । तं चक्षुष्मान् पुरुषो दृष्ट्वा जानीयादयं [मुंज
G.M. 214 इयमिषिका । एवमेव स तस्मात् कायात् मानसं व्युत्थाप्यान्यं कायमभिनिर्मिमीते रूपिणं
मनोमयमविकलमहीनेन्द्रियम् । तद्यथा पुरुषः करण्डादहिमावृह्यात् । तं चक्षुष्मान्
पुरुषो दृष्ट्वा जानीयादयं करण्डः [अयमहिः । एवमेव स] तस्मात् कायात् मानसं
व्युत्थाप्यान्यं कायमभिनिर्मिमीते रूपिणं मनोमयमविकलमहीनेन्द्रियम् । तद्यथा पुरुषः
कोषादसिमावृह्यात् । तं चक्षुष्मान् पुरुषो दृष्ट्वा जानीयादयं कोशोऽयमसिः । [एवमेव
स तस्मात् कायात् मानसं] व्युत्थाप्यान्यं कायमभिनिर्मिमीते रूपिणं मनोमयमविकलमही-
नेन्द्रियम् ।

स एवं समाहिते चित्ते परिशुद्धे पर्यवदाते अनंगणे विगतोपक्लेशे रिजुभूते कर्मण्ये
स्थिते आनिञ्ज्यप्राप्ते ऋद्धिविषयसाक्षात्क्रियायामभिज्ञायां चित्तमभिनिर्नमय्य सोऽनेकविध-
मृद्धिविषयं प्रत्यनुभवति । तद्यथा एको भूत्वा बहुधा भवति । बहुधा भूत्वैको
भवति । आविर्भावं तिरोभावं ज्ञानदर्शनेन प्रत्यनुभवति । तिरःकुड्यं तिरःशैलं
तिरःप्राकारमसज्जमानं कायेन गच्छति तद्यथा आकाशे । पृथिव्यामुन्मज्जननिमज्जनं
करोति तद्यथा उदके । उदके अभिन्दस्रोतो गच्छति तद्यथा पृथिव्याम् । आकाशे
पर्यङ्केनातिक्रामति तद्यथा पक्षी शकुनिः । इमौ वा सूर्याचन्द्रमसावेवं महर्द्धिकावेवं
G.M. 215 महानुभावौ पाणिना आमार्ष्टि परामार्ष्टि यावद् ब्रह्मलोकं कायेन वशे वर्तयति ।
तद्यथा दक्षः कर्मारो वा कर्मारान्तेवासी वा सुपरिकर्मीकृतं जातरूपं विदित्वा यां यां
पिलन्धनविकृतिं काङ्क्षत्युपनयितुं यदि वा पट्टिकायां यदि वा कर्णिकायां यदि वा
ग्रैवेये यदि वा हस्ताभरणे यदि वा पादाभरणे यदि वा अंगुलिमुद्रिकायां यदि वा

जातरूपमालायां तत्र तत्र लघु लघ्वेवोपनयति। एवमेव स एवं समाहिते परिशुद्धे
पर्यवदाते अनंगणे विगतोपक्लेशे रिजुभूते कर्मण्ये स्थिते आनिंज्यप्राप्ते रिद्धिविषयज्ञान-
साक्षात्क्रियायामभिज्ञायां चित्तमभिनिर्णामयति। सोऽनेकविधमृद्धिविषयं प्रत्यनुभवति।
तद्यथा एको भूत्वा बहुधा भवति। बहुधा भूत्वा एको भवति। आविर्भावं तिरोभावं
ज्ञानदर्शनेन प्रत्यनुभवति। तिरःकुड्यं तिरःशैलं तिरःप्राकारमसज्जमानः कायेन
गच्छति तद्यथा आकाशे। पृथिव्यामुन्मज्जननिमज्जनं करोति तद्यथोदके। उदके
अभिन्दस्रोतो गच्छति तद्यथा पृथिव्याम्। आकाशे पर्यङ्केनातिक्रामति तद्यथा पक्षी
[शकुनिः]। इमौ वा पुनः सूर्याचन्द्रमसावेवं महर्द्धिकावेवं महानुभावौ पाणिना
आमार्ष्टि परिमार्ष्टि यावद् ब्रह्मलोकं कायेन वशे वर्तयति। तद्यथा दक्षः कुम्भकारो वा
कुम्भकारान्तेवासी वा सुपरिकर्मीकृतं मृत्पिण्डं विदित्वा यां यामेव काङ्क्षते भाजनविकृति-
मभिनिर्वर्तयितुं तां तामेव भाजनविकृतिं लघुलघ्वेवाभिनिर्वर्तयति। एवमेव स एवं
समाहिते चित्ते पर्यवदाते अनंगणे विगतोपक्लेशे रिजुभूते कर्मण्ये स्थिते आनिंज्यप्राप्ते G.M. 216
रिद्धिविषयज्ञानसाक्षात्क्रियायामभिज्ञायां चित्तमभिनिर्णामयति। एवमेव सोऽनेकविधमृ-
द्धिविषयं प्रत्यनुभवति। तद्यथा एको भूत्वा बहुधा भवति। बहुधा भूत्वैको भवति।
आविर्भावं तिरोभावं ज्ञानदर्शनेन प्रत्यनुभवति। तिरःकुड्यं तिरःशैलं तिरःप्राकारम-
सज्जमानेन कायेन गच्छति तद्यथा आकाशे। पृथिव्यामुन्मज्जननिमज्जनं करोति
तद्यथोदके। उदके अभिन्दस्रोतो गच्छति तद्यथा पृथिव्याम्। आकाशे पर्यङ्केनाति-
क्रामति तद्यथा पक्षी शकुनकः। इमौ वा सूर्याचन्द्रमसावेवं महर्द्धिकावेवं महानुभावौ
पाणिना अमार्ष्टि परिमार्ष्टि यावद् ब्रह्मलोकं कायेन वशे वर्तयति। तद्यथा दक्षो
दन्तकारो वा दन्तकारान्तेवासी वा सुपरिकर्मीकृतं [दन्तं यां यामेव काङ्क्षते रूप]
विकृतिमभिनिर्वर्तयितुं तां तामेव रूपविकृतिं लघु लघ्वेवाभिनिर्वर्तयति। एवमेव स एवं
समाहिते चित्ते पर्यवदाते अनंगणे विगतोपक्लेशे रिजुभूते कर्मण्ये स्थिते आनिंज्यप्राप्ते
रिद्धिविषयज्ञानसाक्षात्क्रियायामभिज्ञायां चित्तमभिनिर्णामयति। सोऽनेकविधं रिद्धिविषयं
प्रत्यनुभवति। तद्यथा एको भूत्वा बहुधा भवति। बहुधा भूत्वैको भवति। आविर्भावं
तिरोभावं ज्ञानदर्शनेन प्रत्यनुभवति। तिरःकुड्यं तिरःशैलं तिरःप्राकारमसज्जमानेन
कायेन गच्छति तद्यथा आकाशे। पृथिव्यामुन्मज्जननिमज्जनं करोति तद्यथोदके। G.M. 217
उदके अभिन्दस्रोतो गच्छति तद्यथा [पृथिव्याम्]। आकाशे पर्यङ्केनातिक्रामति
तद्यथा पक्षी शकुनकः। इमौ वा पुनः सूर्याचन्द्रमसावेवं महर्द्धिकावेवं महानुभावौ
पाणिना आमार्ष्टि परिमार्ष्टि यावद् ब्रह्मलोकं कायेन वशे वर्तयति।

किं मन्यसे महाराज नन्वेवं सति मया दर्शितं सांदृष्टिकं श्रामण्यफलम्। तथ्यं भदन्त एवं सति भगवता दर्शितं सांदृष्टिकं श्रामण्यफलम्।

स एवं समाहिते चित्ते परिशुद्धे पर्यवदाते अनंगणे विकतोपक्लेशे रिजुभूते कर्मण्ये स्थिते आनिञ्ज्यप्राप्ते दिव्यश्रोत्रज्ञानसाक्षात्क्रियायामभिज्ञायां चित्तमभिनिर्णामयति। स दिव्येन श्रोत्रेण विशुद्धेनातिक्रान्तमानुष्येणोभयान् शब्दान् शृणोति मानुष्यानप्यमानुष्यानपि। येऽपि दूरे येऽप्यन्तिके। तद्यथा शंखधामकः पुरुषो महाशैलपर्वतमभिरुह्य निशार्धे शंखमाधमेत्तस्य शब्दोऽव्याहतः पृथग्दिशः स्फुरेत्। एवमेव स एवं समाहिते चित्ते परिशुद्धे पर्यवदाते अनङ्गणे विगतोपक्लेशे ऋजुभूते कर्मण्ये स्थिते आनिञ्ज्यप्राप्ते
G.M. 218 दिव्यश्रोत्रज्ञानसाक्षातक्रियायामभिज्ञायां चित्तमभिनिर्णामयति। स दिव्येन श्रोत्रेण विशुद्धेनातिक्रान्तमानुष्येणोभयान् शब्दान् शृणोति मानुष्यानप्यमानुष्यानपि। येऽपि दूरे येऽप्यन्तिके।

स एवं समाहिते चित्ते परिशुद्धे पर्यवदाते अनङ्गणे विगतोपक्लेशे ऋजुभूते कर्मण्ये स्थिते आनिञ्ज्यप्राप्ते चेतः पर्यायज्ञानसाक्षात्क्रियायामभिज्ञायायां चित्तमभिनिर्णामयति। स परसत्त्वानां परपुद्गलानां वितर्कितं विचारितं मनसा मानसं यथाभूतं प्रजानाति। सरागं चित्तं सरागं चित्तमिति यथाभूतं प्रजानाति। विगतरागं चित्तं विरागं चित्तमिति यथाभूतं प्रजानाति। सद्वेषं विगतद्वेषं समोहं विगतमोहं संक्षिप्तं विक्षिप्तं लीनं प्रगृहीतमुद्धतमनुद्धतम्। अव्युपशान्तं व्युपशान्तं समाहितमसमाहितमभावितं सुभावितम् अविमुक्तं वा चित्त [मविमुक्तं चित्त] मिति यथाभूतं प्रजानाति। विमुक्तं वा चित्तं विमुक्तं चित्तमिति यथाभूतं प्रजानाति। तद्यथा चक्षुष्मान् पुरुषः सुपरिशुद्धमादर्शमण्डलं गृहीत्वा संमुखनिमित्तं वा प्रत्यवेक्षते। एवमेव स एवं समाहिते चित्ते परिशुद्धे पर्यवदाते अनङ्गणे विगतोपक्लेशे ऋजुभूते कर्मण्ये स्थिते आनिञ्ज्यप्राप्ते चेतः पर्यायज्ञानसाक्षात्क्रियायामभिज्ञायां चित्तमभिनिर्णामयति। स परसत्त्वानां
G.M. 219 परपुद्गलानां वितर्कितं विचारितं मनसा मानसं यथाभूतं प्रजानाति। सरागं चित्तं सरागं चित्तमिति यथाभूतं प्रजानाति। विगतरागं चित्तं विगतरागं चित्तमिति यथाभूतं प्रजानाति। सद्वेषं विगतद्वेषं समोहं विगतमोहं संक्षिप्तं विक्षिप्तं लीनं प्रगृहीतमुद्धतमनुद्धतमव्युपशान्तं व्युपशान्तं समाहितमसमाहितं सुभावितमभावितमविमुक्तं वा चित्तमविमुक्तं चित्तमिति यथाभूतं प्रजानाति। सुविमुक्तं वा चित्तं सुविमुक्तं चित्तमिति यथाभूतं प्रजानाति।

किं मन्यसे महाराज न त्वेवं सति मया दर्शितं सांदृष्टिकं श्रामण्यफलम् । तथ्यं भदन्त एवं सति भगवता दर्शितं सांदृष्टिकं श्रामण्यफलम् ।

स एवं समाहिते चित्ते परिशुद्धे पर्यवदाते अनङ्गणे विगतोपक्लेशे ऋजुभूते कर्मण्ये स्थिते आनिञ्ज्यप्राप्ते पूर्वनिवासानुस्मृतिज्ञानसाक्षात्क्रियायां चित्तमभिनिर्णामयति । सोऽनेकविधं पूर्वनिवासं समनुस्मरति । तद्यथा एकामपि द्वे तिस्रश्चतस्रः पंच षट् सप्ताष्टौ नव दश विंशतं त्रिंशतं चत्वारिंशतं पंचाशतं जातिशतं जातिसहस्रं जातिशत-सहस्रम् अनेकान्यपि जातिशतानि अनेकान्यपि जातिसहस्राणि अनेकान्यपि जातिशत-सहस्राणि संवर्तकल्पमपि विवर्तकल्पमपि संवर्तविवर्तकल्पमपि अनेकानपि संवर्त [कल्पा]-ननेकानपि विवर्तकल्पाननेकानपि संवर्तविवर्तकल्पान् समनुस्मरति । अमी नाम ते भवन्तः सत्त्वा यत्राहमासम् । एवंनामा एवंजात्य एवंगोत्र एवमाहार एवंसुखदुःखप्रति-संवेदी एवं दीर्घायुः एवंचिरस्थितिक एवमायुष्पर्यन्तः । सोऽहं तस्मात् स्थानाच्च्युतो- G.M. 220 ऽमुत्रोपपन्नः । तस्मादपि च्युतोऽमुत्रोपपन्नः । तस्मादपि च्युतः इहोपपन्न इति । साकारं सोद्देशमनेकविधं पूर्वनिवासमनुस्मरति । तद्यथा पुरुषो ग्रामाद् ग्रामं गच्छेत् । तस्मादपि ग्रामादपरं ग्रामं गच्छेत् । तस्मादप्येहागच्छेत् । तस्यैवं स्यात् । अहम-मुष्माद ग्रामादमुं ग्राममागतः । तस्मादप्येहागत इति । एवमेव स एवं समाहिते चित्ते परिशुद्धे पर्यवदाते अनङ्गणे विगतोपक्लेशे ऋजुभूते कर्मण्ये स्थिते आनिञ्ज्यप्राप्ते पूर्वनिवासानुस्मृतिज्ञानसाक्षात्क्रियायामभिज्ञायां चित्तमभिनिर्णामयति तद्यथा एकामपि जातिं द्वे तिस्रश्चतस्रः पंच षट् सप्ताष्टौ नव दश विंशतं त्रिंशतं चत्वारिंशतं पंचाशतं जातिशतं [जातिसहस्रं] जातिशतसहस्रमनेकान्यपि जातिशतानि अनेकान्यपि जातिसहस्राणि अने-कान्यपि जातिशतसहस्राणि संवर्तकल्पमपि विवर्तकल्पमपि संवर्तविवर्तकल्पमपि अनेकानपि संवर्तकल्पान् [अनेकानपि विवर्तकल्पान्] अनेकानपि संवर्तविवर्तकल्पान् समनुस्मरति । अमी नाम ते भवन्तः सत्त्वा यत्राहमेवंनामा आसम् । एवंजात्य एवंगोत्र एवमाहार एवंसुखदुःखप्रतिसंवेदी एवंदीर्घायुः एवंचिरस्थितिक एवमायुष्पर्यन्तः । सोऽहं तस्मात्स्थानाच्च्युतः अमुत्रोपपन्नः । तस्मादपि च्युतोऽमुत्रोपपन्नः । तस्मादपि च्युतः इहोपपन्न इति । शाकारं सोद्देशमनेकविधं पूर्वनिवासमनुस्मरति ।

किं मन्यसे महाराज न त्वेवं सति मया दर्शितं सांदृष्टिकं श्रामण्यफलम् । तथ्यं भदन्त एवं सति भगवता दर्शितं सांदृष्टिकं श्रामण्यफलम् ।

स एवं समाहिते चित्ते परिशुद्धे पर्यवदाते अनंगने विगतोपक्लेशे ऋजुभूते G.M. 221

कर्मण्ये स्थिते आनिञ्ज्यप्राप्ते च्युत्युपपादज्ञानसाक्षात्क्रियायामभिज्ञायां चित्तमभिनिर्णामयति दिव्येन चक्षुषा विशुद्धेनातिक्रान्तमानुष्यकेन सत्त्वान् पश्यति च्यवमानानुपपद्यमानानपि सुवर्णानपि दुर्वर्णानपि हीनानपि प्रणीतानपि सुगतिमपि गच्छतो दुर्गतिमपि यथाकर्मोपयोगात्सत्त्वा [न्] यथाभूतं प्रजानाति । अमी भवन्तः सत्त्वाः कायदुश्चरितेन समन्वागता वाङ्मनोदुश्चरितेन समन्वागता आर्याणामपवादका मिथ्यादृष्टयो मिथ्यादृष्टिकर्मधर्मसमादानहेतोस्तद्धेतु' तत्प्रत्ययं कायस्य भेदात्परं मरणमपायदुर्गतिविनिपातं नरकमुपपद्यन्ते । अमी वा पुनर्भवन्तः सत्त्वाः कायसुचरितेन समन्वागता वाङ्मनःसुचरितेन समन्वागता आर्याणामनपवादकाः सम्यग्दृष्टयः सम्यग्दृष्टिकर्मधर्मसमादानहेतोस्तद्धेतुं तत्प्रत्ययं कायस्य भेदात्सुगतौ स्वर्गलोके देवेषूपपद्यन्ते ।

स एवं समाहिते चित्ते परिशुद्धे पर्यवदाते अनङ्गणे विगतोपक्लेशे ऋजुभूते कर्मण्ये स्थिते आनिञ्ज्यप्राप्ते आस्रवक्षयज्ञानसाक्षात्क्रियायामभिज्ञायां चित्तमभिनिर्णामयति । स इदं दुःखम् आर्यसत्यमिति यथाभूतं प्रजानाति । अयं दुःखसमुदयोऽयं दुःखनिरोधः । इयं दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपत् आर्यसत्यमिति यथाभूतं प्रजानाति । तस्यैवं जानत एवं पश्यतः कामास्रवाच्चित्तं विमुच्यते । भवास्रवादविद्यास्रवाच्चित्तं G.M.222 विमुच्यते । विमुक्तस्य विमुक्तमेव ज्ञानदर्शनं भवति । क्षीणा मे जातिः व्युषितं ब्रह्मचर्यं कृतं करणीयं नापरस्माद्भवं प्रजानातीति । तद्यथा ग्रामस्य वा निगमस्य वा नातिदूरे गम्भीरे स्यादुदकह्रदः अच्छो विप्रसन्नोऽनाविलः । तत्र चक्षुष्मान्पुरुषस्तीरे निषण्णः पश्येत् शर्करान् वा कठल्लानि वा मत्स्यान्वा कूर्मान्वा शुक्तीर्वा शम्बूकान्वा । एवमेव स एवं समाहिते परिशुद्ध पर्यवदाते अनङ्गणे विगतोपक्लेशे ऋजुभूते कर्मण्ये स्थिते आनिञ्ज्यप्राप्ते आस्रवक्षयज्ञानसाक्षात्क्रियायामभिज्ञायां चित्तमभिनिर्णामयति । स इदं दुःखम् आर्यसत्यमिति यथाभूतं प्रजानाति । अयं दुःखसमुदयः । अयं दुःखनिरोधः । इयं दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपत् आर्यसत्यमिति यथाभूतं प्रजानाति । तस्यैवं जानत एवं पश्यतः कामास्रवाच्चित्तं विमुच्यते । भवास्रवादविद्यास्रवाच्चित्तं विमुच्यते । विमुक्तस्य विमुक्तमेव ज्ञानदर्शनं भवति । क्षीणा मे जातिः व्युषितं ब्रह्मचर्यं कृतं करणीयं नापरस्माद्भवं प्रजानातीति ।

किं मन्यसे महाराज न त्वेवं सति मया दर्शितं सांदृष्टिकं श्रामण्यफलम् । तथ्यं भदन्त एवं सति भगवता दर्शितं सांदृष्टिकं श्रामण्यफलम् ।

एवमुक्ते राजा मागधोऽजातशत्रुर्वैदेहीपुत्रः प्रारोदीदश्रूणि वर्षयन् । अथ राजा मागधोऽजातशत्रुर्वैदेहीपुत्रः चीवरकर्णिकेनाश्रूण्युत्सृज्य भगवतः पादयोर्निपत्य भगवन्त-

मिदमवोचत् । अत्ययो भगवन्नत्ययः सुगत यथा बालो यथा मूढो यथा अव्यक्तो यथा अकुशलः येन मया पापमित्रसहायेन पापमित्रोवशंगतेन पापमित्रपगूढ़केन पिता G. M. 223 धार्मिको धर्मराजो जीविताद् व्यपोरपितः । तस्य मम भदन्त अत्ययं जानतोऽत्ययं पश्यतोऽत्ययमत्ययतः प्रतिगृह्णीष्वानुकम्पामुपादाय । तथ्यं त्वं महाराज अत्ययमत्ययतः तद्यथा बालो यथा मूढो यथा अव्यक्तो यथा अकुशलो येन त्वया पापमित्रसहायेन पापमित्रवशंगतेन पापमित्रोपगूढ़केन पिता धार्मिको धर्मराजो जीविताद्व्यपरोपितः । यतश्च त्वं महाराज अत्ययं जानासि अत्ययं पश्यसि च दृष्ट्वादेशयसि । आयत्यां च संवरमापद्यसे वृद्धिरेव ते प्रतिकांक्षितव्या कुशलानां धर्माणां न हानिः । तत्कस्य हेतोः । यः कश्चिन्महाराज अत्ययं जानाति अत्ययं पश्यति तं दृष्ट्वादेशयति आयत्यां च संवरमापद्यते वृद्धिरेवास्य प्रतिकांक्षितव्या कुशलानां धर्माणां न हानिः । एवमेव त्वं महाराज यतश्चात्ययं जानासि अत्ययं च पश्यसि दृष्ट्वादेशयसि आयत्यां च संवरमापद्यसे वृद्धिरेव ते प्रतिकांक्षितव्या कुशलानां धर्माणां न हानिः ।

अथ राजा मागधोऽजातशत्रुर्वैदेहीपुत्रो भगवन्तमिदमवोचत् । अधिवासयतु मे भगवान् श्वोऽन्तर्गृहे भक्तेन सार्धं भिक्षुसंघेन । अधिवासयति भगवान् राज्ञो मागधस्याजातशत्रोर्वैदेहीपुत्रस्य तूष्णींभावेन । अथ राजा मागधोऽजातशत्रुर्वैदेहीपुत्रो भगवतस्तूष्णींभावेनाधिवासनां विदित्वा भगवतो भाषितमभिनन्द्यानुमोद्य भगवतः पादौ शिरसा वन्दित्वा भगवतोऽन्तिकात्प्रक्रान्तः । अथ भगवानचिरप्रक्रान्तं राजानं मागधमजातशत्रुं वैदेहीपुत्रं विदित्वा भिक्षूनामंत्रयते स्म । क्षतो भिक्षवो राजा मागधोऽजातशत्रुर्वैदेहीपुत्रः उपहतो येन पापमित्रसहायेन पापमित्रवशंगतेन G.M. 224 पापमित्रोपगूढ़ेन पिता वा धार्मिको धर्मराजो धर्मस्थितो महाराजो जीविताद्व्यपरोपितः । स चेद्भिक्षवो राजा मागधेनाजातशत्रुणा वैदेहीपुत्रेण पिता धार्मिको धर्मराजो धर्मस्थितो महाराजो जीवितान्न व्यपरोपितोऽभविष्यत् स्थानमेतद्विद्यते यदस्मिन्नेवासने निषण्णेन चत्वारि आर्यसत्यान्यभिसमितान्यभविष्यत् । एवं क्षतो भिक्षवो राजा मागधोऽजातशत्रुर्वैदेहीपुत्र एवमुपाहतः । तस्मात्तर्हि भिक्षव एवं शिक्षितव्यम् । दग्धस्थूणायामपि चित्तं न प्रदूषयिष्यामः प्रागेव सविज्ञानके काये । इत्येवं वो भिक्षवः शिक्षितव्यम् ।

अथ राजा मागधोऽजातशत्रुर्वैदेहीपुत्रस्तामेव रात्रिं शुचिप्रणीतं खादनीयभोजनीयं समुदानीय काल्यमेवोत्थायासनानि प्रज्ञप्योदकमणीन्प्रतिष्ठाप्य भगवतो दूतेन कालमारो-

चयति । समयो भदन्तः सज्जं भक्तं यस्यैवेदानीं भगवान्कालं मन्यते । अथ भगवान्पूर्वाह्णे निवास्य पात्रचीवरमादाय भिक्षुगणपरिवृतो भिक्षुसंघपुरस्कृतो येन राज्ञो मागधस्याजातशत्रोर्वैदेहीपुत्रस्य भक्ताभिसारस्तेनोपसंक्रान्तः । उपसंक्रम्य पुरस्ताद्भिक्षुसंघस्य प्रज्ञप्त एवासने न्यषीदत् । अथ राजा मागधो अजातशत्रुर्वैदेहीपुत्रः सुखोपनि-
G.M. 225 षण्णं बुद्धप्रमुखं भिक्षुसंघं विदित्वा शुचिना प्रणीतेन खादनीययभोजनीयेन स्वहस्तं सन्तर्पयति संप्रवारयति । अनेकपर्यायेण शुचिना प्रणीतेन खादनीयभोजनीयेन स्वहस्तं संतर्प्य संप्रवाय भगवन्तं भुक्तवन्तं विदित्वा धौतहस्तमपनीतपात्रं नीचतरमासनं गृहीत्वा भगवतः पुरस्तान्निषण्णो धर्मश्रवणाय ।

अथ भगवान् राज्ञो मागधस्याजातशत्रोर्वैदेहीपुत्रस्य तद्दानमनया अभ्यनुमोदन[गाथ]याभ्यनुमोदते ।

अग्निहोत्रमुखा यज्ञाः सावित्री च्छन्दसां मुखम् ।
राजा मुखं मनुष्याणां नदीनां सागरो मुखम् ॥ १ ॥
नक्षत्राणां मुखं चन्द्र आदित्यस्तपतां मुखम् ।
ऊर्ध्वं तिर्यगधश्चापि यावती जगतो गतिः ।
सदेवकेषु [लोकेषु] संबुद्धो हीज्यतां वरः ॥ २ ॥

अथ भगवान् राजानं मागधमजातशत्रुं धर्म्यया कथया संदर्शयति समादापयति समुत्तेजयति संप्रहर्षयति । अनेकपर्यायेण धर्म्यया कथया संदर्श्य समादाप्य समुत्तेज्य संप्रहर्ष्योत्थायासनात् प्रक्रान्तः ।

यदा भगवता राजा अजातशत्रुर्वैदेहीपुत्रोऽमूलकया श्रद्धया प्रतिष्ठापितः तदा
G.M.226 यदा भगवन्तं हर्म्यतलस्थो हस्तिस्कन्धावरूढो वा पश्यति तदात्मानं मुञ्चति । यावदपरेण समयेन हस्तिस्कन्धावरूढेन भगवान् दृष्टः । तेनात्मा मुक्तः । भगवता ऋद्धया प्रतीष्टः । पौरुषेयमन्तर्जनं चामन्त्रयते । यत् खलु भवन्तः जानीयात् । अद्याग्रेणाहं भगवतः श्रावको भगवन्तं शरणं गतः । अद्याग्रेणानावृतं द्वारं भगवतः श्रावकाणां भिक्षूणां भिक्षुणीनामुपासकानामुपासिकानामावृतं द्वारं देवदत्तस्य श्रावकाणां चेति ।

यावदपरेण समयेन देवदत्तो राज्ञोऽजातशत्रोर्गृहं प्रवेष्टुमारब्धो दौवारिकेणाभिहितः । तिष्ठ मा प्रवेक्ष्यसीति । किं कारणम् । देवेनाज्ञा दत्ता । अद्याग्रेणाहं भगवतः श्रावको भगवन्तं शरणं गतः । अद्याग्रेणानावृतं द्वारं भगवतः श्रावकाणां

भिक्षूणां भिक्षुणीनामुपासकानामुपासिकानाम् । आवृतं तु देवदत्तस्य देवदत्तश्रावकाणां देवदत्तश्राविकाणां चेति । स च द्वारे विधारितस्तिष्ठति । उत्पलवर्णा च भिक्षुणी पिण्डपातमादाय राजकुलान्निष्क्रामति । देवदत्तस्यैतदभवत् । अस्या मुण्डिकायाः श्रामणिकाया एतत् कर्म । अनया राजा अजातशत्रुः सान्तःपुरकुमारेभ्यो भिन्नो येन मे समवस्थेति विदित्वोत्पलवर्णामिदमवोचत् । किं मया तवापराद्धं येन त्वया मम भैक्ष्याककुलं दूरीकृतमिति । स तां प्रघातयितुमारब्धः । सा प्रघात्यमाना करुणदीन-विलपितैरक्षरैरुवाच । आर्य शान्तं किमहमेवं करिष्ये । त्वं तावद्भगवतो भ्राता G.M. 227
पुनः शाक्यकुलात्प्रव्रजितः । नाहमेवं करोमि क्षमस्वेति । तथाप्युच्यमानेन देवदत्तेन तस्य शिरसि खटप्रहारो दत्तः । सा मर्मवेदनाभ्याहता । जीवितसंस्कारानधिष्ठाय आयुःसंस्कारा[न]नुत्सृज्य [वीर्य]मवलम्ब्य भिक्षुणीवर्षकं गता । भिक्षुण्यस्तां तथाविधां दृष्ट्वा कथयन्ति । अहो आर्ये किमिदमिति । सा कथयति । भगिन्यः सर्वसंस्कारा अनित्याः । सर्वधर्मा अनात्मानः । शान्तं निर्वाणम् । युष्माभिः कुशलेषु धर्मेष्वप्रमादः करणीयः । देवदत्तेन तृतीयमानन्तर्यं कृतम् । परिनिर्वास्यामीति । ततोऽसौ भिक्षुणीसंघस्य पुरस्ताद्विचित्राणि प्रातिहार्याणि कृत्वा निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वृता ।

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः । पश्य भदन्त देवदत्तेनोत्पलवर्णा भिक्षुणी करुणकरुणं विप्रलपन्ती खटप्रहारेण प्रघातिता इति । भगवानाह । न भिक्षव एतर्हि यथा अतीतेऽप्यध्वन्यस्याः करुणकरुणं विप्रलपन्त्या हत्वा मांसं भक्षितम् । तच्छ्रूयताम् ।

भूतपूर्वं भिक्षवोऽन्यतमस्मिन्कर्वटके गृहपतिः प्रतिवसति । तस्य एडकानां वर्गः । तच्चारणाय एडकपालो ग्रामाद्बहिर्निर्गतः । ततश्चारयित्वा सूर्यस्यास्तंगमनकालसमये कर्वटकं प्रवेशयितुमारब्धः । तत्रान्यतरा जीर्णेडिका पृष्ठतोऽवलम्बमानो वृको गच्छति । तावद्वृकेण गृहीता । कथयति ।

कच्चित्ते मातुल क्षेमं सुखं कच्चित्तु मातुल । G.M. 228
एकः कश्चिदरण्येऽस्मिन् सुखं विन्दसि मातुल ॥ इति । ३ ॥

सोऽपि कथयति ।

मर्दित्वा मम लाङ्गूलं खोसयित्वा च वालधिम् ।
अथ मातुलवादेन कुत्र मोक्ष्यसि एडक ॥ इति । ४ ॥

एडिका पुनराह ।

पृष्ठतस्तव लाङ्गूलं पुरुतो ह्यागता अहम् ।
अथ केनाभ्युपायेन लाङ्गूलं मर्दितं मया ॥ इति । ५ ॥

वृको भूयः कथयति ।

चत्वारस्तु इमे द्वीपाः ससमुद्राः सपर्वताः ।
सर्वेषु मम लाङ्गूलमथ केन त्वमागता ॥ इति । ६ ॥

एडिका प्राह ।

पूर्वमेव मया भद्र ज्ञातीनामन्तिकाच्छ्रुतम् ।
सर्वत्र तव लाङ्गूलमाकाशेनाहमागता ॥ इति । ७ ॥

वृकः प्राह ।

आकाशेन पतन्त्या वै त्वया मे अजरेडके ।
त्रासितो मृगसंघोऽसौ यो मे भक्ष्य उपागतः ॥ इति । ८ ॥
एवं तस्या प्रलपन्त्या उत्पत्य पापकर्मणा ।
एडिकायाः शिरच्छिन्नं हत्वा मांसं च भक्षितम् ॥ ९ ॥

भगवानाह । किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ वृकः एष एव स देवदत्तस्तेन कालेन
G. M. 229 तेन समयेन । या साजरेडिका एषैव सा उत्पलवर्णा तेन कालेन तेन समयेन । तदाप्येषा करुणकरुणं विलपन्ती प्रघातिता । एतर्ह्यप्येषा करुणकरुणं विप्रलपन्ती प्रघातिता ।

अथ देवदत्तस्यैतदभवत् । बहुशो मया भगवता पराक्रान्तमानन्तर्यत्रयं कृतम् । भगवतः शिला क्षिप्ता रुधिरोत्पादः कृतः इदं प्रथममानन्तर्यम् । संघो भिन्नः इदं द्वितीयम् । उत्पलवर्णा जीविताद्व्यपरोपिता इदं तृतीयम् । न च सर्वज्ञत्वमवाप्तम् । न चान्या काचित्कार्यसिद्धिरवाप्ता । नान्यत्रेदानीं नरकेषूपपत्तव्यमिति विदित्वा करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरो व्यवस्थितः ।

यावत्पूरणस्तं प्रदेशमनुप्राप्तः । स कथयति । देवदत्त किमर्थं करे कपोलं दत्त्वा चिन्तापरस्तिष्ठसीति । स कथयति । कथमहं न चिन्तापरस्तिष्ठामि । येन मया द्वेषावेशाद्भगवतो बहुशः पराक्रान्तम् । त्रीणि चानन्तर्यकर्माणि कृतानि । चिरमवीचौ महानरके वस्तव्यं भविष्यतीति । स कथयति । [ज्ञातं मया त्व] मेकः

शाक्यानां पंडित इति । त्वमपि मूर्खः । कुतः परलोको येन त्वमेवं चिन्तापरो व्यवस्थितः । यदि परलोकः स्यात् त्वया ईदृशं कर्म कृतमिति वयमपि त्वदर्थं चिन्तापरस्तिष्ठेम । तत्प्रत्ययनार्थं च तेन तस्य पुरस्तात्कुंडिका भग्ना । [पश्य एवं] तावल्लोकः । एतां प्रतिसंदधातु । सर्वथा मा त्रासपरो भव । नास्त्यत्र कर्ता वा कारको वा । G.M. 230 अपि तु गच्छ कपिलवस्तु नगरम् । गत्वा राज्यं कारय । वयं तवाग्रे श्रावका भविष्याम इति । तत्र देव[दत्त] आर्यापवादिकां मिथ्यादृष्टिं प्रतिलब्धवान् । यया सर्वेण सर्वकुशलमूलानि समुच्छिन्नानि । तत्र भगवान्भिक्षूनामंत्रयते स्म । समुच्छिन्नानि भिक्षवो देवदत्तेन कुशलमूलानि । याव[द]हं भिक्षवो देवदत्तस्य शुक्लं धर्ममद्राक्षम् । न तावन्मया देवदत्तो व्याकृत इत्यपि देवदत्त आपायिको नैरयिकः कल्पस्थोऽचिकित्स्य इति । तद्यथा ग्रामस्य वा निगमस्य वा नातिदूरे गूथाधारं स्यादूर्ध्वं साधिकपौरुष्यम् । तत्र कश्चिदेव पुरुषः सशिरः पाणिपादो मग्नः स्यात् । तस्य कश्चिदेव पुरुष उपपद्येत दीर्घरात्रमर्थकामो हितकामः सुखकामः स्पर्शकामो योगक्षेमकामः । स तं गूथाधारं सामन्तकेनानुपरिवार्यागच्छेदप्येव लभेयास्य पुरुषस्य कंचिदेव प्रदेशं गूथेनाम्रक्षितं यत्रैनं गृहीत्वोद्धरेयमिति । स तत्र सामन्तकेनानुपरिवार्यागच्छन्न लभते तस्य पुरुषस्य कंचिदेव प्रदेशं गूथेन म्रक्षितम् । अन्ततः पाणितलमात्रमपि यत्रैनं गृहीत्वोद्धरेत् । एवमेव यतश्चाहं भिक्षवो देवदत्तस्य शुक्लं धर्ममद्राक्षं न तावन्मया देवदत्तो व्याकृत इत्यपि देवदत्त आपायिको नैरयिकः कल्पस्थोऽचिकित्स्य इति । यतश्चाहं देवदत्तस्य शुक्लं धर्मं नाद्राक्षम् अन्ततो बालाग्रकोटीमात्रमपि ततो मया देवदत्तो व्याकृत इत्यपि देवदत्त आपायिको नैरयिकः कल्पस्थोऽचिकित्स्य इति । G.M. 231 त्रिभिर्भिक्षवः असद्धर्मैः समन्वागतो देवदत्त आपायिको नैरयिकः कल्पस्थोऽचिकित्स्यः । कतमैस्त्रिभिः । पूर्वमेव भिक्षवो पापेच्छोऽभूत् पापिकया इच्छया वशगतः । यद्देवदत्तः पूर्वमेव पापेच्छोऽभूत् पापिकया इच्छया वशगतोऽनेन प्रथमेनासद्धर्मेण समन्वागतो देवदत्त आपायिको नैरयिकः कल्पस्थोचिकित्स्यः । पुनरपरं भिक्षवः [पूर्वमेव] देवदत्तः पापमित्रोऽभूत् पापसहायः पापसंपर्कः । यद्देवदत्तः [पूर्वमेव] पापमित्रोऽभूत् पापसहायः पापसंपर्कोऽनेन द्वितीयेनासद्धर्मेण समन्वागतो देवदत्त आपायिको नैरयिकः कल्पस्थोऽचिकित्स्यः । पुनरपरं देवदत्तोऽल्पमात्रावरमात्रकेण विशेषाधिगमेनान्तरा विषादमापन्नः सत्युत्तरे करणीये । यद्देवदत्त अल्पमात्रावरमात्रकेण विशेषाधिगमेनान्तरा विषादमापन्नः सत्युत्तरे करणीये । अनेन तृतीयेनासद्धर्मेण समन्वागतो देवदत्त आपायिको नैरयिकः कल्पस्थोऽचिकित्स्यः ।

मा जातु कश्चिल्लोकेऽस्मिन् पापेच्छा उपपद्यताम् ।
तदनेनैव जानीध्वं पापेच्छानां हि या गतिः ॥१०॥
पंडितोऽपि समाख्यातो भावितात्मा हि संमतः ।
श्रिया देदीप्यमानो देवदत्त इति विश्रुतः ॥११॥
स वै प्रमादमनुयुज्यासाद्येह तथागतम् ।
व्याकृतस्तु स कल्पस्थः संबुद्धेन प्रजानता ॥१२॥
G.M. 232 कदर्यः पापसंकल्पो मिथ्यादृष्टिरनादरः ।
अवीचिनरकं प्राप्तश्चतुद्वारं हि यं विदुः ॥१३॥
अद्रुग्धस्य हि यो द्रुह्येत्कर्म पापमकुर्वतः ।
तमेव पापं स्पृशति लोकेऽस्मिंश्च परत्र च ॥१४॥
समुद्रं विषकुम्भेन यो दूषयितुमुत्सहेत् ।
न स तेन विदूष्येत [महासागरभैरवः ॥१५॥
तथा दुर्वचनैर्येन दूष्यते हि तथागतः] ।
सम्यग्दर्शी शान्तचित्तो [दूषयन्तं न रक्षति] ॥१६॥
तादृग्मित्रं प्रकुर्वीत तं वै सेवे [त] पंडितः ।
तादृशं सेवमानस्य श्रेयः स्यान्नतु पापकम् ॥१७॥

ततो देवदत्त आर्यापवादिकां मिथ्यादृष्टिं प्रतिलभ्य समुच्छिन्नकुशलमूलो नास्ति परलोक इति निश्चयं लब्ध्वा पंचभिः पदैः श्रावकाणां धर्मं देशयति । श्रमणो भवन्तो
G.M. 233 गौतमो दधिक्षीरं परिभुंक्ते । अस्माभिरद्याग्रेण न परिभोक्तव्यम् । यत् कारणम् । अतो निदानं वत्सकाः क्लाम्यन्ति । श्रमणो गौतमो मांसं परिभुंक्ते । अस्माभिर्न परिभोक्तव्यम् । यत्कारणम् । अतो निदानं प्राणिनो घात्यन्ते । श्रमणो गौतमो लवणं परिभुंक्ते । अस्माभिर्न परिभोक्तव्यम् । रेणुसंभूतमिति कृत्वा । श्रमणो गौतमश्छिन्नदशानि वस्त्राणि धारयति । अस्माभिर्दीर्घदशानि वस्त्राणि धारयितव्यानि । यत्कारणम् । अतो निदानं कुविन्दानां पुरुषकारो ध्वंस्यते । श्रमणो गौतमोऽरण्ये प्रतिवसति । अस्माभिर्ग्रामे वस्तव्यम् । यत्कारणम् । अतो निदानं मनुष्याणां देयधर्मा न परिभुज्यन्त इति ।

अन्तरोद्दानम् । क्षीरं मांसं लवणं वस्त्रमारण्यकेन च ।

यावद्भगवान् जनपदचारिकां चरन् श्रावस्तीमनुप्राप्तः । देवदत्तः संलक्षयति । बहुशो मया श्रमणस्य गौतमस्यापकृतम् । न च शक्तः श्रमणं गौतमं प्रघातयितुम् ।

गच्छामि दारापमर्दमस्य करोमीति । स कपिलवस्तुं गतः । तेन तत्र गत्वा दाराय सन्दिष्टम् । श्रमणो गौतमः प्रव्रजितः । अहं त्वदर्थमागतः । सा त्वं मया सार्धं परिचारयेति । तथा गोपिकया समाख्यातम् । सा कथयति । त्वमेनं संदिश । बोधिसत्त्वोऽस्माकं हस्तग्रहणं सहते यदि त्वमपि सहसे आगच्छ । स निर्लज्जतया अन्तःपुरं प्रविष्टः । तेन सोपानमभिरुहता गोपिका दृष्टा । तस्याः समुपहासमङ्गुलीकर्तु-मारब्धः । सा महानग्नबला । तया वामेन पाणिना तस्याङ्गुल्यो नीपीडिताः । G.M. 234 शोणितमागतम् । ततस्तयासौ क्रीडापुष्करिण्यां क्षिप्तः । तेन पतता नादो मुक्तः । श्रुत्वा शाक्याः प्रधाविताः । देवदत्तो बोधिसत्त्वस्यान्तःपुरं प्रविश्य दारापमर्दं करोतीति । तैरसौ क्रीडापुष्करिण्यां पतितो दृष्टः । ते संजल्पं कर्तुमारब्धाः । प्रघातयाम एतमिति । भूयः कथयन्ति । अस्य हतस्य हन्यते । व्याकृत एवायं भगवता इत्यपि देवदत्त आपायिको नैरयिकः कल्पस्थोऽचिकित्स्यः । तैः उत्सृष्टः । त्रसच्छिद्रेण निष्पला-यितः । तस्य वस्त्रं पाटितं द्विखण्डं जातम् । स संलक्षयति । शोभनम् । अनेन कल्पन्तां मे श्रावका निर्वसननिवासमिति ।

सोऽपरेण समयेन शाक्यान्संनिपात्य कथयति । मां राज्ये प्रतिष्ठापयतेति । ते कथयन्ति । बोधिसत्त्वस्यात्रान्तःपुरमवतिष्ठते । त्वं तावत्स्वीकुरु । ततः पश्चाद्राज्यं कारयिष्यसीति । एवमुक्तो देवदत्तः शाक्येभ्यो विगतशंको हर्म्यतलावरूढः । यशो-धरायाः सकाशमुपसंक्रम्याञ्जलिं कृत्वा कथयति । नियुज्येऽहं तव । प्रसादं कुरु ममाग्रमहिषी । कपिलवस्तुनि राज्यं [का]रयामीति । यशोधरा प्रस्कन्दबलिनी । तदा श्रीपर्यङ्कादुत्थायोभयोर्हस्तयोर्गृहीत्वा जानुभ्यां पातितः । तस्य हस्तयोः रुधिरं स्यन्दितुमारब्धम् । स दुःखवेदनाभ्याहतो यशोधरयाभिहितः । निरपत्रपस्त्वं मूर्खश्च । यस्त्वं मम हस्तग्रहणमपि न शक्तः सोढुं स मां प्रार्थयसे । न चक्रवर्ती वास्माकं G.M. 235 भर्ता स्याद् बोधिसत्त्वो वेति । ततस्तयावमानितोऽन्तःपुरान्निर्गतः । शाक्यैरुक्तो गच्छ भगवन्तं क्षमय । यदि ते भगवान् क्षमति पश्चाद्राज्यं कारयिष्यसीति । स वत्सनाभस्य परमतीक्ष्णस्य विषस्य नखान्पूरयित्वा येन भगवांस्तेनोपसंक्रान्तः । यदि मे श्रमणगौतमः क्षमिष्यतीति एवं कुशलम् । नोचेत्क्षमिष्यति तत्रैवास्य पादयोर्निपतितो नखविषपूर्णौ पादौ करिष्यामीति विदित्वा भगवतः पादयोर्निपत्य भगवन्तमिदमवोचत् । क्षमस्व भगवन्निति । भगवान् संलक्षयति । कीदृशेन चित्तेनायं मामुपसंक्रान्त इति । पश्यति बधकचित्तेन । ततो भगवता नखौ यावज्जानुमण्डलमुपादाय स्फटिकमयौ पादौ

निर्माय तूष्णीमवस्थितः । स भगवतः पादौ नखैर्वेद्धुमारब्धः । तस्य नखा भग्नाः । स प्रतिविभिन्नः कथयति । त्वां शरणं गच्छामि । यस्मादुक्तं त्वया 'ये बुद्धं शरणं गच्छन्ति न ते गच्छन्ति दुर्गतिमि'ति । यदि दुर्गतिं गमिष्यामि इदं ते मृषा इति । अभ्युदीर्णपरिपूर्णानि हि कर्माणि । शरीरस्य पतनं न लक्ष्यते । स जीवन्नेवावीचिकाभिर्ज्वलति । समन्ततो विक्रोष्टुमारब्धो दह्ये आनन्द [दह्ये] आनन्देति । अथायुष्मानानन्दः कारुणिको मैत्र्यात्मकः स्वजनवत्सलः । स कथयति । एहि देवदत्त तथागतमर्हन्तं G.M. 236 बुद्धं शरणं गच्छेति । तेन दुःखवेदनाभिभूतेन प्रत्यक्षकर्मदर्शिना आशयचित्तमुत्पादितं [च] वाग्भाषिता । एषोऽहमस्थितोऽपि बुद्धं भगवन्तं शरणं गच्छामीत्युक्त्वा स्वशरीरेणावीचौ महानरके पतितः ।

तत्र भगवान् भिक्षूनामन्त्रयते स्म । प्रतिसंधितानि भिक्षवो देवदत्तेन कुशलमूलानि । कल्पमवीचौ महानरके स्थित्वा प्रत्येकां बोधिं साक्षात्करिष्यति । अस्थिमान् नाम प्रत्येकबुद्धो भविष्यति । सोऽभिसंबुद्धमात्रः पिण्डपातमेकान्ते स्थापयित्वा हस्तौ निर्मर्दयन्समन्वाहरिष्यति । किमर्थमहं दीर्घकालं संसारे संसृत इति । समन्वाहरन् ज्ञास्यति । जन्मनि जन्मनि मया भगवतः पराक्रान्तं बोधिसत्त्वभूतस्यापि सर्वज्ञेयवशिताप्राप्तस्यापि तच्च लाभसत्कारहेतोरिति । स तमप्येकपिण्डपातमपरिभुज्योपरिविहायसमभ्युद्गम्य ज्वलन-तपन-वर्षण-विद्योतन-प्रातिहार्याणि कृत्वा निरुपधिशेषे निर्वाणधातौ परिनिर्वास्यतीति ।

आचरितं शारिपुत्रमौद्गल्यायनयोः कालेन कालं नरकचारिकां चरितुम् । अथायुष्मान् शारिपुत्र आयुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमिदमवोचत् । आयुष्मन् महामौद्गल्यायन भगवता देवदत्तः प्रत्येकबोधौ व्याकृतः । एह्यावामवीचिं महानरकं गत्वा देवदत्तमाश्वासयाव इति । G.M. 237 अथायुष्मन्तौ शारिपुत्रमहामौद्गल्यायनौ अवीचिमहानरकं गतौ । तत्रायुष्मान् शारिपुत्र आयुष्मन्तं महामौद्गल्यायनमामन्त्रयते । समन्वाहर आयुष्मन् महामौद्गल्यायन नारकान् सत्त्वानिति । आयुष्मन्महामौद्गल्यायनस्तद्रूपं समाधिं समापन्नो यथा समाहिते चित्ते मुसलमात्राभिर्धाराभिर्वर्षितुमारब्धः । तदुदकमावीचिकाभिर्ज्वालाभिरन्तरा पर्यादीयते । ईषामात्राभिरक्षमात्राभिर्धाराभिर्वर्षितुमारब्धः । तदप्युदकमन्तरा पर्यादीयते । तत आयुष्मान् शारिपुत्र आधिमोक्षिकं समाधिं समापन्नः । सर्वं तत् नरकमुदके [न] प्लावितम् । आयुष्मता महामौद्गल्यायनेनोक्तम् । यो देवदत्तः स आगच्छत्विति । अनेकानि देवदत्तसहस्राण्यागतानि । आयुष्मान्महामौद्गल्यायनः कथयति । यो

भगवतो भ्राता देवदत्तः स आगच्छत्विति। अथ देवदत्तो येनायुष्मन्तौ शारिपुत्रमहामौद्गल्यायनौ तेनोपसंक्रान्तः। उपसंक्रम्यायुष्मतोः शारिपुत्रमौद्गल्यायनयोः पादयोर्निपतितः। ताभ्यामुक्तः। अस्ति ते कच्चित् कारणानां विशेष इति। स कथयति। या तावदावीचिके [षु] सत्त्वे [षु] साधारणता स्थिता [सा] एवास्तु मम। ये विशेषा वर्तन्ते तान् शृणु।

अयस्मयाः पर्वता आगच्छन्ति। आदीप्ताः प्रदीप्ताः प्रज्वलिता एकज्वालीभूताः। G.M. 238
ते मां तिलवत्पेषयन्ति। उभयतः अयोदन्तकैः क्रकचैरङ्गप्रत्यंगानि पाट्यन्ते। अयस्मयैर्मुद्गरैरादीप्तैः प्रदीप्तैः संप्रज्वलितैरेकज्वालीभूतैस्तैर्मुहुर्मुहुः [शिर] श्चूर्ण्यते। चतुर्दिशं हस्तिन आगच्छन्ति। ते मां पिष्टवत्पेषयन्ति इति।

आयुष्मन्तौ शारिपुत्र-मौद्गल्यायनौ कथयतः। यस्त्वं देवदत्त कथयसि। अयस्मयाः पर्वता आगच्छन्ति। आदीप्ताः प्रदीप्ताः संप्रज्वलिता एकज्वालीभूतास्ते मां तिलवत्पेषयन्तीति। तथा हि त्वया भगवतो बधाय गृध्रकूटपर्वताच्छिलाः क्षिप्तास्तस्यैतत्कर्मणः फलम्।

यत्कथयसि। उभयतः [अयो] दन्तकैः क्रकचैरादीप्तैः प्रदीप्तैः संप्रज्वलितैरेकज्वालीभूतैरङ्गप्रत्यङ्गानि पाट्यन्ते इति। तथाहि त्वया भगवतः श्रावकसंघो भिन्नः। तस्यैतत्कर्मणः फलम्।

यत्कथयसि। अयस्मयैर्मुद्गरैरादीप्तैः प्रदीप्तैरेकज्वालीभूतैर्मुहुर्मुहुः शिरश्चूर्ण्यते इति। तथाहि त्वया उत्पलवर्णा भिक्षुणी अर्हन्ती खटप्रहारेण प्रघातिता। तस्यैतत्कर्मणः फलम्।

यत्कथयसि। चतुर्दिशं हस्तिन आगच्छन्तीति। ते मां पिष्टवत्पेषयन्ति इति। तथा हि त्वया भगवतो बधाय वनपालको हस्तिनाग उत्सृष्टः। तस्यैतत्कर्मणः फलम्।

अपि तु व्याकृतस्त्वं भगवता। किमिति भदन्त शारिपुत्र। प्रतिसंहृतानि
भिक्षवो देवदत्तेन कुशलमूलानि। कल्पमवीचौ महानरके स्थित्वाऽस्थिमान्प्रत्येकबुद्धो G.M. 239
भविष्यतीति। स कथयति। भदन्त शारिपुत्र यद्येवमुत्सहे अहमेकपार्श्वेनावीचौ महानरके स्थातुमिति।

अथायुष्मन्तौ शारिपुत्र-महामौद्गल्यायनौ येन कोकालिकप्रभृतयस्तेनोपसंक्रान्तौ। यावत्कोकालिकस्य हि जिह्वा हलशतेन धार्यते। ब्रह्मणा सहांपतिना कोकालिक

उच्यते । कोकालिकाभिप्रसादय शारिपुत्रमौद्गल्यायनयोर्भिक्षवोरन्तिके चित्तं पेशलयोः सब्रह्मचारिवत्सलयोरिति । एवमुक्ते कोकालिक आयुष्मन्तौ शारिपुत्र-मौद्गल्यायनौ दृष्ट्वा कथयति । इहाप्येतौ पापेच्छावागताविति । वाक्प्रत्याहरणकालसमनन्तरमेव कोकालिकस्य हलसहस्रेण जिह्वा पाटयितुमारब्धा । अथायुष्मन्तौ शारिपुत्र-मौद्गल्यायनावक[र]णीया ह्येते इति विदित्वा प्रक्रान्तौ येन पूरणः काश्यपस्तेनोपसंक्रान्तौ ।

अथ पूरणः काश्यप आयुष्मतोः शारिपुत्र-मौद्गल्यायनयोः पादयोर्निपत्य कथयति । आर्य शारिपुत्र मया मिथ्याधर्मदेशनया महाजनकायो विप्रलब्धः । तस्य मे कर्मणो विपाकेन जिह्वायां पंच हलशतानि वहन्ति । यथा यथा च श्रावकास्तूपफारान् कुर्वन्ति तथा तथा तीव्रवेदनां वेदयामि । तदर्हसि मदीयामवस्थां तेषां निवेद्य निवारयितुम् । मा तस्य स्तूपकारं करिष्यथेति । प्रतिज्ञया आयुष्मन्तो शारिपुत्र-
G.M. 240 मौद्गल्यायनौ नरकचारिकां चरित्वा ऋद्ध्या जम्बूद्वीपमनुप्राप्ता । ताभ्यां भगवतो भिक्षूणां जनकायस्य देवदत्त-कोकालिक-पूरण-प्रभृतीनां नरकोपपन्नानामवस्था विस्तरेण समाख्याता ।

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः । पश्य भदन्त देवदत्तो भगवतो वचनमवचनीकृत्यावीचौ महानरके पतित इति । भगवानाह । न भिक्षव एतर्हि यथा अतीतेऽप्यध्वनि एव मम वचनमवचनीकृत्य अनयेन व्यसनमापन्नः । श्रूयताम् ।

भूतपूर्वं भिक्षवो नियतराश्यवस्थितो बोधिसत्त्वो गोषूपपन्नो वृषो बभूव । स रात्रौ नगरान्निर्गत्य राजकीये माषक्षेत्रे चरति । दिवा नगरे तिष्ठति । यावत्तस्य [सकाशं] गर्दभः उपसंक्रम्य कथयति । मातुल त्व[या सार्धं चरामीति] उपचितत्वङ्मांसशोणितः । न चाहं त्वां पश्यामि कदाचिच्चरन्तमिति । स कथयति । भागिनेयाहं रात्रौ राजकीये माषक्षेत्रे चरामीति । स कथयति । अहमपि मातुल त्वया सार्धं चरामीति । स कथयति । भागिनेय त्वं वाचाटो मानर्थं करिष्यसीति । स कथयति । मातुल गच्छामि न करिष्यामीति । तौ वाटं भंक्त्वा राजकीये माषक्षेत्रे निपतितौ । गदर्भस्तावत्तूष्णीमवस्थितो यावदशितं जातम् । ततः कथयति । मातुल गायामि तावत् । वृषः कथयति । तिष्ठ तावन्मुहूर्तं यावदहं निर्गच्छामीति । पश्चाद्यथेष्टं करिष्यसि । इत्युक्त्वा निष्पलायितः । गर्दभो गायितुमारब्धः । राजपुरुषैः
G.M. 241 श्रुत्वा गृहीतः । भवन्तः अनेन गर्दभेन सर्वमिदं राजकीयं माषक्षेत्रं भक्षितम् ।

निग्रहमस्य कुर्म इति। तैः कर्णौ च्छित्त्वा उलूखलं च ग्रीवायां बद्ध्वा मुक्तः। इतश्चामुतश्च परिभ्रमन् वृषेण दृष्टः। स तं गाथया प्रत्यभाषत।

साधु गीतं सुष्ठु गीतं प्राप्तं गीतस्य तत्फलम्।
यतोऽस्मि तव गीतेन जातः कर्णविहीनकः ॥१८॥
एवं हि तस्य भवति यो वाचं च न रक्षति।
अमेदानीं फर्णहीनः उलूखलविभूषितः ॥ इति। १९ ॥

सोऽपि गाथया प्रत्यभाषत।

तूष्णीं भव खण्डदन्त तूष्णीं भव जरद्गव।
त्वामप्यत्र गवेषन्तो दण्डहस्तास्त्रयो जनाः ॥ इति। २० ॥

भगवानाह। किं मन्यध्वे भिक्षवः योऽसौ वृषः अहमेव स तेन कालेन तेन समयेन। योऽसौ गर्दभ एष एव स देवदत्तस्तेन कालेन तेन समयेन। तदाप्येष मम वचनमवचनीकृत्यानयेन व्यसनमापन्नः। एतर्ह्यप्येष मम वचनमवचनीकृत्यानयेन व्यसनमापन्नः। पुनरपि यथैव मम वचनमवचनीकृत्यानयेन व्यसनमापन्नस्तच्छ्रूयताम्।

भूतपूर्वं भिक्षवोऽन्यतमस्मिन्कर्वटके गृहपतिः प्रतिवसति। तस्य बलीवर्दो लक्षणसंपन्नः। तेनासौ श्रमणब्राह्मणान्सुजनानानाथकृपणवनीपकान्भोजयित्वा यथेष्टप्रचारी उत्सृष्टः।

सोऽपरेण समयेन इतश्चामुतश्च परिभ्रमन् पंके मग्नोऽवस्थितः। तेन सूर्यास्तंगमनकालसमये श्रुतम्। समन्वेषमाणस्तस्य सकाशं गतः। स संलक्षयति। G.M. 242
न शक्नोमि अहमधुना समुद्धर्तुम्। श्वः प्रभाते समुद्धरिष्यामीति। वृषः कथयति। मम पुरस्तात्पाशं स्थापयित्वा गच्छ। यदि श्रृंगाल आगमिष्यति तस्याहं श्रृङ्गे [ण] पाशं क्षेप्स्यामीति। स तस्य पुरस्तात्पाशं क्षिप्त्वा प्रक्रान्तः। यावद्रात्रौ श्रृगाल आगतः। स कथयति। कोऽयं विसान्युत्खनति पुण्डरीकानि चेति। वृषः कथयति। अहं निमग्नस्तिष्ठामीति। श्रृगालः संलक्षयति। भक्ष्यो मे प्रत्युपस्थित इति। स तमभिद्रवितुमारब्धः। वृषः कथयति। गच्छ त्वमस्मात् प्रदेशान्मा अनयेन व्यसनमापत्स्यस इति। तथाप्यसौ निवार्यमाणोऽभिद्रवत्येव। स वृषो गाथां भाषते।

नाहं विसान्युत्खनामि पुण्डरीकानि नाप्यहम्।
सचेद्भक्षितुकामोऽसि पृष्ठतो गच्छ भक्षय ॥ २१ ॥ इति।

श्रृगालो भक्षयामीति पृष्ठतो गतः। वृषेण श्रृङ्गे [ण] पाशः क्षिप्तः। श्रृगालो ग्रीवायां बद्धः। आकाशे प्रलम्बते। वृषो गाथां भाषते।

किं नटो नर्तको वा त्वमूरुशोभितदारकः।
ग्रामे विदर्श्यतां शिल्पमरण्ये नास्ति दायकः॥ २२ ॥ इति।

श्रृगालोऽपि गाथां भाषते।

नाहं नटो नर्तको वा नापि शोभित दारकः।
दत्ता शक्रेण मे श्रेणी ब्रह्मलोकं व्रजाम्यहम्॥ २३ ॥

G.M. 243 भूयो वृषो गाथां भाषते।

न शक्रो ददाति निःश्रेणीं ब्रह्मलोकः कुतस्तव।
बद्धोऽसि कूटपाशेन न ते पश्यामि जीवितम्॥ २४ ॥ इति।

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ वृषः अहमेव स तेन कालेन तेन समयेन। योऽसौ श्रृगाल एष एव देवदत्तस्तेन कालेन तेन समयेन। तदाप्येष मम वचनमवचनीकृत्यानयेन व्यसनमापन्नः। एतर्ह्यप्येष मम वचनमवचनीकृत्यानयेन व्यसनमापन्नः।

भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छुः। भदन्त देवदत्तो भगवतो वचनमश्रृण्वन्नवीचिपरायणः संवृत्त. इति। भगवानाह। न भिक्षव एतर्हि यथा अतीतेऽप्यध्वनि एष मम विक्रोशतो वचनमश्रृण्वन्नवीचिपरायणः संवृत्तः। तच्छ्रूयताम्।

भूतपूर्वं भिक्षवोऽन्यतमस्यां राजधान्यां [राजा राज्यं] कारयति ऋद्धं च यावदाकीर्णबहुजनमनुष्यं च। पुण्यानुभावाद्देवता अन्तरीक्षे आसनं धारयन्ति। तस्य राज्ञः पुरोहितस्य द्वौ पुत्रौ ज्येष्ठो कनीयांश्च। तत्र ज्येष्ठो नैष्क्रम्याभिनन्दी। कनीयान् पौरहित्याभिनन्दी। ज्येष्ठः पश्यति पितरं धर्माधर्मेण पौरोहित्यं कारयन्तम्। स संलक्षयति। अहं पितुरत्ययात्पुरोहितो भविष्यामि। धर्माधर्मेण पौरोहित्यं कृत्वा नरकपरायणो भविष्यामि यत्त्वहमपि प्रव्रजेयमिति। स पितरमनुज्ञाप्य भगवच्छासने प्रव्रजितः। यावदपरेण समयेन पुरोहितः कालगतः। स कनीयान् पौरोहित्ये प्रतिष्ठापितः। सः अधर्मेण पौरोहित्यं कर्तुमारब्धः। जनकायः पीड्यते। यावदन्यतमः

G.M. 244 पुरुष इतश्चामुतश्च परिभ्रमंस्तस्य ज्येष्ठस्य प्रव्रजितस्य सकाशमुपसंक्रान्तः। स तेन दृष्टः। कुतस्त्वमागच्छसीति। तेन समाख्यातम्। अमुष्या राजधान्याः। स वार्तां प्रष्टुमारब्धः। स कथयति। राज्ञः पुरोहितः कालगतः। तस्य कनीयान्

पुत्रः पौरोहित्ये प्रतिष्ठितः । सोऽधर्मेण पौरोहित्यं करोति । जनकायः पीड्यते इति । स कथयति । किंचित्कालं प्रेरय । अहमेव तत्र गत्वा ।अहितान्निवारयिष्यामि हिते च संनियोजयिष्यामि । [येन] जनपदान्निपीड [य] तीति [समाख्यातं] तेन पुरुषेण गत्वा ज्ञातीनाम् एतत्प्रकरणं निवेदितम् । श्रुतिपरंपरया तेन कनीयसा श्रुतम् । तेन राज्ञे निवेदितम् । देव मम स ज्येष्ठो भ्राता आगमिष्यतीति । राजा कथयति शोभनम् । स एव पुरोहितो भविष्यतीति । स कथयति । देव त्वं नाम मया इयन्तं कालं वृथा सेवित इति । राजा कथयति । एष लोकधर्मो ज्येष्ठः स । अपित्वेकेन प्रकारेण तव पौरोहित्यं भवत्विति । यदि त्वं तस्मिन्नागते कथयसि । अहं ज्येष्ठ इति । स कथयति । एवं भवतु । वक्ष्यामीति । यावदसावागतः । तं दृष्ट्वा सराजका पर्षदुत्थिता । स तु नोत्थितः । तेनोक्तः । त्वं मम कनीयान् कस्मान्नोत्तिष्ठसीति । स कथयति । त्वमेव कनीयानहं ज्येष्ठः । यदि भवतु स प्रत्ययो वयं राजकुले वृद्धांश्च देवं पृच्छामः । ज्येष्ठेन राजा पृष्टः । कथय भो राजन् आवयोर्ज्येष्ठ इति । राज्ञा संप्रजानता मृषा वाग्भाषिता । एष ज्येष्ठस्त्वं कनीयानिति । वाक्प्रव्याहरणकालसमन्तरमेव तस्य देवताभिरासनं मुक्तम् । स G.M. 245
पृथिव्यां पतितो मुखाच्चास्य पूतिगन्धः प्रवाति । ज्येष्ठः पुरोहितपुत्रो गाथां भाषते ।

मृषा हि भाषमाणस्य प्रक्रामन्ते हि देवताः ।
मुखं च पूतिकं भवति स्वर्गाच्च परिहीयते ॥ २५ ॥
सत्यं कथय भो राजन्-भविष्यसि यथा पुरा ।
मृषा वदसि चेद्व्यक्तमधो यास्यसि चैतिकः ॥ २६ ॥
अजिह्वकोऽसौ भवति मत्स्यो वारिचरो यथा ।
परिपृष्टो हि यो धर्ममधर्ममुपदेशयेत् ॥ २७ ॥
सत्यं कथय भो राजन्भविष्यसि यथा पुरा ।
मृषा वदसि चेद्व्यक्त मधो यास्यसि चैतिकः ॥ २८ ॥
अपुमान् जायते तत्र पुमांस्तत्र न जायते ।
परिपृष्टो हि यो धर्ममधर्ममुपदेशयेत् ॥ २९ ॥
सत्यं कथय भो राजन्भविष्यसि यथा पुरा ।
मृषा वदसि चेद्व्यक्तमधो यास्यसि चैतिकः ॥ ३० ॥
वर्षत्यकाले देवश्च काले तत्र न वर्षति ।
परिपृष्टो हि यो धर्ममधर्ममुपदेशयेत् ॥ ३१ ॥

सत्यं कथय भो राजन्भविष्यसि यथा पुरा ।
मृषा वदसि चेद्व्यक्तमधो यास्यसि चैतिक: ॥ ३२ ॥
द्वे जिह्वे भवतस्तस्योरगस्येव हि जन्तुन: ।
परिपृष्टो हि यो धर्ममधर्ममुपदेशयेत् ॥ ३३ ॥
G.M. 246 सत्यं कथय भो राजन्भविष्यसि यथा पुरा ।
मृषा वदसि चेद्व्यक्तमधो यास्यसि चैतिक: ॥ ३४ ॥
इत्येवं चैतिको राजा कर्म कृत्वा सुदारुणम् ।
अवीचिं नरकं प्राप्तो निरयं पापकर्मणा ॥ ३५ ॥

किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ ज्येष्ठ: पुरोहितपुत्र: अहमेव स तेन कालेन तेन समयेन । योऽसौ चैतिको राजा एष एव स देवदत्तस्तेन कालेन तेन समयेन । तदाप्येष मम विक्रोशतो वचनमशृण्वन्नवीचिं नरकं प्राप्त एतर्ह्यप्येष मम विक्रोशतो वचनमशृण्वन्नवीचिं नरकं प्राप्त इति ।

भिक्षव: संशयजाता: सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पप्रच्छु: । पश्य भदन्त देवदत्तो हितमुच्यमानो वचनमशृण्वन्नवीचिपरायण: संवृत्त इति । भगवानाह । न भिक्षव एतर्हि । तथा अतीतेऽप्यध्वन्येष मया हितमुच्यमानो वचनमशृण्वन्नयेन व्यसनमापन्नस्तच्छ्रूयताम् ।

भूतपूर्वं भिक्षवोऽन्यतमस्मिन्कर्वटके यन्त्रकलाचार्य: प्रतिवसति । तेन सदृशात्कुलात्कलत्रमानीतम् । स तया सार्धं क्रीडति रमते परिचारयति । तस्य क्रीडतो रममाणस्य परिचारयत: कालान्तरेण पत्नी आपन्नसत्त्वा संवृत्ता । साष्टानां वा नवानां वा मासानामत्ययात्प्रसूता । दारको जात: । तस्य त्रीणि सप्तकान्येकविंशतिदिवसानि विस्तरेण स तस्य जातिमहं कृत्वा कुलसदृशं नामधेयं व्यवस्थापितम् । स उन्नीतो वर्धितो महान्संवृत्त: । पिता चास्य कालगत: । सोऽन्यतमस्मिन् कर्वटकेऽन्यस्य
G.M. 247 यन्त्रकालाचार्यस्यान्तिका [द्य] न्त्रकलां शिक्षितुमारब्ध: । तेनान्यतमस्मिन्कर्वटके गृहपते: सकाशाद्दारिका प्रार्थिता । स कथयति । यदि अमुष्मिन् दिवसे आगच्छसि दास्यामि । अन्यथा नेति । तेन यंत्रकलाचार्यस्य निवेदितम् । उपाध्यायामुष्मिन् कर्वटके गृहपति: । तस्य सकाशान्मया दारिका प्रार्थिता । स कथयति । यद्यमुष्मिन्दिवस आगच्छसि दास्यामि । अन्यथा नेति । यन्त्रकलाचार्य: कथयति । पुत्र यद्येवं गच्छाव: । अहमेव प्रतीच्छामीति । स तेन सार्धं काष्ठमयं मयूरमभिरुह्य

यस्मिन्नेव दिवसे अवधिः कृतस्तस्मिन्नेव दिवसे कर्वटकमनुप्राप्तः। दृष्ट्वा परं विस्मयमापन्नः। ततो दारिकां प्रतिगृह्य पुनस्तद्यन्त्रमारुह्य स्वगृहमागतः। यन्त्रं संगृह्य मातुः समर्पितम् उक्तं च। अयं तव पुत्रो यन्त्रस्य प्रवर्तनयोगं जानीते नो तु निवर्तनम्। न त्वयास्य यन्त्रं देयमिति। भूयो भूयो मातुः कथयति। अम्ब प्रयच्छ मे यन्त्रं महाजनकायमन्वावर्तयामीति। सा कथयति। पुत्र आचार्यस्ते कथयति। अयं प्रवर्तनप्रयोगं जानीते नो तु निवर्तनम्। मा दास्यसि मानयेन व्यसनमापत्स्यसे इति। तस्मादहं न ददामीति। स कथयति। अम्ब प्रवर्तनमप्यहं जानामि निवर्तनमपि। किं न्वसावाचार्यो मात्सर्येण न ददातीति। लघुचित्तो मातृग्रामः। तया लोभितया दत्तम्। स यन्त्रमाम्रेड्याभिरुह्य संप्रस्थितो महाजनकायोऽभिप्रसन्नः। ततो यन्त्रकलाचार्येण दृष्टः। स कथयति। गतोऽयमपुनरनागमनायेति। स यथा यथा संभ्रमणादाम्रेडयति तथा तथा दूरतरं गच्छति यावन्महासमुद्रं गतः। महासमुद्रे G.M. 248
सदा वर्षदेवः। बन्धनानि छिन्नानि। अनयेन व्यसनमापन्नः। देवता गाथां भाषते।

योो ह्यर्थकामस्य हितानुकम्पितो
वचो न गृह्णाति यथानुशिष्टम्
स उह्यते दारुमयेण पक्षिणा
अनायको न शृणोतीह कस्यचित् ॥ ३६ ॥

इति।

भगवानाह किं मन्यध्वे भिक्षवो योऽसौ यन्त्रकलाचार्यः अहमेव स तेन कालेन तेन समयेन। योऽसौ तस्यान्तेवासी एष एव स देवदत्तस्तेन कालेन तेन समयेन। तदाप्येष वचनमशृण्वन् अनयेन व्यसनमापन्नः। एतर्ह्यप्येष मया हितमुच्यमानो मम वचनमशृण्वन्नयेन व्यसनमापन्नः।

आयुष्मानुदाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति। उच्यते भदन्त संघसामग्री इति। तत्र कतरो भेदः कतरा संघसामग्री। इतश्चोदालिन् भिक्षवः अधर्मे धर्मसंज्ञिनो व्यग्रे अव्यग्रसंज्ञिनः कर्माणि कुर्वन्ति। अयमुच्यते संघभेदः। यतस्तु धर्मे धर्मसंज्ञिनः समग्रे समग्रसंज्ञिनः कर्माणि कुर्वन्ति। इयमुच्यते संघसामग्री इति।

यत्रैको भिक्षुर्न [त] त्र संघो भिद्यते। यत्र द्वौ यत्र त्रयो यावदष्टौ न तत्र संघो भिद्यते। यत्र नव भिक्षव उत्तरे वा तत्र द्वाभ्यां कारणाभ्यां संघो भिद्यते। ज्ञप्तिकर्मणा शलाकाग्रहणेन च।

G. M. 249 कथं ज्ञप्तिकर्मणा । यथापि तद्देवदत्तो भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति । पंचभिरायुष्मन्तो व्रतपदैर्भिक्षुः शुध्यति विमुच्यते निर्याति । सुखदुःखं व्यतिक्रामति । सुखदुःखव्यतिक्रमं चानुप्राप्नोति । कतमैः पंचभिः । आरण्यकत्वेन आयुष्मन्तो भिक्षुः शुध्यति मुच्यते निर्याति । सुखदुःखं व्यतिक्रामति । सुखदुःख [व्यतिक्रमं] चानुप्राप्नोति । वृक्षमूलिकत्वेन त्रैचीवरिकत्वेन पांसुकूलिकत्वेनायुष्मन्तो भिक्षुः शुध्यति विमुच्यते निर्याति । सुखदुःखं व्यतिक्रामति । सुखदुःखव्यतिक्रमं चानुप्राप्नोति । येषां युष्माकमायुष्मन्तः क्षमन्ते एभिः पंचभिः व्रतपदैः शोद्धुं मोक्तुं निर्यातुं ते श्रमणस्य गौतमस्याराद्धवन्तु । हिरुग् भवन्तु । दूरेण परेण भवन्तु । इत्येषा ज्ञप्तिः । इत्येवं ज्ञप्तिकर्मणा ।

कथं शलाकाग्रहणेन । यथापि [तद्] देवदत्तो भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति । पंचभिरायुष्मन्तो व्रतपदैर्भिक्षुः शुध्यति मुच्यते निर्याति । सुखदुःखं व्यतिक्रामति । सुखदुःखव्यतिक्रमं चानुप्राप्नोति । कतमैः पंचभिः । आरण्यकत्वेनायुष्मन्तो भिक्षुः शुध्यति मुच्यते निर्याति । सु [खदुः] खं व्यतिक्रामति । सुखदुःखव्यतिक्रमं चानुप्राप्नोति । वृक्षमूलिकत्वेन त्रैचीवरिकत्वेन पांसुकूलिकत्वेनायुष्मन्तो भिक्षुः शुध्यति विमुच्यते निर्याति । सुखदुःखं व्यतिक्रामति । सुखदुःखव्यतिक्रमं
G.M. 250 चानुप्राप्नोति । येषां युष्माकमायुष्मन्तः क्षमन्ते एभिः पंचभिर्व्रतपदैः शोद्धुं मोक्तुं यिर्यातुं श्रमणस्य गौतमस्याराद्धवन्तु । हिरुग्भवन्तु । दूरेण परेण भवन्तु । शलाकां गृह्णन्त्विति । देवदत्तश्चात्मपंचमः शलाकां गृह्णाति । एवं शलाकाग्रहणेन ।

आयुष्मानुदाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति । उत्क्षिप्तकेन तावद्भदन्त संघो भिद्यते । [न] उत्क्षिप्तकानुवर्तकेन [न] उत्क्षिप्तकानुवर्तकानुवर्तकेन । नोत्क्षेपकेण नोत्क्षेपकानुवर्तकेन नोत्क्षेपकानुवर्तकानुवर्तकेन ।

उत्क्षिप्तकानुवर्तकेन तावद्भदन्त संघो भिद्यते । न उत्क्षिप्तकेन न उत्क्षिप्तकानुवर्तकानुवर्तकेण । न उत्क्षेपकेण [न उत्क्षेपकानुवर्तकेन] न उत्क्षिप्तकानुवर्तकानुवर्तकेन ।

उत्क्षिप्तकानुवर्तकानुवर्तकेन तावद्भदन्त संघो भिद्यते । न उत्क्षिप्तकेन न उत्क्षिप्तानुवर्तकेन । न उत्क्षेपकेण न [उत्क्षेपकानुवर्तकेन] न उत्क्षेपकानुवर्तकानुवर्तकेन ।

उत्क्षेपकेण तावद्भदन्त संघो भिद्येत । न उत्क्षिप्तकेन न उत्क्षिप्तकानुवर्तकेन [न] उत्क्षिप्तकानुवर्तकानुवर्तकेन । [न उत्क्षेपकानुवर्तकेन न उत्क्षेपकानुवर्तकानुवर्तकेन ।

उत्क्षेपकानुवर्तकेन तावद्भदन्त संघो भिद्यते। नोत्क्षिप्तकेन न उत्क्षिप्तकानुवर्तकेन न उत्क्षिप्तकानुवर्तकानुवर्तकेन। न उत्क्षेपकेण न उत्क्षेपकानुवर्तकानुवर्तकेन।

उत्क्षेपकानुवर्तकानुवर्तकेन तावद्भदन्त संघो भिद्यते। न उत्क्षिप्तकेन न G.M. 251
उत्क्षिप्तकानुवर्तकेन न उत्क्षिप्तकानुवर्तकानुवर्तकेन। न उत्क्षेपकेण न उत्क्षेपकानुवर्तकेन।

सर्वैरेभिरुदालिन् संघो भिद्येत स्थापयित्वा पृ[थ]ग् उत्क्षिप्तकम्।

अन्तरोद्दानम्।

संघभेदैश्च सामग्री एकः संघं [न भिद्यते]।
नवानामन्तिमो भेदे तिस्र उत्क्षेपषष्ठिकाः॥ ३७॥

आयुष्मानुदाली बुद्धं भगवन्तं पृच्छति। यदुक्तं भदन्त भगवता समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते। स्पृश्यते चानन्तर्यावद्येन कर्मणा। कियता भदन्त भिक्षुः समग्रश्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते स्पृश्यते चानन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुरधर्मे अधर्मसंज्ञी भेदे [अधर्मसंज्ञी] भिक्षूणां ज्ञापयति [संज्ञापयति] शिक्षयति ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रामति। इयता उदालिन्भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते स्पृश्यते चानन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुः अधर्मे [अ]धर्मसंज्ञी भेदे धर्मसंज्ञी भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघ[स्य] भेदाय पराक्रामति। इयता उदालि- G.M. 252
न्भिक्षुः समग्रं [श्रावक] संघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते। न तु स्पृशति आनन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुरधर्मे [अ] धर्मसंज्ञी भेदे वैमतिको भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रामति। इयता उदा[लिन्भि]क्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते स्पृश्यते आनन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुरधर्मे धर्मसंज्ञी भेदे अधर्मसंज्ञी भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रामति। इयता उदा[लिन्] भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते स्पृश्यते चानन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुरधर्मे धर्मसंज्ञी भेदे धर्मसंज्ञी भिक्षूणां ज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति वाचयति संघस्य भेदाय पराक्रामति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते न तु स्पृश्यते आनन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुरधर्मे धर्मसंज्ञी भेदे वैमतिको भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रमति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते न तु स्पृश्यते आनन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यनश्चोदालिन् भिक्षुर्धर्मे अधर्मसंज्ञी भेदे अधर्मसंज्ञी भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्र श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते स्पृश्यते चानन्तर्यावद्येन कर्मणा।

G.M. 253 यतश्चोदालिन् भिक्षुर्धर्मे अधर्मसंज्ञी भेदे धर्मसंज्ञी भिक्षूणां ज्ञापयति [संज्ञापयति] शिक्षयति ग्राहयति। इयता उदालिन् भिक्षुः [सम] ग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचकमवद्यं प्रसूते न तु स्पृश्यते आनन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुर्धर्मे [अ] धर्मसंज्ञी भेदे वैमतिको भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रामति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते न तु स्पृश्यते आनन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुर्धर्मे धर्मसंज्ञी भेदे अधर्मसंज्ञी भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रामति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते स्पृश्यते चानन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुर्धर्मे धर्मसंज्ञी भेदे धर्मसंज्ञी भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति। संघस्य [भेदाय प] राक्रामति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते न तु स्पृश्यने आनन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुर्धर्मे धर्मसंज्ञी भेदे वैमतिको भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति [शिक्षयति] ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रामति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते स्पृश्यते चानन्तर्यावद्येन कर्मणा।

G.M. 254 यतश्चोदालिन् भिक्षुरधर्मे वैमतिको भेदे अधर्मसंज्ञी भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रामति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते स्पृश्यते चानन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुरधर्मे वैमतिको भेदे अधर्मसंज्ञी भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रामति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते [न तु] स्पृश्यते आनन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चो [दालिन् भिक्षु]रधर्मे वैमतिको भेदे वैमतिको भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघस्य [भेदाय] पराक्रामति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते न तु स्पृश्यते आनन्तर्याव [द्येन कर्मणा]।

यतश्चोदालिन् भिक्षुर्धर्मे वैमतिको भेदे [अ] धर्मसंज्ञी भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रामति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते स्पृश्यते चानन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुर्धर्मे वैमतिको भेदे धर्मसंज्ञी भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति शिक्षयति [ग्राहयति संघस्य भेदाय] पराक्रामति। इयता उदालिन् भिक्षुः समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते न तु स्पृश्यते आनन्तर्यावद्येन कर्मणा।

यतश्चोदालिन् भिक्षुर्धर्मे वैमतिको भेदे वैमतिको भिक्षूणां ज्ञापयति संज्ञापयति G.M. 255 शिक्षयति ग्राहयति संघस्य भेदाय पराक्रामति। इयता [उदालिन् भिक्षुः] समग्रं श्रावकसंघं भित्त्वा आवीचिकमवद्यं प्रसूते न तु स्पृश्यते आनन्तर्यावद्येन कर्मणा।

एवमेतावन्ति [अष्टादश।] आसां षट् [न] स्पृश्यन्ते आनन्तर्यावद्येन कर्मणा। यासु भेदे अधर्मसंज्ञी अवशिष्टाः [स्पृश्यन्ते] आनन्तर्यावद्येन कर्मणेति।

विनये संघभेदवस्तु समाप्तम्॥

Page

वस्तूद्दानम्[1]

पाण्डुलोहितिकानां वस्तु पुद्गलानां तथैव च ।
अथ पारिवासिकानां पोषधस्थापनान च ।
शयनासनमधिकरणं संघभेदश्च पश्चिमम् ॥

dmar-ser-can-gyi-gshi-daṅ-ni.
de-bshin-gaṅ-zag-dag-daṅ-ni.
de-nas-spo-ba-bya-ba-daṅ.
gso-sbyoṅ-gshag-par-bya-ba-daṅ.
gnas-mal-daṅ-ni-rtsod-pa-daṅ.
dge-ḥdun-ḥbyed-pa-phyi-ma-yin.

1 Tib. 229b,1.5: phyir-bcos-paḥi-gshiḥi-sdom-ni.

REFERENCE TO THE PARALLEL PASSEGES

MSV. VOL. II

page	Line	word
1	2	प्रतिसंहरे[1]
1	3	अदर्शनाय[2]
1	4	पापिका[3]
2	15	पातयन्ति[4]
2	16	अन्तःसीमायां[5]
2	27	तीर्थिक[6]
2	28	अनध्याचारमाचरते[7]
3	2	चेतयति[8]
3	4	पातयति[9]

---

1 Tib. 229b, 1.7: bskrad·daṅ·chu·sod·phyir·bgyid·daṅ.

2 Tib. 230a, 1.1: ḥdun-payi-ni-ma mthaḥ-daṅ.

3 I bid. ḥchi-ltas·sdig-paḥi-lta·ba·can. GM,5

4 See below fn. 9

5 Ms. अन्तःसीमे GM,7

6 Ms. तीर्थ्यक०

7 Tib.232b,1.5: spyad·par·bya-ba-ma-yin·pa-spyod·pa-daṅ.

8 Tib. 232b, 1.7: gans-med·par·brtson·par·byed·pa·ste.

9 CV—लोभं पातेन्ति, नेत्थारं वत्तन्ति,CVपृ०10,पं.9;पृ०11-12(NNM) Tib.233a, 1.2: skra-gyen-du-sgra-ba-lta-bu daṅ. skra-shig pa-lta-bu-daṅ. dge-ḥdun-spu-sa-la-ltuṅ-ba-lta-bur-byed pa·daṅ.GM,8

Page	Line	Word
3	13	[पदाय[1]]
3	21	तर्जनीयकर्मकृता[2]
3	25	०कृताननुकंपयानुकम्पा[3]मुपादाय
4	10	अन्तःसीमायां[4]
4	15	०मेतद्वारयामि[5]
4	18	बहुकरणीया[6]
5	16	०कृतस्य वक्तव्यम्[7]
6	28	संजल्पतः[8]

1 233b, 1.2: gnas-paḥi-phyir-btson-pa-ste. GM,9

2 Ms. ०कृतानि

3 Ms. ०कृतो ननुकंपः अनु० GM, 10

4 Ms. अन्तःसीमे

5 Tib. ends here a section thus: 235b,1.1: ḥdul-ba-gshi-bam-po-badun-cu-pa.

6 Tib. 235b, 1.3: ḥbyin-pas-bya-ba-maṅ-shiṅ-byed-pa-maṅ-por-gyur-pas. GM, 11

7 तर्जनीयकर्मकृतस्याहं भिक्षोरासमुदाचारिकान् धर्मान् प्रज्ञपयामि । तर्जनीयकर्मकृतेन भिक्षुणा न प्रव्राजयितव्यम् । नोपसंपादयितव्यम् । न निश्रयो देयः । न श्रमणोद्देश.... ....सातिसारो भवति ।

See page 2, Line 8-14 GM.13

8 Tib.239a, 1.5: kha-dpya-zer.

Page	Line	Word
6	28	संक्रीडत:[1]
6	28	संकिलिकिलायेते[2]
6	28	औदत्यं[3]
6	28	द्रवं[4]
6	28	कायितान्त्यं[5]
7	5	धावत:[6]
7	5	द्रवत:[7]
7	5	प्रद्रवत:[8]
7	5	कुरुत:[9]
7	5	बाहुपरिवर्तमपि[10]
7	5	रोहितावर्तमपि[11]
7	6	विध्यत:[12]

1 I bid rtse-bar-byed.

2 I bid za-sloṅ-bar-byed.

3 I bid mig zur-gyis-lta-bar-byed.

4 I bid ḥphyar-bar-byed.

5 I bid lus-kyis-sñog-par byed.

6 239b, 1.2-3: gos-rnams-rjes-nas-rgyug-par-byed.

7 I bid. mchoṅ-bar-byed.

8 I bid rgal-bar-byed.

9 I bid rkaṅ-pa-gcig-bskums-te. skor-bar-yaṅ-byed.

10 I bid lag-ḥgros-kyis-kyaṅ-bskor-bar-byed.

11 I bid ña-tshar-kyis-kyaṅ-skor-bar-byed.

12 Tib. 239, 1.3-4: chu-ḥgags-śiṅ-gteṅ-bar-byed.

Page	Line	Word
7	6	जलयंत्रकं[1]
7	6	जलभेरिकामपि[2]
8	23,34	वर्धते[3]
8	25	मुद्रायामुद्धारे[4]
9	10	मत्सरी[5]
9	10	कुटकुंचिका[6]
9	10	०१रिष्कारा[7]
9	10	व्यवस्यति[8]

1 I bid chu-la-spal-paḥi-skad-ḥbyin.

2 I bid chu-la rdaḥi-sgra-yaṅ ḥbyin. GM, 16

3 Ms वर्धिते GM, 19

4 Cf. Divy—यदा महान् संवृत्तस्तदा लिप्यामुपन्यस्तः। संख्यायां गणनायां मुद्रायामुद्धारे न्यासे निक्षेपे हस्तिपरीक्षायामश्वपरीक्षायां रत्नपरीक्षायां दारुपरीक्षायां वस्त्रपरीक्षायां पुरुषपरीक्षायां स्त्रीपरीक्षायाम्। नानापण्यपरीक्षासु पर्यवदातः सर्वशास्त्रज्ञः सर्वकलाभिज्ञः सर्वशिल्पज्ञः सर्वभूतरुतज्ञः सर्वगतिगतिज्ञः उद्घट्टको वाचकः पण्डितः पटुप्रचारः ···· ····कृतावी संवृत्तः।
Divy पृ०63,पं०5-13 (MRI)

5 Tib. 242b, 1.7: deḥi ma-de-ser-sna-can.

6 I bid. spar-ḥchums-pa-sig-ste. cf. Mvyut. 127.50: कुरुकुचिः, कुटुकुञ्चिकः.

7 Tib. 244a, 1.1: yo-byad-la-shen-pas.

8 I bid.kha-ta-la-gtor-ma-sbyin-paḥi-spro-ba-yaṅ-med-na. GM,20

Page	Line	Word
9	13	इति[1]
9	17	अक्षषण्डायां[2]
9	20,22	बलान्तीपुत्रः[3]
10	6	ममागम्यम्[4]
10	7	गम्यम्[5]

1 Tib. 243a, 1.2: skrum-ḥon-ḥo-shes kha-yaṅ-zero.

2 Tib.243a, 1.6: śiṅ-smrag-śaḥi-tshal-na.

CV—तेन खो पन समयेन आयस्मा सुधम्मो मच्छिकासण्डे चित्तस्स गहपतिनो आवासिको होति, नवकम्मिको धुवभत्तिको। यदा चित्ती गहपति संघं वा गणं वा पुग्गलं वा निमन्तेतुकामो होति तदा न आयस्मन्तं सुधम्मं अनपलोकेत्वा संघं वा गणं वा पुग्गलं वा निमन्तेति।

तेन खोपन समये सम्बहुला थेरा भिक्खू, आयस्मा च सारीपुत्तो, आयस्मा च महामोग्गल्लानो, आयस्मा च महाकच्चानो, आयस्मा च महाकट्ठिको, आयस्मा च महाकप्पिनो, आयस्मा च महाचुन्दो, आयस्मा च अनुरुद्धो, आयस्मा च रेवतो, आयस्मा च उपालि, आयस्मा च आनन्दो, आयस्मा च राहुलो, कासीसु चारिकं चरमाना येन मच्छिकासण्डो तदवसरुं।

अस्सोसि खो चित्तो गहपति थेरा किर भिक्खू मच्छिकासण्डं अनुप्पत्ताति। अथ खो चित्तो गहपति येन थेरा भिक्खू तेनोपसंकमि, उपसंकमित्वा थेरे भिक्खू अभिवादेत्वा एकमन्तं निसीदि। एकमन्तं निसिन्नं खो चित्तं गहपत्तिं आयस्मा सारिपुत्तो धम्मिया कथाय सन्दस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि सम्पहंसेसि। CV पृ०32,पं०15-27 (NNM)

3 Tib. 243b, 1.2: gar-mkhan-maḥi-bu. =नर्तकीपुत्रः। GM,21

4 Tib. 244a, 1.7: ci-kho-bo las-brten-te-ḥam.

5 Tib. 244b, 1. 1: khod-las-brten-te-ni-mayi-te-ḥon-kyaṅ-ḥphags pa.GM, 22

Page	Line	Word
10	13	कथयति[1]
10	14	तिलपूपालिका[2]
10	18	वाशते[3]
10	20	ताढककुंचिकां[4]

1 Tib. 244b, l. 5: khyim-bdag-nag pa-ti-la-gyi-khyar ba-ḥchiṅ-paḥi-tshoṅ-pa-yi-pas-chu-sted-kyis-smras-pa.

2 In pāli: तिलसंगुलिका।

CV—एकमन्तं निसिन्नं खो चित्तं गहपतिं आयस्मा सुधम्मो एतदवोच–"पहूतं खो ते इदं, गहपति, खादनीयं भोजनीयं पटियत्तं; एका च खो इध नत्थि यदिदं तिलसङ्गुलिका" ति। "बहुम्हि वत, भन्ते, रतने बुद्धवचने विज्जमाने अय्येन सुधम्मेन यदेव किञ्चि भासितं यदिदं तिलसङ्गुलिका ति। भूतपुब्बं, भन्ते, दक्खिणापथका वाणिजा पुरत्थिमं जनपदं अगमंसु वाणिज्जाय। ते ततो कुक्कुटिं आनेसुं। अथ खो सा, भन्ते, कुक्कुटी काकेन सद्धिं संवासं कप्पेसि। सा पोतकं जनेसि। यदा खो सो, भन्ते, कुक्कुटपोतको काकवस्सं वस्सितुकामो होति, काककुक्कुटी ति वस्सति; यदा कुक्कुटिवस्सं वस्सितुकामो होति, कुक्कुटिकाका ति वस्सति। एवमेव खो, भन्ते, वहुम्हि रतने बुद्धवचने विज्जमाने अय्येन सुधम्मेन यदेव किञ्चि भासितं यदिदं तिलसङ्गुलिका" ति। CV. पृ० 33,पं०21-29 (NNM)

3 Ms. सकाकृत्तिका वा० Tib. 245a, 1.2: de-gñis ḥchugs-pa-las-phru-gu-byuṅ-ba-deḥi-khwaḥi-skad daṅ. bya-gag-gi skad-gñis-ka-ḥbyin-pas.

4 Tib.245a, 1.4: btsun-pa chu-sted-gar-bshud. mñan-yod-duḥo. GM,23

Pase	Line	Word
10	27	गृहपतिरवस्फंरिडत:[1]
11	15	पूर्ववद्यावत्[2]
12	6,7	अक्षषरएढस्तेन,अक्षषरएडमनुप्राप्तः[3]
12	11	त्रिभिस्तालवृन्तः[4]
12	12	शवशीर्षोपमं[5]
12	26	संवृत्तः[6]
13	11	कर्तव्यम्[7]
13	20	विभङ्गे[8]
14	8	इति[9]

1 Tib. 245b, 1.2: de-ni-mad-na-bdag-gis-khyim-bdag-nag-ba-la-brñas-thabs-gyiso. GM, 24

2 See above page 2.GM, 25

3 Ms. अक्षशिरएड°

4 Ms.०वृन्दैः ; Tib.247b.1.3: śiṅ ta laḥi lo-ma gsum las spyil-po-byas-te.

5 Ibid. 1. 4: des-miḥi-ro-la-klad-pa-ḥdra-baḥi-lhun-bzed-bcaṅs-te. GM,26

6 MSV Vol. 1. p 238 (MRI). GM.27

7 See above page 1. GM, 28

8 Evidently it refers to the सूत्रविभङ्ग । GM, 29

9 Cf. Maj N—एवं मे सुतं। एकं समयं भगवा सावत्थियं विहरति जेतवेन अनाथपिण्डिकस्स आरामे । तेन खो पन समयेन अरिट्ठस्स नाम भिक्खुनो गद्धबाधिपुब्बस्स एवरूपं पापकं दिट्ठिगतं उप्पन्नं होति— "तथाहं भगवता धम्मं देसितं आजानामि यथा येमे अन्तरायिका धम्मा वुत्ता भगवता ते पटिसेवतो नालं अन्तरायाया" ति ।····
Maj N.I. पृ०174-176, cf.CV. पृ०56 57 (NNM)

Page	Line	Word
14	18	पापकं[1]
15	15	संचिन्त्य[2]
15	24	संचिन्त्य[3]
15	28	°मुपादाय[4]
16	28	वृद्धान्ते[5]
17	10	°मुपादाय[6]
19	9	°मुपादाय[7]
19	11	°मापन्नः[8]
20	26	°लापकर्षो[9]
21	10	°तिच्छन्नाम्[10]
22	8	अन्तरापत्तेः[11]

1. Ms. पापकदृष्टिकं GM, 31
2. In pali: सञ्चिञ्च्च; see पराजिका 3. GM,32
3. Pali. संचेतनिकं
4. Ms. °कम्पकमनु° GM, 33
5. Pali. वुद्धानं भिक्खूनं पादे वन्दित्वा GM, 35
   CV- पृ० 18, पं० 22; पृ० 39, पं० 24 etc. (NNM).GM, 35
6. Ms. °कम्पकमनु° GM, 36
7. Ms. °कम्पकमनु°
8. Ms. °त्तिप्रतिपन्नः GM, 39
9. Ms. मूलपरिवासो GM, 42
10. Ms. °त्थिताया अर्धमासप्रतिच्छन्नयाः। GM, 43
11. Ms. भिक्षोरस्यामेव संघावशेषायामन्तरापत्तेः GM, 45

Page	Line	Word
23	5	॰प्रतिरूपाया:[1]
26	26	॰दयितव्य:[2]
26	27	[धर्मे][3]
27	9	॰संज्ञाया[4]
30	2	समुच्छ्रय:[5]
30	17	॰मारोचयति[6]
30	18	[……। तस्य][7]
30	19	तामन्यापर्त्ति[8]
30	22	स्मरति[9]
31	7	स्मरति[10]

1. Ms. ॰पाया अन्तरापत्तेः पूर्वापत्तिप्रतिरूपाया: GM, 46
2. 268a, 1. 6: ḥog·tu·rma·dbab·bar·bya·ste.
3. 263a, 1.7: saṅs rgyas deḥi-chos-ni-ḥadi-ltarḥadod-chags-daṅ. GM, 53
4. 269a, 1.6: ḥdu śes-kyi-snod-du mi-ḥgyar-shiṅ.

   =संज्ञाया भाजनम् GM,54
5. Ms. समुच्चय; Tib. 272b, 1.4: btus·pa. see page 32.GM,61.
6. Ms. भिक्षुणामागत्वारोचयति
7. See Tib. 273a, 1.6
8. Ms. तामध्यापर्त्ति

9.10 This sentence means "put स्मरति insted of जानाति" in the preceding passage. GM,62

Page	Line	Word
31	23	दुर्दत्तः[1]
31	23	°कर्मणः[2]
31	24	स्मरति[3]
32	2	मानाप्यार्ह[4]
32	2	स्मरति[5]
32	5	आपत्तेरुभयसंततेः[6]
32	20	समुच्छ्रयेण[7]
32	20	द्वे[8]
32	20	अष्टविंशके[9]
32	22	अष्टकाः[10]
32	22	समुद्गिताः[11]

---

1. cf. CV.P.55
2. Tib. 274b, 1. 5: chos-ma-yin-paḥi-las-ḥkhrags-pa-yin-te.
3. Tib. marks here ḥdul-ba--bshi.
4. Tib 275a, 1. 3: mgu-bar-bya-bar-ḥos-pa-ste.
5. see p.217 fn. 9-10
6. Ibid. 1.6 rgyad-gñis-nas. GM,64
7. Ms. समुच्चय, see above page 30 Line 2
8. Ms. दीर्घिका; Tib. 275b, 1.6: bcu-drug-gñis-daṅ.
9. Ibid. lta-daṅ-brgyad-daṅ-ñi-su-daṅ. GM, 65
10. Ms. पट्टिका; I bid, gsum-daṅ-gsum brgyed gsum daṅ ni. bshi-daṅ-bshi-tsan-brgyad-ṅag-daṅ.
11. Ms. समुद्घतः; I bid.gnas-nas-dbyud-brgyed-gsum daṅ-ni. sgo-lṅa-dag-ni-stan-pa-yin.

Page	Line	Word
33	3	[उभय][1]
33	13	चत्वारि[2]
33	17-18	वेदनाभिन्नकत्व[3]
33	18	°योत्क्षेपकत्वम[4]
34	8	[परिवास][5]
34	10	[····आपन्नः][6]
34	18	वेदनाभिन्न[7]
34	20	परिमाणवतीः[8]
34	28	परिवासमिति[9]
35	4	°वंजातीयः[10]

1. Tib. 276a, 1.2: gñis-baḥi-rgyad-nas bzun-ste. GM,66
2. Tib. 276b, 1.2-3: desi-ltar-khyad-par-med pas-bshi-yin-pas.
3. Ms. वेदनाभित्रन्नकत्व°; see mvyut. 230. 45; Tib.276, 1.6: tshor-bas-ñen-pa-ñid-dañ.
4. Ibid. phyir-mi-byed-pas. GM,67
5. Ms. पश्चिमिकायाः षड्रात्रं मानाप्यं but see Tib.277b,11.3-4
6. Ms. संघावशेषामापत्तिमापन्नः । यो वा पुनरन्योऽप्येवं जातीयः । GM,68
7. see above fn. 2
8. Tib. 278a, 1.7: tshad-dañ-ldan-pa.
9. Ms. परिवासोऽयमिति GM,69
10. Ms. adds here अथापरः पुद्गलः संघावशेषामापत्तिमापन्नः । परिमाणवतीः प्रतिच्छन्नाः । स संघेनादर्शनायोत्क्षिप्य ओसारितः । स ता आपत्तीः प्रतिच्छाद्य भिक्षूणामारोचयति । भिक्षवो भगवतः । भगवानाह् । ददत यूयं भिक्षवस्तस्य पुद्गलस्य तासामापत्तीनां GM 70

Page	Line	Word
36	2	[प्रतिच्छाद्य[1]]
36	12	सार्वकालिका:[2]
36	13	च[3]
36	15	रात्रिपर्यन्तम्[4]
36	23	रात्रिपर्यन्तमिति[5]
36	25	शुद्धान्तिकं[6]
37	4	स्थापनार्हेण[7]
37	6	दत्त:[8]

1. see Tib.280a, 1.1: GM,71
2. Tib.280b, 1,1: btsams-pa-gcug-ñis-dag-daṅ-ni.
   dgu-pa-thams cad-nag-pa-daṅ.
3. Ibid. zug-dgu-dag-tu-byas-pa-daṅ.
   tshig-bcu-da-ṅni-lṅa paḥo.
4. cf. CV, iii.26. S.B.E. XVII,p.416 आपत्तिपर्यन्तम् = "degree of offences" and रात्रिपर्यन्तं = "duration of offences" GM,72
5. Tib. 280b, 1.7: ltuṅ-ba de-rnams-kyi-brtsams-pa-yaṅ-mi-śes-pa. shag-gi-mthaḥ-yaṅ-mi śes-pa.
   see above fn. 4
6. Tib, 281a,1.2: dag-paḥi-mthaḥ-can.
7. cf. CV,धम्मिकेन कम्मेन अकुप्पेन अट्ठानारहेन andअधम्मिकेन कम्मेन कुप्पेन ठानारहेन। CV, 144-148 (NNM)
   Tib, 281a. 1.7; chos-ma-yin-paḥi-las-ḥkhrugs-pa gshag par ḥos-pas. GM,73
8. Ms. दत्त इति

Page	Line	Word
37	8,15	आव्रीढो°[1]
37	9	°कालक:[2]
38	9	मानाप्यमपि[3]
38	24	°काज्ञक:[4]
39	3	आव्रीडो°[5]
39	8	°मानाप्यचारिक[6]

1. Tib. 281b, 1.3: phyu i-pa = dbyu i-ba = आवर्हण (cf. Mvyut. 264.18) = expel, banish withdraw. cf. Mvyut 265.948: आव्रीढशल्यम्। from the Tib. rendering of the word, we find that pāli अब्भान (= Sans. आवर्हण)means "not rehabilitation" or "coming back" as is usually rendered in English but "withdrawal of offences" committed by the monk. The monk was already within the संघ; he was only debarred from certain privileges. by "अब्भान or आवर्हण" his offences are excused (lit. banished) by the संघ and his privileges are restored.
2. Tib.281b, 1.3: nag po. Ms. कालिक: GM,74
3. Ms repeats here धर्मेण कर्मणाकोप्येनास्थापनार्हेण मानाप्यमपि GM,76
4. Ms. °कालिक:
5. आव्रीढकोऽप्य° GM,77
6. Ms. मूलपारिवासिक

Page	Line	Word
39	11	ˋकालकः[1]
39	28	ˋदुˋष्ठुला[2]
41	4	जानामि[3]
41	9	अप्रतिच्छन्नाम्[4]
42	7	समुद्यतम्[5]
44	2	सन्[6]
44	19	ˋसमुत्थितां[7]
44	19	[संलाप][8]
44	21	कुटिका[9]*

---

1. Ms. कालिकः GM,78

2. cf. pāli CV पृ०306 दुट्ठुल्ला (NNM) GM,79

3. Ms. adds here पूर्वापत्तिप्रतिरूपां प्रतिच्छन्नाम्।

4. Tib. 285b. 1.3 omits the word अप्रतिच्छन्नाम्। GM,81

5. Tib. 287b. 1.4-5. GM, 83

6. Tib. 290a, 1.4-5: gshi·dag·par-byas-te-ḥdul-ba-daṅ-ḥgal-baḥi-ñes-byas-kyi-ltuṅ-ba-bśags-na-spo-ba-spy-od pa·kho-na-yin-no. सन्, it seems, stands for भवितव्यः। GM,86

7. Tib. 290b.1.7: lus-kyi-reg-pa-las-gyur = कायसंस्पर्शसमुत्थिताम्।

8. Ibid. ḥkhrig·pa-daṅ ldan-pa-smra-ba-las-gyur.

9. Tib. 291a. 1.1: khaṅ-pa-las-gyur. GM,87

Page	Line	Word
44	21	महल्लक[1]
44	22	लेशिसमुत्थितां[2]
44	28	समाप्तम्[3]
45	1	वस्तुत्रयस्य[4]
45	2	अभिवादनं[5]
45	2	षष्टिश्च[6]
45	2	°श्चोदनाहि[7]
45	3	शाक्यश्च[8]

---

1. Ibid. 1.2: khaṅ-chen-las gyur.
2. Ibid. bag-tsam-las-gyur.
3. Tib. 291a, 1.6: ḥdul-ba-baḥi-bam-po-don-gsum-pa.

GM,88

अभिवादनं च षष्टिश्च अशुद्धश्चोदनाहि च ।
अधार्मिकश्च शाक्यश्च ग्लानकः कलहेन च ॥

mṅon-du-smras-daṅ-drag-daṅ-na.
ma-dag-pa-daṅ-gleṅ-ba-daṅ.
chos-ma-yin daṅ-śag-kyaṅ-daṅ.
nad-pa-daṅ-ni-rtsod-paḥo. Tib 291a,1.6-7:

4. see Introductory Verse. The three vastus are:—
पारिवासिक, पोषधस्थापन and शयनासन ।
5. See page 47 Line 2
6. See page 50 Line 22
7. See page 53 Line 6
8. See page 60 Line 1 GM,89

Page	Line	Word
47	4	सर्वलाभिकम्[1]
47	8	°व्युत्थिताः[2]
47	11	°प्रेतेभ्यः[3]
47	11	यत्तु[4]
47	12	°वर्तन्ते[5]
47	18	हस्तो[6]°
47	21	इति[7]
49	8	°हारिणकया[8]
49	15	दीप°[9]

1. Tib. 291b, 1.1: kun-gyi-ḥog tu-sbyin-pa-bya-baḥo. =सर्वपश्चाद्लाभिकम् ।
2. Ms. आपत्तिपातालाद Tib. 291b, 1.4: ltuṅ-baḥi-gshi-nas-ma-lṅas-pa.
3. Tib. 291b,1.6: ñamsu-myoṅ-shiṅ.
4. Ibid. ma-la. = Presently.
5. The reasoning is that it is better to remain a householder than to become a भिक्षु committing a संघादिशेष offence. GM,93
6. Tib. 292a, p.5: rdsesu-gzuṅ-ba-bcaḥ-bas-lag-nas-draṅ-ba.
7. See above ° वर्तन्ते p.47 Line 12 GM,94
8. Tib. 294a,1. 7: gal-te-ḥchag-sar-ḥchag-na-gom-pa-bsriḥo.
9. Ms. द्वीप० GM,97

Page	Line	Word
49	21	°दातिव्या[1]
50	5	समन्वाहर[2]
50	7	कथयति[3]
50	8	त्वमिति[4]
50	23	°कारिका[5]
50	24	[परिवासं][6]
51	7,8	°विंशत्या[7]
51	22	°वासितः[8]
52	7	आगच्छन्तीति[9]
52	8	°स्रष्टव्यः[10]

---

1. Tib. 294b, 1.7: kha·zas·kyis·gyos-la-brtgas-te·gyos-zin na-khaṅ-paḥi-steṅ-du-ḥdsegas-te·gṇdi·brduṅs·par pyḥo.
2. Tib. 295b, 1.4: dgoṅsu·gsol. GM,98
3. Ibid. 1.5: kun-nas·dkris-pas-smras·pa.
4. Ibid. 1,7: mi·dgos = I do not need you. GM,99
5. Tib. 296a,1.7: śa·khon·can-daṅ-ḥoṅ-baḥo.
6. Tib. 296a, 1.7: spo-ba·byin-pa.
7. Ms. एकान्नविंशत्या । GM,100
8, Ms. आभासितः; Tib.297b, 1.1: gnas·sam. GM,101
9. Ms. °कारकान् भिक्षूनागच्छन्ति ।
10. Ms. प्रतिनिसृष्टव्यः । GM,102

Page	Line	Word
52	15	°त्यर्थिकै[1]
53		°तूद्दानम्[2]
53	23	प्रतिसरति[3]
54	24	दुष्टतया[4]
55	15	दुष्टतया[5]
57	16	शुक्लपक्षे[6]
59	7	संवृतिसंघः[7]
59	12	समाप्तम्[8]
60	3	पश्चिमम्[9]

---

1. Tib. 298a, 1.7: de-nas-yaṅ-phas-kyi-rgol-ba-soṅ-sḥiṅ-ḥzigs-pa-daṅ-bag-tsha-ba-med-nas. GM,103
2. Tib. 299a,1.1. GM,107
3. Tib. 299b, 1.7: gshan-nas-gshan-du-bsgyur-nas. GM,108
4. 301a,1.2: ñes byas. = दुष्कृतया GM,109
5. 301b, 1.6: ñis-bcas. GM,111
6. Tib. 304a,1.6: dkar-poḥi-bygas-la. GM,114
7. Tib. 306a, 1.4: kun-rdzob = vain, spurious.
8. Tib.306b, 1.1: ḥdul-ba-gshi. bam-po-don-bashi pa. GM,117
9. Tib. 306b, 11.1-2:

   sākya-min-baḥi-lṅ a-sde-daṅ.
   mago-med-dge-ḥdun-gaṅ-gsag-gi.
   dṅos-po-bcom-baḥi-phyir-daṅ-ni
   gśibas-pa-yi-ni-sa-daṅ-ni
   dgon-pa-chos snum-pa-daṅ.
   dgon-pa-gnas-prta-rñed-pa daṅ.
   brgyad-po dag-ni-phyi ma yin. GM,121

Page	Line	Word
60	12	नोपेतो[1]
60	13	राजन्य:[2]
60	14	नामतिक:[3]
60	17	समेति[4]

---

1. cf. DigN—भवं हि कुटदन्तो उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन । यं पि भवं कूटदन्तो उभतो सुजातो मातितो च पितितो च, संसुद्धगहणिको याव सत्तमा पितामहयुगा, अक्खित्तो अनुपक्कुट्ठो जातिवादेन, इमिनापङ्गेन न अरहति भवं कूटदन्तो समण गोतमं दस्सनाय उपसङ्कमितुं; समणो त्वेव गोतमो अरहति भवन्तं कूटदन्तं दस्सनाय उपसङ्कमितुं ।

भवं हि कूटदन्तो अड्ढो महद्धनो महाभोगो पहूतवित्तूपकरणो पहूतजतारूपरजतो···पे०··· भवं हि कूटदन्तो अज्झायको मन्तधरो तिण्ण वेदानं पारगू सनिघण्डुकेटुभानं साक्खरप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं पदको वेय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खणेसु अनवयो·······पे०····भवं हि कूटदन्तो अभिरूपो दस्सनीयो पासादिको परमाय वण्णपोक्खरताय समन्नागतो ब्रह्मवण्णी वह्मवच्छसी अखुद्दावकासो दस्सनाय···पे०····भवं हि कूटदन्तो सीलवा वुद्धसीली वुद्धसीलेन समन्नागतो···पे०····भवं हि कूटदन्तो कल्याणवाचो कल्याणवाक्करणो, पोरिया वाचाय·······DigN I. पृ०111(NNM)

2. Tib. 307a, 1.3 4: rgyal-por-ḥos-pa-daṅ.

3. Ibid. 1.4: phyi -ba-can-daṅ. cf. Mvyut. 49.3.

4. Ibid. 1.7: so sor-brtans-nas-mi-ḥthun-pa-yin-gyis-tshur.

Page	Line	Word
61	19	°वार्षिकं[1]
61	22	वन्दितव्यः[2]
62	17	भूतपूर्वं[3]
64	12	संक्षेपय[4]
65	....	....[5]
66	13	प्रतिवसन्ति[6]
66	26	त्रिलयनं[7]
66	27	लयने[8]
67	1	कतिपुराः[9]

1. Tib. 308b, 1.6: dbyar-thuṅ-ṅu-daṅ. = ह्रस्ववार्षिकम् ।
2. Cf. CV Vi,6 GM,124
3. Cf. CV Vi, 6. GM,125
4. Tib. 312b, 1.6: mdor-na-khyed-kyis-ḥdul-ba-ma-yin. GM, 128
5. Tib. 315b, 1.3: ḥjigs-paḥi dbaṅ-du-ḥgro-ba-daṅ-bcas-pas. GM,131
6. See Tib. 316a. 1.2: GM,132
7. Ms. तृलयनं
8. Tib. 316b. 1.7: ṅos-bshi-pa-la-ni-dri-gtsṅ-khaṅ gi-thad-ka-dbus-su-sgo gaṅ-ḥdod-par-bya-shiṅ-gyos phogs su-gnas-khaṅ-gñis-so.
9. Ibid: du rtseg-tu.

Page	Line	Word
67	3	°पूतिका:[1]
68	29	कन्यानामिति[2]
69	6	स्नापित:[3]
70	15	शिविकद्वारं[4]
70	23	स्थण्डिलं[5]
70	28	हेतो:[6]

---

1. Tib. 317a, 1.1-2: sgo-khaṅ steṅ-gi-bsil-khaṅ-yaṅ-bdun btseg-ta-byaḥo. GM,133
2. Cf. CV—अथ खो सिवको यक्खो अन्तरहितो सद्दमनुस्सावेसि—
   सतं हत्थी सतं अस्सा सतं अस्सतरीरथा ।
   सतं कञ्ञासहस्सानि आमुक्कमणिकुण्डला ।
   एकस्स पदवीतिहारस्स कलं नाग्घन्ति सोळसिं ॥ GM,136
   CV, पृ०250.पं०8-11(NNM)
3. Cf. p.64 Line 13-29. GM,137
4. Tib. 321b, 1.7: lho-sgo. GM,139
5. Tib. 322a, 1.5: ḥdug-gnas.
6. The leaves of the original ms. after this (marked 218) are lost. one leaf with number 318 has been found elsewhere but on comparison of its contents with the Tib. translation, it appears that it should have been marked 219. This leaf, however, is damaged, and hardly half of its contents can be deciphered. The gaps have been filled up by restoration from Tibetan and indicated by box brackets. GM,140

Page	Line	Word
71	14	प्रतिक्रामतः[1]
73	23	रात्रावल्पशब्दे[2]
74	....	बोधिप्राप्ताय[3]
74	4	भैषज्य[4]
74	5	कर्मवस्तु[5]
74	6	सनवस्तु[6]
74	6	भेदवस्तु[7]
76	5	मुद्रायां[8]
76	7	छेद्ये[9]

1. Tib. See 322b, 1.6: GM,141
2- Tib. 326b, 1.1. GM,144
3. The first leaf has not been found. The above text (from p. 74 to p. 75 Line20) has therefore been restored from the Tibetan version.
4. See vol.1 (MRI)
5. See Ibid, vol.1 for four vastus from चीवरवस्तु ।
6. See Ibid, vol.2 for the five vastus from पोषधस्थापनवस्तु ।
7. See Infra. GM,3
8. Tib. adds मुष्टिबन्धे शिखाबन्धे पादबन्धे GM,6
9. Tib. adds here चर्यायां शौचे समाचारे च उपन्यस्तः । तेष्वपि पारं गतः । अष्टसु परीक्षासु कुशलो जातः । रत्नपरीक्षायां वास्तुपरीक्षायां वस्त्रपरीक्षायां रथपरीक्षायां हस्तिपरीक्षायामश्वपरीक्षायां स्त्रीपरीक्षायां भूतपरीक्षायां चेति । GM,7

Page	Line	Word
78	8	प्राणा[1]
80	17	तन्त्र[2]
84	6	च्यावित्ता[3]
84	12	सन्ति.....।[4]
85	5	°त्तुङ्गनासः ।[5]
86	2	स्थापिताः[6]
86	12	त्रयाणां[7]
86	13	नाधिगतम्[8]

1. See above p. 75 GM,10
2. Tib. 71.9: des-gyud-chags-lṅa-bgya-bzlas-so GM,15
3. Tib. is more diffuse here.
4. Tib. kun cu-gyu. GM,21
5. Tib. differs here. GM,23
6. According to the Tib, the first chapter ends here. GM,24
7. Here ends one complete leaf perhaps the 6th and the following leaves are lost. GM,25
8. In the previous lines, which are not available, it is stated that some Nāgas created a monastery, in which a Nāga in the from of an old monk was imparting religious instructions to other Nāgas, who took the from of brāhmaṇas and gṛhapatis. To that monastery came some monks (āgantukas), who objected to the delivery of the imperfect Ekottarikā(=Pali: Aṅguttara). The word 'Mahalla' refers to the old monk mentioned above.

Note: The Tibetan page references are to the Derge edition.

Page	Line	Word
86	16	खुरितकया[1]
86	26	°सनकोटिं[2]
86	27	अनधीष्टो[3]
87	11	°यिकमिदम्[4]
88	....	....[5]
90	2	°सेचनक[6]

1. Tib. (Derge ed. 100a), rzubs-par. = imperfect.

GM,27

2. Tib. 1.1 omits उद्घाटको

3. Ibid. lam-gsol-bar = अयाचित:

Cf.MVa–तेन खो पन समयेन छब्बग्गिया भिक्खू सङ्घमज्झे अनज्झिट्ठा धम्मं भासन्ति । MV पृ०115. पं०3 (NNM) GM,28

4. Tib. 100b, 1.7: thabs-yin-no. GM,29

5. Tib. 101b, 1.7: spyad-dag-daṅ. = articles. GM,31

6. Tib. 104b, 1.1: chog-mi-śes = असेचनक = अतृप्त; i.e. one is not satisfied by repeated visualisation of the deity.

see also Divy—अथापरेण समयेन सार्थवाहः पण्यं विसर्जयित्वा आगतः । तेन स दृष्टः स्तूपोऽसेचनकदर्शनः । दृष्ट्वा च भूयस्या मात्रयाभिप्रसन्नः ।

Divy पृ०14. पं०10-12 (NNM)

तं दृष्ट्वा द्वात्रिंशल्लक्षणालंकृतमसेचनकदर्शनमतीव प्रसाद उत्पन्नः । यतोऽसौ प्रसादीकृतचेता यानादवतीर्य तं भगवन्तं तैश्चतूरत्नमयैः पुष्पैरवकिरति । Divy पृ०140. पं०10–12 (MRI)

Page	Line	Word
90	2	[नि[1]
90	14	पन्थलिकां[2]
90	25	'कालीभूतम्[3]
92	20	खट्वाकारान्[4]
92	23	बहूल्लापका:[5]
93	21	मलं[6]

---

1. In the Divy. p. 207 the text has been shortened.

See Divy—तेऽनुपूर्वेण समुद्रतीरं गत्वा सर्वे ते वणिजः शयिताः। आयुष्मान् संघरक्षितो महासमुद्रं द्रष्टुमारब्धः। उक्तं भगवता–पञ्चासेचनका दर्शनेन।

हस्तिनागश्च राजा च सागरश्च शिलोच्चयः।
असेचनका दर्शनेन बुद्धश्च भगवतां वरः॥ इति।

चिरं महासमुद्रं पश्यन् जागरितः। सोऽपश्चिमे यामे गाढनिद्रावष्टब्धः शयितः। तेऽपि वणिजः सरात्र…………

Divy पृ॰207 (MRI)

2. Tib. 105a, 1.1: lam-sraṅ = narrow path GM,34

3. Tib. 105b, 1.2: ji-tsam-na-dro-ma-yol-pa-daṅ = lit. when the time has not yet passed, i.e. immediately after. GM,35

4. Tib. 108a, 1.2: gtum-lḍra-ba-dag-daṅ. = like a pestle. GM,38

5. Tib. 108a, 1.3: smra-ba-maṅ-ba-yin pas = talking too much. GM,39

6. Tib. 108b, 1.6: rdul daṅ-dri ma daṅ. GM,40

Page	Line	Word
93	23	भिक्षुः॥[1]
93	26	नगरोपमं[2]
93	29	धर्ममिति[3]

1. cf. धम्मपद दण्डवग्ग—

न नग्गचरिया न जटा न पङ्का नानासका थण्डिलसायिका वा ।
रजोच जल्लं उक्कुटिकप्पधानं सोधेन्ति मच्चं अवितिण्णकंखम् ॥
अलंकतो चे पि समं चरेय्य सन्तो दन्तो नियतो ब्रह्मचारी ।
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्खु ॥

Note: The stanzas are included in the दण्डवग्ग of the pali version but in the Brāhmaṇa-varga of the Sanskrit.

cf. MV—

न मुण्डभावो न जटा न पंको नानासनं थण्डिलशायिका वा ।
रजोजलं वोत्कुटुकप्रहाणं दुःखप्रमोक्षं न हि तेन भोति ॥
अलंकृतो वापि चरेय धर्मं क्षान्तो दान्तो नियतो ब्रह्मचारी ।
सर्वेहि भूतेहि निवार्य दण्डं सो ब्राह्मणो सो समणो स भिक्षुः ॥

MV iii.p.412

2. Tib. 109a-IIIa gives the sūtra in extenso. This sūtra deals with प्रतीत्यसमुत्पाद ।

3. cf. रतनसुत्त—

यानीध भूतानि समागतानि भुम्मानि वा यानि व अन्तलिक्खे ।
सब्बे व भूता सुमना भवन्तु अथो पि सक्कच्च सुणन्तु भासितम् ॥

cf. MV—

यानीह भूतानि समागतानि भूम्यानि वा यानि व अन्तरीक्षे ।
मैत्रीकरोन्तु सद मनुष्यका प्रजा दिवं च रात्रिं च हरन्ति वो बलिम् ॥

MV vol.1. p.240. Line. 6-9(MRI) GM.41

Page	Line	Word
94	4	शोभनम्[1]
94	11	संवृत्तः[2]
94	13	धातुकुशलो[3]
94	14	प्रतीत्य[4]
94	15	'शासनीति[5]
95	10	स्थिता[6]
95	16	खट्वाकारान्[7]

---

1. A few sentences have been omitted. See Tib. 112a,b
2. Tib. 113a, 1.1: bdag ni-gziṅs-lta-bur-gyur-pa. = I have become similar to a ship.
3. In Tib. it is preceded by स्कन्धकुशलो भवति ।
4. Tib. 113a, 1.3 inserts here आयतनकुशलो भवति ।

   GM,42
5. Tib. 113a. 1.3: deḥi-gdams-ṅag-daṅ-rjes-su-bltan-pa-gshan-la-rag-ma-las-pa-yin-no.

   GM,43
6. Tib. 114a, 1. 4: lus-gzugs-bkab-bar-gyur. Cf. MSV, Vol. 1. p. 23. (MRI)
7. Tib. 114b, 1.1: phar-pa = सरक, a drinking vessel. Cf. Journal Asiatique, 1932, p 18.

   GM.44

Page	Line	Word
96	14	गच्छति[1]

1. See Tib.116a,1.2.

In the Divy—स तस्य कर्मणो विपाकेन उदूखलाकारः संवृत्तः। यांस्त्वं संघरक्षित सत्त्वानद्राक्षीः स्थाल्याकारांस्ते काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य कल्पिकारका आसन्। ते भिक्षूणां भैषज्यानि क्वाथयमानाः स्थालिकां भञ्जते। तेषां भिक्षूणां विघातो भवति। ते तस्य कर्मणो विपाकेन स्थाल्याकाराः संवृत्ताः। यं त्वं संघरक्षित सत्त्वमद्राक्षीर्मध्ये छिन्नस्तन्तुना धार्यमाणो गच्छति, स काश्यपस्य सम्यक्संबुद्धस्य प्रवचने प्रव्रजित आसील्लाभग्राहिकः। तेन यद्वार्षिकं लाभं तत् हैमन्तिकं परिणामितम्, यद्धैमन्तिकं तद्वार्षिकम्। तस्य कर्मणो विपाकेन मध्ये छिन्नस्तन्तुना धार्यमाणो गच्छति। Divy पृ०212पं०17-23 (MRI)

The Saṃgharakṣitāvadāna ends here. The editor of the GM. observes: 'the portion of the ms., containing the Saṃgharakṣitāvadāna, was in the possession of Prof. Sylvain Lévi, who did not reproduce the same in the Journal Asiatique (1932), in which appeared the matter contained in the leaves following those of the Saṃgharakṣitāvadāna. The Saṃgharakṣitāvadāna has been reproduced from the, Divyāvadāna (pp.204-212(MRI). On collation with the Tibetan version of the Dul-va, it appears that the compiler of the Divyāvadāna omitted or separated certain portions here and there. It will be observed that the story in the Divyāvadāna has been opened abruptly with the words: किं महल्लेनाभिगतम्

Page	Line	Word
96	15	भिक्षवः[1]

(see above, page 86 Line 13). In Cowell's edition or probably in the original Nepalese ms., the concluding portions of the Saṃgharakṣitāvadāna have been separated, and one of the portions has been named "Nāgakumārāvadāna" while the other portion has been left without any heading. In the Dul-va the 25th Avadāna (see Divyā., pp. 213-215MRI) is placed immediately after the 23rd while the 24th (Nāgakumārāvadāna in Divyā., pp. 213-214 MRI) appears next'. GM,46

1. See divy—भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पृच्छन्ति—किं भदन्त आयुष्मता संघरक्षितेन कर्म कृतम्, यस्य कर्मणो विपाकेनाढ्ये महाधने महाभोगे कुले जातो भगवतोऽन्तिके प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कृतम्? एवं तं च वैनेयकार्यं कृतम्? भगवानाह—संघरक्षितेनैव भिक्षवः कर्माणि कृतानि उपचितानि पूर्ववत्। भूतपूर्वं भिक्षवोऽस्मिन् एव भद्रके कल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि पूजायां काश्यपो नाम शास्ता पूर्ववत्। तस्यायं शासने प्रव्रजित आसीद्वैयावृत्यकरः। अस्य तत्र पञ्च सार्धंविहारिशतानि। यद्भूयसा एककर्वटनिवासी जनकायः, अस्यैवाभिप्रसन्नः। अनेन तत्र यावदायुःपर्यन्तं ब्रह्मचर्यं चीर्णम्. न कश्चिद्गुणगणोऽधिगतः। अपरेण समयेन ग्लानीभूतः। मूलगण्डपत्रपुष्पफलभैषज्यैरुपस्थीयमानो हीयत एव। मरणसमये प्रणिधानं कर्तुमारब्धः—यन्मया काश्यपे भगवति सम्यक्संबुद्धेऽनुत्तरे महादक्षिणीये यावदायुर्ब्रह्मचर्यं चीर्णम्,………।

Page	Line	Word
96	18	पुर्ववत्[1]
96	19	भिक्षवो[2]
96	27	शासने[3]
97	7	कुयु:[4]
97	13	पूर्ववत्[5]

किं मन्यध्वे भिक्षवः ? योऽसौ वैयावृत्यकरः, एष एवासौ संघरक्षितो भिक्षुः। यानि तानि पञ्च सार्धंविहारिशतानि........॥

इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाकः........ पूर्ववत् ॥ Tib. 116a, 1.2.Divy पृ०215 (MRI)

1. Cf. MSV, Vol. 1. p.67 (MRI)
2. See Tib. 116a, 1.7.
3. Divy—मरणसमये प्रणिधानं कर्तुमारब्धः—यन्मया काश्यपे भगवति सम्यक्संबुद्धेऽनुत्तरे महादक्षिणीये यावदायुर्ब्रह्मचर्यं चीर्णम्, न कश्चिद्गुणगणोऽधिगतः, अनेनाहं कुशलमूलेन योऽसौ भगवता काश्यपेन सम्यक्संबुद्धेनोत्तरो नाम माणवो वर्षशतायुषि प्रजायामवश्यभागीयकस्य भाव्यतायां बुद्धो व्याकृतः, तस्य शासने प्रव्रज्य सर्वक्लेशप्रहाणादर्हत्त्वं साक्षात्कुर्याम् । Divy पृ०215.पं०10-14(MRI) GM, 47
4. Ms. कुयु: for कुर्याम्
5. Divy—इति हि भिक्षव एकान्तकृष्णानां कर्मणामेकान्तकृष्णो विपाक.... पूर्ववत् ॥

Divy पृ०215 पं०27 (MRI)

Page	Line	Word
97	14	भिक्षवः[1]
98	23	शक्यते[2]

---

1. Divy—भिक्षवः संशयजाताः सर्वसंशयच्छेत्तारं बुद्धं भगवन्तं पृच्छन्ति—कुतो भदन्त तेन नागकुमारेण तत्प्रथमतः श्रद्धा प्रतिलब्धा ? भगवानाह—भूतपूर्वं भिक्षवोऽस्मिन्नेव भद्रकल्पे विंशतिवर्षसहस्रायुषि प्रजायां काश्यपो नाम शास्ता लोक उत्पन्नस्तथागतोऽर्हन् सम्यक्संबुद्धो विद्याचरणसंपन्नः सुगतो लोकविदनुत्तरः पुरुषदम्यसारथिः शास्ता देवमनुष्याणां बुद्धो भगवान्। स एवं श्रावकाणां धर्मं देशयति—एतानि भिक्षवोऽरण्यानि शून्यागाराणि पर्वतकन्दरगिरिगुहापलालपुञ्जाभ्यवकाशश्मशानवनप्रस्थानि प्रान्तानि शयनासनानि ध्यायत। भिक्षवो मा प्रमादत। मा पश्चाद्विप्रतिसारिणोभूत। इदमस्माकमनुशासनम्। तत्र केचिद्भिक्षवः सुमेरुपरिषण्डायां गत्वा ध्यायन्ति, केचिन्मन्दाकिन्याः पुष्करिण्यास्तीरे, केचिदनवतप्ते महासरसि, केचित् सप्तसु काञ्चनमयेषु पर्वतेषु, केचित् तासु तासु ग्रामनिगमराजराष्ट्रधानीषु गत्वा ध्यायन्ति ॥

अन्यतमश्च चिरजातको नागकुमारः सुपर्णिना पक्षिराजेन सुमेरुपरिषण्डायामुपरिष्टादपह्रियते। यावत् तेन भिक्षवो ध्यानाध्ययनयोगमनसिकारयुक्ता विहरन्तो दृष्टाः। दृष्ट्वा चास्य चित्तमभिप्रसन्नम्। प्रसादजातः ············नागकुमारेण तत्प्रथमतः श्रद्धा प्रतिलब्धा ॥

Divy पृ॰213-214 (MRI)

2. It should be शक्नोति

Page	Line	Word
99	7	प्रतिलब्धा[1]
99	9	गतः[2]
99	18	फलकं[3]
99	18	खोरं[4]
99	27	°धर्मा[5]
100	5	°गमयति[6]
100	12	क्षिप्रम्[7]
100	13	अां[8]
100	18	कर्परकौ[9]

---

1. Tib 119b, 1.1 See Divy—स तं नागं तस्माद्भवनाच्च्यावयित्वा तत्रैवोपपन्नः। तत्र भिक्षवस्तेन नागकुमारेण तत्प्रथमतः श्रद्धा प्रतिलब्धा। Divy पृ० 214 पं० 16-17 (MRI)
2. See Tib. 119b, 1.2
3. Tib. 119b, 1.6: spaṅ-leb-khriḥu = wooden seat.
4. Tib, 119b, 1.7: sloṅ-phor = भिक्षापात्रम् GM,52
5. Tib. 120, 1.4: mi-skye-baḥi-chos.
6. Tib. 120a, 1.7: der-skya-reṅs-ḥchar-par-byed-na. GM,53
7. Tib. 120b, 1.4.
8. Tib. 120b, 1.4: de-yin-te.
9. Tib. 120b, 1.6: gyo-mo. = potsherd.

GM,54

Page	Line	Word
100	26	श्रेयोऽहं[1]
101	15	चन्द्रमाः[2]
102	3	जेन्ताकं[3]
102	5	जीवितम्[4]
102	17	°स्नानं[5]
102	29	कृतं[6]

---

1. Tib. 121a, 1.6: raṅ-gi-khyem-du = स्वगृहं

GM,55

2. Cf. Dhammapada, Lokavagga:

यस्य पापं कतं कम्मं कुसलेन पिथीयति ।
सो इमं लोकं पभासेति अब्भा मुत्तो व चन्दिमा ॥

GM,56

3. Tib. 122a, 1.3: bsro-khaṅ = Chamber for not bath.

4. Cf. MV, Ill.p. 183: and

Divy— सर्वे क्षतान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥३॥

Divy पृ०17.पं०6-7; 63 पृ०16-17. (MRI) GM,57

5. Tib. 122b, 1.2: dge-l̥adun-la-bsro khaṅ-gi-khrus-byas-pas = स्नानागारम् ।

GM,58

6. Tib. 123a. 1.

Page	Line	Word
103	3	°दोषयुक्तः[1]
103	6	शान्तं[2]
103	10	जगाम[3]
103	13	°विरोऽर्हन्[4]
103	19	स्मिते[5]
103	22	समानो°[6]
104	3	वक्तव्यः[7]

1. Divy—

तवानुभवात्पिहितः सुघोरो ह्यपायमार्गो बहुदोषदुष्टः ।
अपावृता स्वर्गगतिः सुपुण्या निर्वाणमार्गं च मयोपलब्धम् ॥१६॥

Divy पृ०32.पं12-13(MRI)

2. Divy—

त्वदाश्रयाच्चाप्तमपेतदोषं ममाद्य शुद्धं सुविशुद्धचक्षुः ।
प्राप्तं च कान्तं पदमार्यकान्तं तीर्णा च दुःखार्णवपारमस्मि ॥१७॥

Divy पृ०32. पं14-15 (MRI) GM,59

3. See Divy. p. 52
4. Tib. 123a, 1.7:
5. Tib. 123b, 1.4: ḥdzum-pa-sṅon-du-btaṅ·ste.
6. Ms. समान; Tib. 123b,1.5: mkhan-po gcig-pa-des-de-raṅ s-siṅ-mag-pa-daṅ. GM,60
7. The previous story (above p.100 Line 8 to p. 104 Line 9) is literally repeated in Tib. 124a, 1.2-127b, 1.2. Only the word "mother" is substituted by "father."

Page	Line	Word
104	4	उद्दानम्[1]
104	11	°रोपमेन[2]
104	16	सानुयात्रः[3]
104	17	व्याडो[4]
104	18	मोषं[5]
104	20	भलिन्[6]
104	23	प्रवर्तते[7]
106	7	भवति[8]

---

1. See Tib. 127b 1.2 GM,61
2. Tib. 127b, 1.5: gshon-nuḥi-dpeḥi-mdo-s ñes.
3. Tib. 127: bsel-ba-daṅ bacs-pa = सानुचरः
4. Tib. 128a, 1.1: gdug-pa-pha-rol.
5. Ibid. skyin-pa = goods
6. Ibid. 1,2: bya-ma-rta = messenger GM,62
7. Cf. Divy—स ब्राह्मणः संलक्षयति-आर्येण स्वागतेन प्रणीत आहारः परिभुक्तः, नो जरयिष्यति, पानकमस्मै प्रयच्छामि। इति विदित्वा आयुष्मन्तं स्वागतमिदमवोचत्—आर्य, प्रणीतस्ते आहारः परिभुक्तः। पानकं पिब। पानं जरयिष्यतीति। स कथयति–शोभनम्। एवं करोमीति। तेन पानकं सज्जीकृत्य हस्तिमदादङ्गुलिः प्रक्षिप्ता। असमन्वाहृत्यार्हतां ज्ञानदर्शनं त प्रवर्तते। आयुष्मता स्वागतेन तत्पानकं पीतम्।

   Divy पृ०117.पं०21-26 (MRI) GM,63
8. Cf.Mva, 1-67

Page	Line	Word
106	12	भवति[1]
106	16	°संपादयितव्यः[2]
106	17	°रागयति[3]
106	19	°क्षिप्रकः[4]
107	1	भिक्षुभिः[5]
107	3	जातापहारिणो[6]
107	13	पात्रयोरिणका[7]

---

1. Cf. Ibid. 1.78 GM,65

2. Cf. Mva–सचाहं पस्सिस्सामी ति, पब्बाजेतब्बो। सचाहं न पस्सिस्सामी ति, न पब्बाजेतब्बो। पब्बाजेत्वा वत्तब्बो—"पस्सिस्ससि तं आपत्ति" ति? सचाहं पस्सिस्सामी ति, उपसम्पादेतब्बो। सचाहं न परिसरसामी ति, न उपसम्पादेतब्बो।

   Mva पृ०101.पं16-18 (NNM)

3. Tib. 129b, 1.6-7 gal-te-dge-ḥdun-tshogs-pa-yod-na.

4. Ibid. ji-lta-ba bshin-du-phyir-mi-ḥchos-bas-gnas-nas-phyuṅ ba.

5. Tib. 130a, 1. 4: dge-sloṅ-raṅ-bshin-du-pa-dag-daṅ.

   GM,66

6. Tib. 130a, 1.5: lhuṅ-ba-zed-nag-po-can-ḥdi-dag-ni-btsas ḥphrog-ba-daṅ-ḥdra-ste.

7. Tib. 130b, 1.3: lhuṅ-bzed-kyi-snod-bshag. GM,67

Page	Line	Word
107	24	प्रव्राजयितव्यः[1]
107	24	कारण्डरिक°[2]
107	26	स्त्रीच्छिन्नान्[3]
107	27	प्रव्राजयन्ति[4]
107	28	भिक्षवः[5]
107	30	°राभिभूतान्[6]
108	20	°गृहीयकानां][7]
110	17,21	खक्खटा[8]
110	19	पश्चादानन्दा[9]
110	20	वाणा[10]

1. Cf. Mva—

सचाहं पस्सिस्सामी ति, न पब्बाजेतब्बो ।
सचाहं न पटिनिस्सज्जिस्सामी ति, न पब्बाजेतब्बो ।

Mva पृ० 101.पं०16; पृ०102. पं०5-6(NNM)

2. Tib. 131a, 1.1: smad-ḥchal.
3. Tib. 131a, 1.2: bud-med-kyes-dub-pa. Mvyut. 270.38.
4. See Mvyut. 270
5. Tib. 131a, 1.3 omits these three lines.
6. Mvyut. 283. GM,68
7. Ms. संबहूलानामन्यतीर्थिकपरिव्राजकानां ।

GM,72

8. खंलटा; Tib. 133b, 1.5: mukhra-bar = hard
9. श्रानन्द = श्रानन्दपट्टिका
10. वाणा = woven textiles GM,75

Page	Line	Word
111	2	कुन्दसकः[1]
111	3	प्रचालयति[2]
111	14	यापयन्ति[3]
111	15	प्रपतितं[4]
112	26	त्रिस्त्रिः[5]
112	27	°त्रिः[6]
112	27	अन्तगण्डीं[7]
113	5	त्रिदण्डकं[8]
113	11	त्रिपरि°[9]
113	19	°द्वेष्टव्यः[10]

1. Tib. 135a, 1.6: pho-loṅ = a kind of jasmine
2. Ms. स न पश्यति, Tib. 134a, 1.6: ḥon-kyaṅ-yur-nas. GM,76
3. Tib. 134b, 1.4: mi-śoṅ-nas. = There being no room for them.
4. Ms. प्रपातं; Ibid. 1.5: lhuṅ-par-gyur-nas.
5. Ms. त्रिषु
6- Ms. द्वे
7, Tib. 136a, 1.2: śi-baḥi-gṇtyi-de-ni-byi-boḥo.
sboṅ-baḥi-gṇtyi-deni-khar-sil-lo. GM,79
8. Tib. 136a, 1.5: rgyud-chags-gsum = three times.
9. Tib. 136b, 1.1: ran-par-byaḥi. = परिमित ।
GM,80
10, Tib. 136b, 1.4: GM,81

Page	Line	Word
115	21	वा[1]
116	4	°संवृत्त्या[2]
117	10	°दाहयन्ति[3]
119	3,6	भवन्ति[4]
119	8	वा[5]
119	9	°विस्तरः[6]
119	11	°भितव्यं[7]
119	13	स्थापयित्वा[8]
119	25	धारयामि[9]

---

1. Tib. 139b, 1.5. GM,84
2. Tib. 140a, 1.6. GM,85
3. Tib. 140b, 1.4: sdud-par-byed-pa-na. = to collect, सञ्चय । GM,87
4. These two paras are placed in Tibetan after पूर्ववत् यावत् in p. 120 Line 29. p. 121 Line 1-12
5. Tib. 144a, 1.1: bskyur-ba-daṅ-pskyed-par-ruṅ-ṅam.
6. Tib. 144a, 1.2: de-la-bskyur-ba-ni-ḥdi-yin-te-chuṅ-duḥo.
   de-la-bskyed-pa-ni-ḥde-yin-te-chen-poḥo.
7. Tib. 144a, 1.2: gshig-par-byaḥo. GM,90
8. Tib. 144a, 1.3: mtshams-gñi gar-dge-ḥdun-bkod-de.
9. Ms. adds here this line तत्र यदिच्छन्ति वाचयितव्यः । नोचेत् संकोचयितव्यः । But it is wanting in Tibetan. GM,91

Page	Line	Word
120	7	स्थापयित्वा[1]
120	8	अवस्थाप्य[2]
120	10	यावत्[3]
120	13	°नामर्वाक्[4]
121	3	समग्राः[5]
121	12	पंचमः[6]

---

1. Tib. 145a, 1.4: bkod-de=arranging रचयित्वा ।
2. Tib. 145a, 1.5: seg-ma-re-ldes-mnan nas.
3. In the Tibetan version, the whole passage is repeated again and again. In this text, however, the repetition is avoided by the use of the words पूर्ववत् यावत् ।

   GM,92
4. आघटन=निमित्त at per Tibetan. GM,93
5. Cf. Mva—

   चत्तारिमानि, भिक्खवे, उपोसथकम्मानि—अधम्मेन वग्गं उपोसथकम्मं, अधम्मेन समग्गं उपोसथकम्मं, धम्मेन वग्गं उपोसथकम्मं धम्मेन समग्गं उपसोथकम्मं ति । तत्र, भिक्खवे, यदिदं अधम्मेन वग्गं उपोसथकम्मं, न, भिक्खवे, एवरूपं उपोसथकम्मं, कातब्बं । न च मया एवरूपं उपोसथकम्मं अनुञ्जातं । तत्र, विक्खवे, यदिदं अधम्मेन समग्गं उपोसथकम्मं, न, भिक्खवे, एवरूपं ···उपोसथकम्मं करिस्साम यदिदं धम्मेन समग्गं ति—एवञ्हि वो भिक्खवे, सिक्खितब्बं ति ।

   Mva पृ० 113 पं० 28;पृ० 114. 1-9(NNM)
6. Cf. Ibid, 11.15 GM,94

Page	Line	Word
121	17	भिक्षोर्दृश्यते[1]
121	17	भिक्षोर्दृश्यते[2]
121	18	प्रातिमोक्षः[3]
121	19	वास्तु°[4]
122	4	वास्तु°[5]
122	4	उपस्था°[6]
122	13	पश्चिमिकां[7]
122	19	°यितव्यम्[8]
122	28	स्नेहलाभः[9]
123	1	°कायाम्[10]
123	4	त्वमिति[11]

1. In Tibetan the repetition does not appear.
2. Ms. भिक्षोर्दिश्यते; Tib. 147b, 1.4: snaṅ-ño.
3. Ms. भिक्षोरुद्दिश्यते; Tib. 147b, 1.5: mi-snaṅ-**nas.**
4. Tib. Ibid, gnas-bstabs. GM,95
5. Tib. 148a, 1.6: gnas.
6. Tib. 148a, 1. 7: bsñen-bkur=उपस्थान; पर्युपासना ।
GM,96
7. Ms. has both पश्चिमकां and पश्चिमिकां ।
8. Tib. 148b, 1.4. bsdad-par=to expect. GM,97
9. Tib. 149b, 1. 1: snam-bag-gi-rñed=स्नेह (=तैल) लाभः ।
10. Tib. 149a, 1.2: ḥdran.
11. Cf. Mva, 11. 21

Page	Line	Word
123	6	भिक्षुकारेण[1]
123	6	ऊर्ध्वलोकना[2]
123	8	तत्रोक्ता[3]
123	19	कृत्वा][4]
124	3	लंघयितव्यं[5]
124	16	समनुद्देशकत्वं[6]
124	27	उच्चतरके....[7]
124	27,28	°मुद्दिशन्ति[8]

---

1. Not found in Tibetan.
2. Tib. 142a, 1.4: gnaṅ-bar = अधिवासना ।
3. Tib. 149a. 1.6: gal-te-bstan-pa-de-las-gshan-du-hjug-
   na-ḥgal-tshabs-can-du-ḥgyur-ro.
   GM,98
4. Tib. 149b, 1.4. GM,99
5. Tib. 150a. 1.4. GM,100
6. Sans. श्रमण°
7. See Tib. 151b, 1.3f, Three leaves are lost here.
   GM,101
8. Cf. Mva—

   पातिमोक्खं उद्दिशन्ति । तेहि उद्दिस्समाने पातिमोक्खे, अथञ्ञे आवासिका..........करोन्ति, पातिमोक्खं उद्दिशन्ति ।

   Mva पृ॰130-136 (NNM)

Page	Line	Word
125	3	धर्मसंज्ञिनः[1]
125	22	नैवासिकैः[2]
125	25	समका[3]
125	26	मण्डलकञ्च[4]
127	1	प्रतिपद्वा[5]
127	1	बहुतर[6]
127	4	समकानाम्[7]

---

1. Ms. throughout संगिनः for संज्ञिनः। Tib. chos-kyi-ḥdu-śes-can-mthun-paḥi-ḥdu-śes-can. GM,103
2. Ms. यथाऽनैवा
3. In this text, the repetition have been abridged. In Tibetan, the repetitions appear in extenso.
4. Tib. 191b, 1.4: gral-rims-gsol-tshogs dkyil-ḥkhor-bḥo. GM,104
5. Cf. Mva–

   इध पन, भिक्खवे, आवासिकानं भिक्खूनं पटिपदो होति, आगन्तुकानं पन्नरसो। सचे आवासिका वहुतरा होन्ति, ... आगन्तुकेहि आवासिकानं नाकामा दातब्बा सामग्गी। आवासिकेहि निस्सीमं गन्त्वा उपोसथो कातब्बो।

   Mva पृ०137पं०27; पृ०138पं०1-10(NNM)
6. Ms. अल्प
7. Tib. 198b, 1.6. GM,106

Page	Line	Word
127	13	अज्ञातकं[1]
127	13	विसिकां[2]
127	13	कुएडीं[3]
127	14	पूलानुपानहो[4]
127	16	अन्यत्र[5]
127	16	पृथग्[6]
127	16	भवन्तु[7]
127	17	परिष्कारा[8]

1. Ms. अन्यादकं Cf. Pāli अञ्ञातकं।
2- Sans. वृषिका; see Mvyut. 272 59.
3. Mvyut. 272-16: कुण्डिका।
4. Tib. 199a. 1 4: gshan·gyi-lhuṅ-bzed·daṅ. chos-gos-daṅ. khar-ba-daṅ. gtur-bu-daṅ. ril-ba-spyi-blugs-dan. ḥbru-mar-snod-daṅ. shwa-daṅ. lham-sgro-gu-can-can-daṅ. mchil-lham-dag.
5. Ms. अतएव भवन्तु; Cf. Mva, 11.32.
6. Ms. हिरूक
7. Ms. कुर्वन्ति। GM,107
8. Cf. Mahāvagga. पृ० 132-137 (NNM)भेदपुरेक्खरा। In sanskrit it should have been भेदपुरष्कृता; strangely enough the Tibetans rendered the word by "dbyen-gi-yo-byad. meaning" भेदपरिष्कारा whereas it should have been "mdun du bdar-bo." It is an instance of careless Sans-

Page	Line	Word
127	20	भेदसामन्तका[1]
128	3	विसिकां[2]
128	6	कल्पपरिष्कारा[3]
128	21	विसिकां[4]
128	23	ते[5]
130	16,25	लभन्ते[6]
131	3	अन्यत्रैव[7]
131	13	अन्तरोद्यानम्[8]
131	22	आधिकरणिका:[9]

---

kritisation of Prakit words. Another instance is अन्यादकं for अञ्ञातकं = अज्ञातकं (see above p.127 Line 13 अज्ञातकं), the Tibetan rendering being "gshan-gi".

1. Cf. Mvyut. 678: ñer-bsdogs. = सामन्तका: । GM,108
2. Sans. वृषिकां ।
3. Tib. 200a, 1.5: rtog-pas-don du-g'ier-ba-rtog-pa hi-yo-byad-can. The word परिष्कारा should be पुरष्कृता । GM,109
4. Sans. वृषिकां ।
5. Ms. ते तानध्याशयनं वा पति ते तानध्याशयनं मार्गित्वा । GM,110
6. Ms. लभन्ति throughout. GM,113
7. Ms. अह एव
8. Tib. 220a, 1.5. GM,104
9. Tib. adds स्थापयित्वा आपदासु सर्वसंघेन वा ।

page	Line	Word
131	26	सर्वसंघेन[1]
132	1	स्पर्शो[2]
132	9	वा ।....[3]]
133	1	....आराम°[4]
133	8	भवत्याभाष्टाः[5]
133	10	इष्टकारोहा[6]
133	14	यथागृहीतकं[7]

---

1. Mva—

अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया । न भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा अभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया । न, भिक्खवे तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा अभिक्खुको .... यत्थस्सु भिक्खू नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया ।

Mva पृ०140पं०9-30; पृ०141पं०1-11 (NNM)

2. Tib. 220b, 1.6: lus-sam-sems-reg-par-ḥgyur-ba.

GM,115

3. About four or five leaves containing the end of पोषधवस्तु and the begining of प्रवारणावस्तु are missing.

GM,116

4. The first two leaves of the प्रवारणावस्तु are missing.

5. Tib. 230a, 1.3: kha-ṅan-smras-sam.

6. Ibid. so-phog-skyed-pa-daṅ.

7. Ms. ग्रहीतिकां GM,119

Page	Line	Word
133	22	'प्रसिक्तं[1]
133	23	प्रविक्षिप्तम्[2]
133	23	मेढ्यां[3]
134	9	प्रविक्षिप्तम्[4]
134	10	मेढ्यां[5]
134	10	"विशन्ति[6]
134	15	पल्यङ्कानपि[7]
134	20	अग्निमुक्तः[8]
134	28	अनूपमध्ये[9]
135	12	त्वाहिरण्डन्ति[10]
135	12	बद्ध्वा[11]
135	17	उपालिन्[12]

1. Ms. प्रक्षितं; Tib.spags.
2. Ms. प्रविशक्तं; Tib. bshag-pa.
3. Tib. 230b, 1.3: khyams-daṅ. GM,120
4. Tib. 231b, 1.2: gnas-mal-bshag-pas.
5. Ibid. khyams sam.
6. Ibid, ḥbab-par-byed.
7. Tib. 231b, 1.5: ñal-khri-dag-kyaṅ. GM,121
8. Tib. 231b, 1.7: me-śor-bas.
9. Tib. 232b, 1.7: gśoṅ-śig. GM,122
10. Tib. 232b, 1.7: bros-so. gos-rnmas-tum-po-byas.
11. Ibid.gtur-bu-dag-chos.
12. Ms. उपाल्यं throughout. GM,123

page	Line	Word
131	26	सर्वसंघेन[1]
132	1	स्पर्शो[2]
132	9	वा ।....[3]]
133	1	....आराम°[4]
133	8	भवत्याभाष्टाः[5]
133	10	इष्टकारोहा[6]
133	14	यथागृहीतकं[7]

1. Mva—

अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया । न भिक्खवे, तदहुपोसथे सभिक्खु-का आवासा अभिक्खुको अनावासो गन्तब्बो, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया । न, भिक्खवे तदहुपोसथे सभिक्खुका आवासा अभि-क्खुको .... यत्थस्सु भिक्खु नानासंवासका, अञ्ञत्र सङ्घेन अञ्ञत्र अन्तराया ।

Mva पृ०140पं०9-30; पृ०141पं०1-11 (NNM)

2. Tib. 220b, 1.6: lus-sam-sems-reg-par-ḥgyur-ba.

GM,115

3. About four or five leaves containing the end of पोषधवस्तु and the begining of प्रवारणावस्तु are missing.

GM,116

4. The first two leaves of the प्रवारणावस्तु are missing.

5. Tib. 230a, 1.3: kha-ṅan-smras-sam.

6. Ibid. so-phog-skyed-pa-daṅ.

7. Ms. ग्रहीतिकां GM,119

Page	Line	Word
133	22	'प्रसिक्तं[1]
133	23	प्रविक्षिप्तम्[2]
133	23	मेढ्यां[3]
134	9	प्रविक्षिप्तम्[4]
134	10	मेढ्यां[5]
134	10	'विशन्ति[6]
134	15	पल्यङ्कानपि[7]
134	20	अग्निमुक्तः[8]
134	28	अनूपमध्ये[9]
135	12	त्वाहिण्डन्ति[10]
135	12	बद्ध्वा[11]
135	17	उपालिन्[12]

1. Ms. प्रक्षितं; Tib.spags.
2. Ms. प्रविशक्तं; Tib. bshag-pa.
3. Tib. 230b, 1.3: khyams-daṅ. GM,120
4. Tib. 231b, 1.2: gnas-mal-bshag-pas.
5. Ibid. khyams sam.
6. Ibid, ḥbab-par-byed.
7. Tib. 231b, 1.5: ñal-khri-dag-kyaṅ. GM,121
8. Tib. 231b, 1.7: me-śor-bas.
9. Tib. 232b, 1.7: gśoṅ-śig. GM,122
10. Tib. 232b, 1.7: bros-so. gos-rnmas-tum-po-byas.
11. Ibid.gtur-bu-dag-chos.
12. Ms. उपाल्यं throughout. GM,123

Page	Line	Word
136	12	दुष्टुलां[1]
136	14	°संज्ञिनः[2]
136	21	°मामर्षयित्वा[3]
136	21	प्रमर्षयित्वा[4]
136	26	माज्ञापयित्वा[5]
137	18	पथ°[6]
137	18	°स्यानिषण्णस्य[7]
139	11	आपदर्थका[8]
139	12	°खिल्यकेन[9]
139	12	°णामोहयित्वा[10]
139	13	इत्येवं[11]
139	15	°मण्डलकं[12]

1. Ms. दुष्ठतां
2. Tib. 233b, 1.6: lhag-ma-med-par-ḥdu śes-la.
3. Tib. 234a, 1.2: bsga-shiṅ. = to rub
4. Ms. प्रमर्दयित्वा
5. Tib. 234a, 1.4: brda-sparad-ciṅ. GM,125
6. Tib. 234b, 1.6: lam-du-byas-pa.
7. Ibid. ñal-baḥi-ḥam. = शयानस्य वा GM,127
8. Tib. 236b, 1.1: gnod-paḥi·ched-kyi.
9. Ibid. bśes-bahi-tshig-gis. GM,129
10. Ibid. mgu-shiṅ. = आराधयित्वा
11. Ms. इतीवं in many places for इत्येवं ।
12. Tib. 236b, 1.4: de-dag-dkyil ḥkhor gyi-naṅ-du-doṅ la.

Page	Line	Word
139	15	गत्वा[1]
139	20	प्रवारणां[2]
139	26	प्रवारणायां....[3]
140	1	...... ततः[4]
140	8	आसनादुत्थाय[5]
140	18	°यितव्या[6]
140	22	वस्तु[7]
140	25	वारिको[8]
140	26	अण्डानि[9]
141	2	शातयितव्यानि[10]

1. Ms. कृत्वा
2. Ms. प्रवारणां स्थापनं स्थापयति ।
3. Tib. 237a, 1. 2: the leaf containing the closing portion of the प्रवारणावस्तु and the beginning of वर्षावस्तु is lost. GM, 130.
4. Tib. 239a, 1. 1.
5. Tib. 239a. 1. 4: stan-gyi-steṅ-nas-spags-te . GM, 133
6. Ms. दुष्कृतामपदमापयितव्यः, Tib. 239b, 1. 2: ḥdul- ba-daṅ-ḥgal-baḥi -ñes-byas-kyi-ltuṅ-ba-bśags-par-byaḥo .
7. Ms. वस्त्र', Tib. gnas-cig.
8. Tib. 239b, 1. 6: skod-paḥi-dge-sloṅ-dag.
9. Tib. 239b, 1. 5: sgo-ṅa-dag,
10. Tib. 239b, 1. 7: bskrad-par-byaḥo | GM, 134

Page	Line	Word
141	6	निष्ठितानि[1]
141	12	आक्षेप्तव्यम्[2]
143	15	°कूलयज्ञः[3]
145	22	गृह्यादाप्ता[4]
145	28	प्रक्रमेत्[5]
151	19	°वर्षोच्छेदे[6]
152	22	वत्स्ये[7]

---

1. Tib. 240a, 1. 5: de-dag-gnas-ḥchaḥ-ba rnams-la ।
2. Tib. 240a, 1. 5: sba-bar-byḥo. GM, 135
3. Tib. 242a, 1. 6: mthun-paḥi-mchod-sbyin. GM, 139
4. Tib. khyim-so-bzuṅ-ba.
5. Tib. 244b, 1. 6: GM, 143
6. Cf. Mva—

   एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं । अनापत्ति वस्सच्छेदस्स ।
   इध पन, भिक्खवे वस्सूपगता भिक्खू सरीसपेहि उब्बाळ्हा होन्ति ।
   पि डंसन्ति परिपातेन्ति पि । एसेव अन्तरायो ति पक्कमितब्बं ।
   अनापत्ति वस्सच्छेदस्स ।
   इध पन, भिक्खवे, वस्सूपगता..............अनापत्ति वस्सच्छेदस्सा ति ।

   Mva पृ० 155. पं० 11-25; पृ० 156-158. पं 1-26 (NNM)
   GM, 152

7. Ms. वत्से । GM, 154

Page	Line	Word
154	4	°दस्यारामे[1]
154	5	°ग्रामके[2]
154	8	दुहिता[3]
154	9	°ग्राहिकां[4]
154	14	°पस्थितो[5]
154	15	स[6]
154	16	रितैषी[7]
154	16	°न्तमुर्खो[8]
154	17	°वगति[9]
154	17,18	देवनिका°[10]

---

1. This story appears in Cowell's edition of the Divyāvadāna, p. 1-24. In the footnotes D. indicates the reading in Cowell's edition.
2. D. ग्रामे
3. D. drops this line.
4. D. परिग्राहिकां
5. D. °स्थिता
6. Ms. सर्वैंव GM,159
7. D. श्चहितैषी
8. D. मार्गान्तोन्मुखो न निर्वाणे
9. D. सर्वभवगतिव्युपपत्तिपराङ्मुखोऽन्तिमदेहधारी ।
   Cf. Tib.252a.1.6:
10. सत्त्वनिकाया

Page	Line	Word
154	23	दिष्ट्यार्य°[1]
154	24	यथा[2]
154	26	°न्नावजातः[3]
155	1	°स्थितिकः स्यात्[4]
155	1	चाप्यतीत°[5]
155	2	कृत्वा[6]
155	7	भूमिम्[7]
155	7	चास्या[8]
155	9	°कारशिराः[9]
155	12	रत्नानां[10]
155	12	धर्मता[11]

1. Ms. दिष्टा आर्यपुत्र चरस्वापन्न
2. Ms. यदा च
3. Tib. 252b, 1. 3; bdag·daṅ·mthun·par·skye·shiṅ·mi-mthun-par·mi-skye-ba·daṅ.
4. D. स्थितिको भविष्यति ।
5. D. चात्यतीत Ms. चाभ्यतीत°
6. D. कृत्वा दक्षिणां आदेशयिष्यति GM,160
7. D. अवतरन्ती उपरिमा भूमि
8. D. न चास्या अमनोज्ञ°
9. Ms. शिरः
10. Ms. नासः सरत्नप्रत्युप्तिकया कर्णे आमुक्तिकया बल°
11. D. धर्मता यस्य न

Page	Line	Word
155	13	क्रियते[1]
155	13	रत्नानां[2]
155	14	समागमय[3]
155	16	ऊचुः[4]
155	17	नक्षत्रेषु[5]
155	19	अपरस्य[6]
155	23	वर्ध्यते[7]
155	24	परी]क्षायां[8]
155	26	वार्षिकम्[9]
156	4	गच्छेयुः[10]
156	5	गच्छामि[11]

1. Ms. भवति
2. D. अस्य रत्नस्य
3. for संगम्य समागम्य GM,161
4. D. omits ज्ञातयः ऊचुः ।
5. Ms. श्रवणेन च नक्षत्रेण
6. Ms. अपरस्यापि
7. Ms. वर्धते
8. Ms. adds स्त्रीपरीक्षायां पुरुषपरीक्षायां दारुपरीक्षायाम्
9. Ms. omits from त्रीणि वासगृहाणि ···वार्षिकम् । GM,162
10. Ms. पर्याधानं गच्छेयुः । स कथयति । तात यद्येवमहं पण्यमारोचया ।
11. D. महासमुद्रमवतरामि । Tib. 253b, 1 7: zoṅ-thogs-la-yul-gyi-mthar-mchiḥo.

Page	Line	Word
156	6	°भोक्ष्यसे[1]
156	8	अनुज्ञात:[2]
156	9	°वघोषणं[3]
156	9	युष्माकम्[4]
156	10	°तर्पण्येन[5]
156	14;15	°हूयोक्तः[6]
156	15	बलवांश्च[7]
156	17	भवेत्][8]
156	17	अभिहितौ[9]
156	20	अम्ब[10]
156	21	रोदिषि[11]

1. Ms. परिभुंजीयात्
2. Ms. तात गच्छामि पण्यमादाय देशान्तरम्। तेन निर्वन्धं ज्ञात्वा अनुज्ञात:।
3. D. कृतम् कारितं
4. Ms. puts भवन्तः
5. Ms. °वाहेनाशुल्केनातरपन्येन GM,163
6. Ms. तेन स आहूतः ।
7. Ms. बलवन्तः
8. Ms. न मध्ये। मध्ये सार्थस्य वस्तव्यं हते सार्थवाहे
9. D. उक्तौ
10. Ms. उपसंक्रान्तः। अम्व गच्छाम्यहं अभिवादये। सा रुदितुं
11. Ms रोदिषि। पुत्रक नाहं त्वं पश्येयं। स संलक्षयति।

Page	Line	Word
156	22	इति[1]
156	29	महासमुद्र°[2]
157	3	°लस्थानाम्[3]
157	5	तुलयितु°[4]
157	7	सुप्तः[5]
157	9	लर्दयन्तं[6]
157	13	क्व[7]
157	18	निवर्तिष्यामः[8]
157	20	भवतीति[9]
157	26	तावभिसारं[10]
157	27	कथयति[11]

---

1. Ms. रोदिषि । पुत्रक नाहं त्वं पश्येयं । स संलक्षयति । GM,164
2. Ms. समुद्रतीरस°
3. Ms. °तण्डुलकोलर्थानीनाम्
4. Ms. गणयितु°
5. Ms. शयितस्तेन दासक°
6. Tib. 255a, 1.2: khal-ḥgel-ba = to put the load GM,165
7. Ms. कुत्र
8. Ms. निवर्तयिष्यामः
9. Tib. 255a, 1.7: rjas-rnams-ma-brubs-kyi-bar-du = till the goods are laid aside GM,166
10. Tib. 255b, 1.3: rṅan pa. = reward
11. D. adds ग्रस्व दिष्ट्या वर्धस्व

Page	Line	Word
157	29	°मुद्यानेषु[1]
157	29	°व्यजनानि[2]
158	1	लिखितानि[3]
158	1	°गमनाय[4]
158	3	कालसमये[5]
158	6	प्रतोदयष्ट्या[5]
158	8	व्यसनमापत्स्ये[6]
158	9	उच्चं[7]

1. D. स्वकसभादेव°
2. D. adds कलशान्युपानहानि
3. D. adds दत्तानि स्थापितानि
4. D. adds क्षिप्रमागमनाय
5. D. श्रोण कोटीकर्णः सार्थवाहोऽपि सूर्यांशुभिः स्पृष्ट आतापितः प्रतिविबुद्धो यावत् सार्थं न पश्यति। नान्यत्र गर्दभयानमेव। स तं गर्दभयानमभिरूह्य संप्रस्थितः। रात्रौ च वातेन प्रवायता वालुकया मार्गः व्यपोढ़ पिथितः। ते च गर्दभाः स्मृतिमन्तो गन्धमाघ्रायाघ्राय शनैर्मन्दमन्दं संप्रस्थिताः। सार्थवाहः संलक्षयति। कस्मादेते शनैर्मन्दमन्दं गच्छन्तीति कृत्वा प्रतोदयष्ट्या ताड़िताः। ते संभ्रान्ताः आकुलीभूताः स्मृतिभ्रष्टा उन्मार्गेण संप्रस्थिता यावदन्यतमा शालाटवीं प्रविष्टा।
GM, 167
6. D. adds कोऽसौ निर्घृणहृदयस्त्यक्तपरलोकश्च य एषां प्रतोतयष्टिं काये निपातयिष्यति। तेन ते उत्सृष्टाः। अग्राग्रेण अच्छिन्नाग्राणि तृणानि भक्षयत अनवमर्दितानि पानीयानि पिवत अनाविलानि चतुर्दिशं च शीतला वायवो वान्त्विति।
7. Ms. उर्ध्वं

Page	Line	Word
158	11	°व्यग्रहस्त:[1]
158	12	°मवस्थित:[2]
158	13	°मवस्थित:[3]
158	14	निश्चारित:[4]
158	14	पञ्चमात्रै:[5]
158	15	°न्निभोदरै:[6]
158	15	°वारित:[7]
158	17, 18	°यच्छामीति[8]
158	18	सार्थवाह्[9]
158	19	पानीयमिति[10]
158	22	°द्दधास्ये[11]

---

1. Ms. तत्र कालो चण्डो लोहिताक्षः उद्वन्धपिण्डकायष्टि विग्रहो पुरुषो द्वारे तिष्ठति ।
2. D. व्यवस्थितः ।
3. D. व्यवस्थितः ।
4. Ms. शब्दोकृतः ।
5. Ms. अनेकैः प्रेत
6. D. पर्वतोदरसन्निभैः
7. Ms. परिवृतः
8. Ms. दास्यामि
9. Ms. श्रोणः GM,168
10. Ms. omits तत् सकाशान् पानीयं
11. Ms. कथं न श्रद्धास्ये

Page	Line	Word
158	25	°शाख्यरत्वम्[1]
158	26	निर्गच्छन्[2]
158	26	तेनोक्तः[3]
159	2	निर्गतः[4]
159	4	°बद्धपिण्डो[5]
159	11	ददामीति[6]
159	16	यौवन°[7]
159	17	प्रेतलोक°[8]
159	23	°प्सरसः[9]
160	2	°वस्थितः[10]
160	10	आसीत्[11]

1. Ms. पुण्यकर्मा त्वं
2. Ms. नगरं प्रविश्य जीवन् गच्छति ।
3. Ms. स कथयति ।
4. Ms. नगरं प्रविश्य जीवन् गच्छति ।
5. Ms. उद्वन्द्वपिण्डिकायष्टिव्यग्रहस्तः । GM,169
6. Ms. दास्यामीति
7. D. ये धनभोग°; Tib. 255b,1.7: laṅ-tsho.
8. D. & Ms. पितृ; Tib. 256b, 1.7: a-dgas. GM,170
9. Ms. चत्वारोप्सरस°
10. D. एकान्ते व्यवस्थितः । GM, 171
11. For आसम्

Page	Line	Word
160	13	नाहं[1]
160	15	पृच्छति[2]
160	19	°तास्तस्य[3]
160	20	भाषते[4]
160	23	°ग्रामकम्[5]
160	24	वक्तव्यः[6]
160	27	°नाघस्तात्[7]
161	2	पर्यादानं[8]
161	8	ताभ्यां[9]
161	9,11	कालसमयः[10]
161	13	यावत्[11]

1. Ms. सोऽहं
2. Ms. मां पृष्टुमारब्धः
3. Ms. यत्तु दिका उरभ्रान् प्रघातित वान् तस्य
4. Ms. गाथा च प्रत्यनुभाषत ।
5. Ms. °ग्रामकम् । तत्र पुत्र मे ग्रौरभ्रकः । स वक्तव्यः ।
6. Ms. °ग्रामकम् । तत्र पुत्र मे ग्रौरभ्रकः । स वक्तव्यः । GM,172
7. D. असिसूनाधस्तात्, Ms. पित्रोस्य सूनायामधस्तात्, Tib. 258b, 1.3: ral-gris-bsad-paḥi-sḥi-ḥog-na. असिवध्यस्थानाधस्तात् ।
8. Ms. पर्याधानं
9. D. तेन
10. Ms. सूर्यस्यावतरणकालसमयः GM,173
11. D. भक्षयन्ति स्थिता यावत्

Page	Line	Word
161	16	पृच्छति[1]
161	17,18	॰द्दधास्ते[2]
161	18	अहं[3]
161	18	आसीत्[4]
161	19	विरम॰[5]
161	20	वचनेनाहं[6]
161	22	तथाप्यहं[7]
161	22	पृच्छति[8]
161	23	अभिहितः[9]
161	27	कृतं[10]
162	6	नाभिश्रद्दधास्यति[11]

1. Ms. स तस्य सकाशमुपसंक्रान्तः ।
2. Ms. ॰श्रद्धास्ये
3. D. यद्येवमहं
4. For आसम्
5. Ms. omits त्वम्
6. D. वचनादहं
7. D. तथैवाहं
8. Ms. स मां पृष्टुमारब्धः ।
9. Ms. मयोक्तः GM,174
10. Ms. कृतवान्
11. D. एतन्मे कः श्रद्दधास्यति

Page	Line	Word
162	6	न[1]
162	14	आर्ये[2]
162	15	भोजितः[3]
162	16	स्वकृतं[4]
162	17	क्षिप्र°[5]
162	18	°मयोगुडं[6]
162	19	पश्यति[7]
162	20	निर्गतम्[8]
162	25	°रात्रौ[9]
162	28	प्रतिपादितः[10]

---

1. D. यन्न GM,175
2. Ms. आम
3. D. तयासावुद्वर्तितः स्नापित आहारो दत्तः ।
4. Ms. कर्मश्चकतां Tib. 259b, 1.4: las-bdag-gir-bya-ba.
5. Ms. क्षिप्र°; Tib. 259b, 1.4: phub-mar-gyur-ṅo. = A small particle (given by him) turned into a chaff.
6. Tib. 259b, 1.5: yaṅ-gcig la-kham-gcig-byin-ma-daṅ-lhags-kyi-thu-lum-za-bar-gyur-to.
7. D. omits पश्यति
8. Ms. सा पश्यति गन्धेन निर्गतः । GM,176
9. D. °रात्र्याम्
10. Ms. प्रत्युपादितः

page	Line	Word
163	1	°नुमोदस्व[1]
163	3	श्रमणका°[2]
163	4	सोऽमर्ष[3]
163	4	बुसप्लावीं[4]
163	5	पुत्र°[5]
163	6	प्रामोद्य°[6]
163	6	°मोदस्व[7]
163	15	°नामयसि[8]
163	16	°यामीति[9]
163	17	°रात्र्यां[10]
163	25	गृह्णामि[11]

1. Ms. °नुमोदय
2. Ms. श्रमणाग्र°
3. Ms. सोऽप्यम°
4. Ms. प्लाविं
5. D. पुत्रमप्यनु°
6. Ms. प्रामोदि°
7. Ms. °नुमोद GM,177
8. Ms. °नुप्रयच्छसि
9. D. किं स्वमांसं न भक्षयति या त्वदीयानि प्रहेणकानि भक्षयतीति ।
10. Ms. °रात्रौ GM,178
11. D. गृह्णीयां

Page	Line	Word
163	25	°भुञ्जानान्[1]
163	25	पश्यामीति[2]
163	27	कृत्वा[3]
163	27	°महर्द्धिका[4]
164	9	अधिरूढ़ः[5]
164	21	तां[6]
164	21	परिपूरय[7]
164	26	°श्रद्दधाति[8]
164	27	असिस्था°[9]
165	4	श्रद्दधीतम्[10]
165	5	स[11]

1. Ms. प्रत्युनुभवमानान्
2. Ms. पश्येयमिति
3. D. °नवशात्
4. Ms मरिका
5. D. उषितः. GM,179
6. Ms. तत्
7. Ms. स्मर पूरय GM,180
8. Ms. °धास्यति
9. See above p.160 line. 25-28
10. Ms. श्रद्धातम् ।
11. Ms. तस्य

Page	Line	Word
165	9	कथयति[1]
165	16	गणिकायाः[2]
166	1	ष्पितम्[3]
166	1	तस्य[4]
166	2	बद्धाः[5]
166	3	संजानीते[6]
166	5	°प्रासयति[7]
166	6	°स्वरोऽसौ[8]
166	7	तौ[9]
166	14	प्रतिष्ठापितौ[10]

---

1. D. चाह GM,181
2. D. तस्या वेश्यायाः
3. Tib. 262b, 1.7: ḥrdzum-phyuḥ-ba. = स्मितम्
4. D. omits तस्य
5. D. inserts महात्मा तस्य शब्देन सर्वं गृहमापूरितम्। स GM,182
6. D. भगिनीजनः संजानते
7. Tib. 263a, 1.1: sbron-pa. = announce.
8. The Tib. version may be retranslated thus: अभ्यागत इति। ते न श्रद्दधन्ति। यावदसौ
9. Ms. ते
10. Ms. adds here अभिधर्ममधीतम्। अनागामिफलं साक्षात्कृतम्। तस्य कालान्तरेण मातापितरौ कालगतौ। स तं GM,183

Page	Line	Word
166	21	°परान्तकेषु[1]
166	24	°मनसिकारान्[2]
166	26	°पृच्छन्ति[3]
167	4	°मधीतम्[4]
167	7	संवृत्तः[5]
167	10	°सिष्यामहे[6]
167	10	कुरुध्वम्[7]
167	15	°नुभावेन[8]
167	18	°पुष्पम्[9]
167	18	°बाधतां[10]

1. Ms. अस्मापरान्तकेष्वल्पभिक्षुकं
2. Ms. संनिपतन्ति तेषां मनसिकारः
3. D. adds सूत्रस्य विनयस्य मातृकायाः । GM,184
4. D. तृतीयपिटकधीतम् ।
5. Cf. MSV. Vol. 1.p.238 (MRI); D. pp. 97,282.
6. D. adds स चाह ।
7. D. adds द्रष्टव्या एव ।
8. Ms. omits अनुभावेन GM,185
9. Ms. उदुम्बरे पुष्पम् ।
10. The usual full expression is अल्पाबाधतामल्पातंकतां यात्रां लघूत्थानतां वलं च सुखस्पर्शविहारतां च ।

Page	Line	Word
167	20	अश्मा°[1]
167	21	°काधाना[2]
167	22	अजचर्म[3]
167	23	°मास्तरण[4]
167	24	मन्दुरक:[5]

1. Tib. 264b, 1.2: rdo·can·shes-bgyi·baḥi yul·gye-mthaḥ-na. = अश्मापरान्तकेषु । D. reads throughout अस्मात् परान्तकेषु ।

2. Ms, खरा भदन्त भूमि कण्टकाधाना:;
Cf. Mva—अवन्तिदक्खिणापथे, भन्ते, कण्हुत्तरा भूमि खरा गोकण्टकहता; अप्पेव नाम भगवा अवन्तिदक्खिणापथे गणङ्गुपाहनं अनुजानेय्य । अवन्तिदक्खिणापथे, भन्ते,...............भूमि खरा गोकण्टकहता । Mva पृ॰214. पं॰20-22;पृ॰216.पं॰1-24 (NNM)

3. Ms. & D. अविचर्म; Tib. 264b, 1.3: lug gi- pgas-pa-daṅ. = एडकचर्म, मेषचर्म ।
Cf. Mva—अवन्तिदक्खिणापथे चम्मानि अत्थरणानि, एडकचम्मं अजचम्मं मिगचम्मं, अप्पेव नाम........ एडकचम्मं अजचम्मं मिगचम्मं ।

4. Ms. omits आस्तरणं Mva पृ॰214. पं॰23-28; पृ॰216 पं॰1-31 (NNM)

5. Tib. 264b, 1.4-5: bal-stan-daṅ. siṅ-sun-gyi-stan-daṅ. sren-bal-gyi-stan-daṅ. ras-bal-gyi-dag-mchis-pa. = Sans. कोचव-वल्कल-क्च-कार्पासिक;
Cf. Mva—सेय्यथापि, भन्ते, मज्झिमेसु जनपदेसु एरगु मोरगु मज्जारु जन्तु, एवमेव खो, भन्ते,........मज्झिमेसु जनपदेसु एरगु मोरगु मज्जारु जन्तु, Mva पृ॰214. पं॰24 28;पृ॰216. पं॰1-28 (NNM)GM,186

Page	Line	Word
167	25	उदकशुद्धिका[1]
167	25	स्नानसमुदा[2]
167	26	°श्च्युतानि[3]
167	26	नैसर्गिकाणि[4]
168	3	प्रतिशामय्य[5]
168	9	यावत्[6]
168	12	आर्यस्य[7]
168	13	°नामितवान्[8]
168	15	स्वरगुप्ति[9]

1. D. उदकस्तब्धिका
2. D. स्नातोपविचाराः। Cf. Mva—अवन्तिदक्खिणापथे भन्ते नहानगरुका मनुस्सा उदकसुद्धिका। अप्पेव नाम भगवा अवन्तिदक्खिणापथे धुवनहानमनुजानेय्य। MVa पृ०214. पं०22-23 (NNM)
3. च्युतानि is used in the sense of प्रेषितानि।
4. Cf. Mva—एतरहि भन्ते मनुस्सा निस्सीमगतानं भिक्खूनं चीवरं देन्ति। इमं चीवरं इत्थन्नामस्स देमा ति। ते आगन्त्वा आरोचेन्ति। इत्थन्नामेहि ते आवुसो मनुस्सेहि चीवरं दिन्नं ति। ते कुक्कुच्चायन्ता न सादियन्ति। मा नो निस्सग्गियं अहोसी ति।
   Mva पृ०214. पं०27; पृ०215. पं०1-2 (NNM)
5. Ms. प्रतिशम्य
6. D. adds पश्यति GM,187
7. D. आर्येण
8. D. °भावेनाधिवासितवान्। Tib. 265a, 1.7: ḥphags-paḥi-mi smra-bas-deḥi-mtshan-mo-ḥdas-par-mdzad-do.
9. D. omits स्वर; Tib. 265b, 1.2: dbyaṅs kyi-ṅa-ros-ched-du-prjod-pa-daṅ.

Page	Line	Word
168	16	सत्यदृष्टः[1]
168	16	स्थविरगाथा[2]
168	16	स्थविरीगाथार्थ[3]
168	16	°वर्गीयाणि[4]
168	21	°धयितुमिति[5]
168	24	°तव्यानि[6]
169	3	°रोचयति[7]
169	5	त्रिपुटे[8]
169	6	धारयितव्ये[9]
169	10	पुण्ड्रवर्धनं[10]

1. Ms. सत्यदृशः
2. D. omits it.
3. D. omits it.
4. Tib. 265b, l.3: don-gyi-tshogs-kyi-mdo.
   Cf. Mva—पटिस्सुत्वा सब्बानेव अट्ठकवग्गिकानि सेरन अभासि।
   Mva पृ०215.पं०15-16 (NNM)
5. D. °रोचयितुमिति GM,188
6. I. e. to be uttered in detail as before.
7. D. विस्तरणोच्चारयितव्यानि
8. D. न द्विपुटां न त्रिपुटां।
9. Ms. सचेत् क्षियधर्मिण्यो भवत। अर्घटकं वारयितव्ये चर्मा धारयितव्याम्। D. तां त्यक्त्वा पुनर्नवा ग्रहीतव्या। Tib.266a, 1.5: lhan pas btab-ste bcañ-bar-bayḥo. अग्गलं in MVa पृ०306. पं०10-14 (NNM) means a strip of cloth for pat-ching up a hole in a cīvara; see Infra. GM,189

10 Tib. 266a, 1 7: li kha-ra śin lḥphel.

Page	Line	Word
169	10	पुण्ड्रकक्षो[1]
169	11	शरावती[2]
169	12	°पस्थूणको[3]
169	13	°रगिरिः[4]
169	17	°प्रत्युप्निकया[5]
169	18	साक्ष ात्कृतम्[6]
169	24	खण्डस्फुट°[7]
169	24	तस्मिन्[8]
169	25	नाम्ना[9]
169	26	राजा[10]

---

1. D. पुण्ड्रकक्षो नाम पर्वतः। Tib. 266b, 1.1: li-kha-ra-tshaṅ-chiṅ.
2. D. सरावती। Ms. प्रत्यन्त नगरावती नाम नगरी तस्या परेण शरावती। Tib. Ibid. ḥdam-bu-can.
3. Ms. स्थोणोपस्थोणो ब्राह्मणग्रामो। Tib. 266b, 12: ka-ba-daṅ ñe-baḥi-ka-ba-dag.
4. D. उसीर
5. Ms. जातरनुप्रत्युप्निकया; See p. 155
6. D. omits this para excepting the second line.

GM,190

7. Ms. खण्डरिट्टप्रतिसंस्करनीये पूर्वेण नगर।
8. Ms. तस्मै
9. Ms. स्वजातो नाम्ना राज्ये
10. D. सोऽमात्यानामन्त्रयते।

Page	Line	Word
170	1	°संस्करणाय[1]
170	3	ब्रह्मकृतम्[2]
170	7	प्रादुर्भूतैः[3]
170	10	संस्करणाय[4]
170	10	कथयतः[5]
170	11	°ऽस्मिन्[6]
170	12	नाम्ना[7]
170	14	सावतार्य[8]
170	15	कुरुतमिति[9]
170	16	खण्डस्फुट°[10]
170	17	°सर्पितम्[11]

1. Ms. खण्डछुटप्रतिसंस्करणीये
2. D. यन्मम पित्रा कृतं देवकृतं न तु ब्रह्मकृतं तत्। Ms. तदेव कृतं ब्रह्मकृतम्। GM, 191
3. D. चटितः स्फुटितकः प्रादुर्भूतः।
4. Ms. छुट्टप्रतिसंस्कारि°
5. Ms. कथयतां
6. Ms. करप्रत्ययां
7. Ms. स्वजातो; D. नाम
8. D. सा रत्नकर्णिका°
9. Ms. चटितस्फुटितकाणि कुर्वषेति
10. Ms. खण्डफुट; D. drops it.
11. Tib. 267b, 1.3: kha·cig·ni·lhag·go. = उद्वृत्तम्, अवशिष्टम्।

Page	Line	Word
170	18	°कदर्शनः[1]
170	19	°कृतम्[2]
170	20	°सर्पितं[3]
170	21	पूजां[4]
170	27	°संबुद्धेन[5]
170	28	विरागित[6]
171	4	दृष्टाः[7]
171	6	°मंचकः[8]
171	7	स्पृहयामि[9]
171	11	°मष्टपुटी°[10]

1. Tib. 267b, 1.4: des mchod-sten de-lta-bas-mi-ñoms pa-shig-ta-mthoñ-ño. Ms. °दर्शिनः GM,192
2. Tib. 267b, 1.4: skyin-po = borrowed
3. Ms. °सर्पितक
4. Ms. महान्तं पूजासत्कारं
5. D. adds सार्धं
6. Ms. आराग्यतो न विराग्यत इति ।
7. Here ends the story of the Divy (p. 14 MRI Ed.) GM,193
8. Ms. मंतृ; Tib. 268a, 1.6: de-gral rims-kyis-khri-ldeg-pa-shig.
9. Ibid chags-sam.
10. Ms. अष्टपुटायां; mal stan rim-pa-brkyad la-ñal-ba-bshin.

Page	Line	Word
171	12	कल्पते[1]
171	13	सुष्ठु कल्पते[2]
171	14	गृहीतो[3]
171	15	नामयित्वा°[4]
171	17	कुत्र[5]
171	23	मोह°[6]
171	24	प्रतिगोपको[7]
172	7	रिद्धिष्यति[8]
172	7	°तितव्यम्[9]
172	8	निषेत्तव्यम्[10]

1. Tib. 268b, l. 2: de-shag-gi-dgas nas-kho-bo-bla-ḥog-kyaṅ-mi-sgyur-bar-ñal-lo.
2. Ibid. śin-tu-brtags-paḥo.
3. Ms. गृहीत्वा भवन्तु ।
4. Tib. 268b, l.3: skyol-la-byin-cig. GM,194
5. Ms. तत्र
6. Ms. माह
7. Tib. 269a, l.1: sbad-pa. GM,195
8. For ऋद्धिष्यति
9. Ms. नात्रनिषेत्तव्यम्
10. Cf. Mva—

अनुजानामि, भिक्खवे, गिहिविकतं अभिनिसीदितुं, न त्वेव अभिनिपज्जितुं ति । Mva पृ०212. पं० 28(NNM)

Page	Line	Word
172	10	°स्तरिका[1]
172	10	पिण्डपातिक[2]
172	11	°भिवन्दको[3]
172	21	गृहीत्वा[4]
172	22	समनुससार[5]
173	3	[ति]तव्यम्[6]
173	4	निपतति[7]

---

1. Ms. चर्मकद्यत्रिक
2. Ms. पिण्डपात्यक
3. Tib. 269b. 1.1: The text restored stands thus: अहं भगवतः पादाभिवन्दकः गच्छामि। स कथयति। भदन्तोपनन्द युक्तमेतत् न युक्तम्। अहमपि भगवतः पादाभिवन्दकोऽत्रागतः। पिण्डपातिकस्त्वमिति मन्ये। भदन्तोपनन्द एवंरूपचर्मग्रहणे त्वं समर्थो वासमर्थः। पश्य भदन्तोपनन्द येन त्वमसमर्थस्तेनाहं तव नानुप्रयच्छामि।

   GM,196
4. Ms. गृह्य
5. Ms. समनुवस्वास; Tib. 269b, 1.5: rjes-bshin-du-soṅ-pa-las. Cf. pali: अनुबद्धा।
6. Tib. 269b, 1.7: ḥdug-par-byaḥi-ñal-par-mi-byaḥo. Cf. Mva—अभिनिसीदितुं, न त्वेव अभिनिपज्जितुं ति। Mva पृ॰ 212. पं॰ 28 (NNM)

   GM,197
7. Ms. निपत्यसि।

Page	Line	Word
173	5	[सदा ग्लानकस्य][1]
173	8	ततु°[2]
173	9	लयित्वा[3]
173	10	उत्तरन्त्यपि[4]
173	11	आगता:[5]
173	13	विवाचयन्ति[6]
173	16	उद्यानप्रिया:[7]
173	18	°लोकयन्[8]
173	18	प्लवमाना[9]
173	19	प्लवते[10]

1. From the Tibetan version (270b-271a) it appears that some portions have been skipped over here.
2. Ms. तुरां
3. Ms. चोवरमुत्तारयित्वमुत्तारयित्वं; Tib. 271a, 1.5: thogs-te. = holding aloft.
4. Ms. स्रत्युत्तरत्तरि
5. Tib. 271a, 1.7: ji-tsm-na-phyugs-rdzi-bud-med-dag = female cattle-keepers.
6. Cf. Pali उज्झायन्ति खीयन्ति विपाचेन्ति । MG,198
7. Ms. पुर्वाटी उद्यानप्रियस्तेषाम् ।
8. Ms. मनुष्योपल्योद्वयं ।
9. Ms. प्यायमाना ।
10. Ms. प्याते । Tib.271b,1.3: ḥkhyer-ba.

Page	Line	Word
173	19	°स्यायते[1]
173	21	°मोक्तव्य।[2]
173	24	भक्तच्छेदो[3]
173	25	°परितस्तु[4]
173	27	°मन्तर्हितम्[5]
174	3-4	जानेयस्य[6]
174	4	भृषिणा[7]
174	5,9	कमलमात्राणि[8]

---

1. Tib. 271b,1.4: mthoṅ ste-chus khyer-ba-pha-bi-yin no. pha-bi-ded-ltar-śi-la-thun na-ñin-thog-thag-chu-la-lta-sh-iṅ-ḥkhod-dam.
2. Tib. 271b, 1 5- gshan-dag-na-re-thoṅ-śig-ces-zer-na. gal-te-mthu-yod-pa-yin-na-gtaṅ-bar-byḥo.
3. I.e. mid-day meal-time passes.
4. Ms. परित्स्य; i.e. to go towards herdsmen.
5. Tib. 271b, 1.7: baḥi-ho-ma-zad-zad du-phar-rkyal-tshur-rkyal-la. GM,199
6. Ms अश्वाजानेयास्या ।
7. Ms. हतिना; Tib. 272a, 1.3: rkyal-pas-rkyal-bar-byḥo. भस्त्रया तर्तव्यम् । In Dhaniya-sutta of the Suttanipāta, there is a word *bhisi* meaning a raft for crossing a pool or river. The Sanskrit form of this may be *bh ṣi* though no such word has so far been found in Buddhist-Sanskrit text.
8. Ms.°माष्ट्राणि Tib. 272a, 1.4: ri-mor-bris-śin-pad-ma ltar-by idor-byas-pa.

Page	Line	Word
174	7	भूषिणा[1]
174	9	°भूषयो[2]
174	10	भूषी[3]
174	10	तारणिकश्च[4]
174	24	वा[5]
174	25	°यितव्या[6]
174	28	च[7]
175	14	पश्चाच्चर्म[8]
175	15	°रसोऽपरं[9]
175	23	अर्गलकं[10]
175	28	°साधारणां[11]

1. Ms. धृतया।
2. Ms. धृतया।
3. Ms. हृती।
4. Ms. काषायामानविका च, Tib. 272a, 2.6; rtsis-bskus-pa-daṅ. rkyal-skyaḥ. GM,200
5. Ms. वर्चस्तुतिः
6. Ms. प्रदारयितव्या
7. बद्धिका = leather-strap, Tib. 272b, 1.7: de-bshin-bsegs-su-bciṅ-ba-daṅ. rca-mo-rtiṅ-ba-sbu-gu-can. GM,201
8. Ms. वचः; Tib. 273a. 1.8: pgas-pa-rdol.
9. Ms. शिरसौपरं; Tib. 272b, 1.7: deḥi-ḥchag-sḥi-mgo-gcig-na. GM,202
10. See Page 169. Line 1-7.
11. Ms. यश्चन्दासाधारणां Tib. 273b, 1.6: gaṅ-yaṅ-yul-tsun-pa-thun-mo-cam-yin-pa-daṅ. GM,203

Page	Line	Word
176	19	भवत्यर्गलकं[1]
176	25	रतकानां[2]
177	6	एतदभवत्[3]
177	8	°निर्मुक्तेन[4]
177	15	°लङ्काराय[5]
177	16	°युवत्या[6]
178	2,3	तिर्यग्बद्धा[7]
178	4	राजगृहे[8]
178	6	पुटापुटीं[9]
178	7	भवन्ति[10]

---

1. See Page 169. Line 1-6.
2. Tib. 274b, 1.5: śi-brnams-daṅ-gñis-kyi-phyir. GM,205
3. Ms. एतदवोचन्; Tib. 275a, 1.2: sñam-du.
4. Tib. 275a, 1.3: khyim-paḥi-dman-ma-yin-phan-chad-bcaṅ-bar-byaḥo.
5. Tib. 275a, 1.4-5: rtiṅ-pa-rkaṅ-paḥi-mthe-bos-mnan-nas-lhag pa nas phul te-khyod-kyis-sbyin-pa-ḥdi-phul-bas-sems-kyi-rgyan.
6. Tib. 275a, 1.7: rgan-mo-shig-gi-mag-pa-shig. GM,206
7. See Page 176. Line 28.
8. Ms. अपरे पुटी एत्र कर्तव्या; Tib. 276a, 1.6: bya-rgod-kyi-puṅ poḥi-ri-la-hdzeg-pa-na.GM,207
9. Tib. 276a, 1.7: rtshe-mo-sbu-pu-can-ma-bcaṅ-sam. or lham-yuḥṅ-thuṅ-ma-bcaṅs-sam.
10. The ms. stops here abruptly. In Tib. two more incidents are related here and ultimately Buddha allows the use of पुटापुटी ।

page	Line	Word
178	10	मुण्डपूला[1]
178	11	°ज्ञातमारा[2]
178	11	बद्धिका[3]
178	17	यदा[4]
178	18,19	वणिजो[5]
178	21	पादौ[6]
178	27	श्यायति[7]

---

1. Ms. लोलाम्बुजा पुण्डपोलाः; cf. Mvyut. 272-22: मुण्डपूला = a sort of slippers to which cotton leggings are attached.
2. Cf. Mvyut.234-23.
3. Tib. 276a, 1.4; mgul-chad-daṅ-ni-yuḥu-thuṅ-lham.
   kha-khrod-dag-tu-sgro-gu can.
   dom-gyi-pgas-pa-gnaṅ-ba-daṅ.
   smyuṅ-bu-ḥbreṅ-pu-chu-greḥo.
   GM,208
4. This para does not appear in Tibetan. Evidently it is an interpolation. The mention of नैवाल is interesting. It refers very likely to Nepal.
5. Ms. वणिजाः ।
6. Ms.तव पादौ जिह्वातलं यावत् विदावासं किमर्थं ।
7. Tib. 277a, 1.2: gaṅ-na-snod-du-chu-ḥkhyag-pa-yin-no.
   GM,209

Page	Line	Word
179	7	स्वस्ति[1]
179	9	°यिष्यतीति[2]
179	9	दृष्ट:[3]
179	14	बद्धिका[4]
180	1	अयं[5]
180	3,7	°निर्मिमीते[6]

1. Tib. 277a, 1.6: mig-la-phan-no. = good for the eyes.
2. Ibid, 1.7: raṅ-gi-slar-ldog-par-ḥgyur-ro sñam-nas. Ms. स्वबुद्धिर्वारयिष्यतीति ।
3. In Tibetan there are a few more lines, detailing the incident.
4. Tib. 277b, 1.5: smyuṅ-bu-daṅ. hbreṅ-bu-ḥi-bcaṅ-bar-byḥo. GM,210
5. This is the last portion of the *Saṃghabhedavastu*. The previous leaves are all lost. It commences from the middle of the *Srāmaṇya-phala-sutra*, corresponding to pali Sāmaññaphala-sutta of the Dīghanikāya p. 41-73 (NNM)

   अयं यो मे कायो रूपी चातुम्महाभूतिको मातापेत्तिकसम्भवो ओदन-कुम्मासुपचयो अनिच्चुच्छादन-परिमद्दन-भेदन-विद्धंसन-धम्मो। इदं च पन मे विञ्ञाणमेत्थ सितमेत्थ पटिबद्धं ति।

   See Tibetan version, Dulva, IV. leaf 437a,1.6 ff.
6. Ms. अभिनिर्न्निर्मीते

Page	Line	Word
180	7	°नेन्द्रियम्[1]
180	16	रिजुभूते[2]
180	17	°भिर्निनमय्य[3]
180	18	भवति[4]
180	21	°न्दस्त्रोतो[5]
180	23	परामार्ष्टि[6]
180	25	पिलन्धन°[7]

---

1. Cf. DigN—सेय्यथापि, महाराज, मणि वेडुरियो सुभो जातिमा अट्ठंसो सपरिकम्मकतो अच्छो विप्पसन्नो अनाविलो सब्बाकारसम्पन्नो। तत्रस्स सुत्तं आवुतं नीलं वा पीतं वा लोहितं वा ओदातं वा पण्डुसुत्तं वा। तमेनं चक्खुमा पुरिसो हत्थे करित्वा पच्चवेक्खेय्य—"अयं खो मणि···· चित्तं अभिनीहरति अभिनिन्नामेति।

   DigN I. पृ०67. पं०18-26 (NNM) GM,213

2. Ms. uses throughout रि for ऋ।
3. Pāli: अभिनिन्नामेति।
4. Cf. Mvyut. XV,13.DigN—सो अनेकविहितं इद्धिविधं पच्चनुभोति—एको पि हुत्वा बहुधा होति, बहुधा पि हुत्वा एको होति;

   DigN.I. पृ०68. पं०24-25 (NNM)

5. Mvyut. XV, 13: अभिद्यमानो; Pāli: अभिज्जमानो।
6. Ibid. 17: परामृशति परिमार्जयति; Pāli: परिमसति परिमज्जति।

   GM,214

7. Ms. यस्यां यस्यां पिहिनिविकृति°, cf. Tib. 438b, 1.5=whatever ornament. GM, 215

Page	Line	Word
181	17	अभिन्दस्त्रोतो[1]
181	18	शकुनकः[2]
181	19	परिमार्ष्टि[3]
181	21	°निर्वर्तयति[4]
181	29	परिमार्ष्टि[5]
182	7	निशार्धे[6]
182	7	पृथग्दिशः[7]
182	7	स्फुरेत्[8]

---

1. Mvyut. उदकेप्यभिद्यमानो गच्छति तद्यथापि नाम महापृथिव्याम् ।
   Cf. DigN—उदके पि अभिज्जमानो गच्छति, सेय्यथापि पथविया;
   DigN.I. पृ०69. पं० 1·2 (NNM)

2. Ibid. शकुनिः ।

3. Ibid. परामृशति परिमार्जयति ।
   Cf. DigN—इमे पि चन्दिमसुरिये एवंमहिद्धिके एवंमहानुभावे पाणिना परामसति परिमज्जति; याव ब्रह्मलोका पि कायेन वसं वत्तेति ।
   DigN.I. पृ०69.पं० 3·4; 19-20 (NNM)

4. Cf. Digha·I. पृ०69. GM,216

5. Mvyut. परामृशति परिमार्जयति ।
   Digh. I. पृ०69 परामसति परिमज्जति ।

6. Tib. 440b, 1.4 mtshan-nam-phyed-gyi-dus-su-duṅ-bus-na.=अर्धरात्रे ।

7. Tib. 440b, 1.4: phyogs-tha-dad-pa.

8. DigN. 1.p. 790 differs here from this text and the illustrations also are not very appropriate. GM,217

Page	Line	Word
182	13	चेत:°[1]
182	14	वितर्कितं[2]
182	14	विचारितं[3]
183	6	विंशतं[4]
183	11	सोऽहं[5]
183	14	°हागच्छेत्[6]
183	15	दप्येहागत[7]
184	2	°मानानपि[8]
185	23	चत्वारि[9]
185	24	°मुपाहत:[10]
185	25	°णायामपि[11]

1. Ms. दिव्यश्रोतज्ञान°
2. Tib. 441a, 1.4: rnam-par-rtog-pa-daṅ.
3. Ibid. rnam-par-dpyod-paḥi-yid. GM,218
4. Ms. द्विशतं
5. In Pāli अहं is omitted. GM,219
6. For °दपीहागच्छेत्
7. For °दपीहागत GM,220
8. For उत्पद्यमानान् GM,221
9. Tib. 447b, 1.1 adds तद्यथा दु:खं समुदायं निरोधं मार्गम् ।
10. The (Pāli) Sāmaññaphala-sutta ends here.
11. Tib. 447b, 1.3: gaṅ-snoṅ-dum-tshig-pa-la-yaṅ-sems-mi-bskyed-na. GM,224

Page	Line	Word
186	15	वरः[1]
186	19	°मूलकया[2]
186	20	यदा[3]
186	20	मुञ्चति[4]
186	22	प्रतीष्टः[5]
186	22	जानीयात्[6]
187	4	सान्तः°[7]
187	5	समवस्थेति[8]
187	7	विलपितै°[9]

1. See Tib. 448a, 1.7: Cf. Suttanipāta, vv.568,569:

   अग्गिहुत्तमुखा यञ्ञा सावित्ति छन्दसो मुखम् ।
   राजा मुखं मनुस्सानं नदीनं सागरो मुखम् ॥
   नक्खत्तानं मुखं चन्दो आदिच्चो तपतं मुखम् ।
   पुञ्ञं आकंखमानानं संघो वे यजतं मुखम् ॥ इति ।

2. Ms. अमूल्यकया; Tib. 448b, 1.3: gshi-med-paḥi-dad-pa-la-bshag-pa.
3. Ibid. 1.3: gal-te = चेत् GM,225
4. Ibid. 1.4: bdag-ñid-mchoṅ-bar-byed-do
5. Ms. प्रतीष्ठः, Tib. 448b, 1.5: blaṅs-so.
6. For जानीयुः ।
7. Tib. 449a, 1.5: naṅ-mi-daṅ.
8. Ms. समवस्थितेति ।
9. Ms. 'विलम्बितै' GM,226

Page	Line	Word
187	10	°वलम्ब्य[1]
187	27	वालधिम्[2]
188	27	कथयति[3]
189	3	°त्ययनार्थं[4]
189	4	°संदधातु[5]
189	4	भव[6]
189	11	°पौरुष्यम्[7]
189	14	°म्रक्षितं[8]
189	27	°दमापन्नः[9]

---

1. Tib. 449b, 1.2: brtson-ḥgrus la·gnas-te GM,227
2. Tib. 450a, 1.4: ḥjug-mḥi-spu·yaṅ-phyis·nas-ni. GM,228
3. Tib. 451a, 1.3:
4. Tib. 451a, 1.5: de-yid-ches par-bya-baḥi·phyir.
5. Tib. 451b, 1.5: re-śig-lta-daṅ·bcas pahi-ḥjig-rten-gyis ḥdir-slar-ḥbyor-bar-byos·sig.
6. Ibid. 1.6: ye-bag-ma-tsha-shig. GM,229
7. Ms. गूथोडीरं।
   Cf. MajN—गूथकूपो साधिकपोरिसो। सेय्यथापि, सारिपुत्त, गूथकूपो साधिकपोरिसो, पूरो गूथस्स।
   MajN पृ० 105पं० 26 27 (NNM)
9. Ms. मृक्षितं GM,230
8. Tib. 452a, 1.7: goṅ·du-bya·ba-yod-bshin-du-bar-du-sgyid-lug-par-gyur-te.

Page	Line	Word
189	28	°दमापन्नः[1]
190	12	°सागरभैरवः[2]
191	1	दाराय[3]
191	11	°च्छिद्रेण[4]
191	20	°पत्रपस्त्वं[5]
191	24	वत्सनाभस्य[6]

---

1. I. e. gets wearied at heart. GM,231
2. Ms. drops about a line here. It runs as follows:

   न स तेन विदूष्येत भावितात्मा हि संमतः ॥
   सम्यग्दर्शी शान्तचित्तो वादेयस्मिन्न रोहति ।
   तादृग्मित्रं प्रकुर्वीत etc.

   Tib. 452b, 1.7-453a, 1.1:

   chu·gter-ḥjigs-ruṅ chen·po·de.
   de-yis-de-sun·mi phyin-ltar.
   gaṅ-shig de-bshin-gśegs-pa-la.
   kha·zer·sum·ḥbyin-de-daṅ-ḥdra.
   yaṅ-dag-gzigs-pa shi-paḥi thugs.
   gaṅ-la-phyar-kas-mi-rje-ba. GM,232
3. For दारेभ्यः । GM,233
4. Tib. 454a, 1.5: stor·khuṅ·nas-byuṅ-ste. = escaped through a drain.
5. Tib. 454b, 1.3: ṅo cha-med-ciṅ-blun-po·yin-no. GM,234
6. Tib. 454b 1.5: peḥu gyi-lte-ba·lta-bu-shes-bya-baḥo.

Page	Line	Word
192	3	अभ्युदी°[1]
192	5	समन्ततो°[2]
192	7	आशय°[3]
192	8	'स्थितोऽपि[4]
192	13	°हरिष्यति[5]
192	25	°मारब्धः[6]
193	5	विशेषा[7]

1. Tib. 455a, 1.6: śin-tu-drag-pohi-las.
2. Ms. लिंगितो। Tib. 455a, 1. 7: kun-nas-yog-nas.
GM,235
3. Ms. आसतश्चित्त°; Tib. 455b, 1.2: bsam-pa-thag-pa-nas.
4. Ibid. rus paḥi-khoṅ-nas. = from skeleton; cf. Jātaka, iv p. 158: इमेहि अट्ठीहि तमग्गपुग्गलं....सरणमुपेमि।
5. Tib. 455b, 1.5: lag-pa ḥkhru-shiṅ-sems pa-la-shugs-pa.
GM,236
6. Ms. °वीचिकाभिर्धाराभिरन्तरान् पर्यादीयते। एषाभिर्मात्राभि°; Tib. 456a, 1.7 456b, 1.1: chu-de-mnar-med-paḥi-me-lce-rnams-kyi-bar-du-skamso. de-bshin-du-gñaḥ-śiṅ-daṅ-shiṅ-rtaḥi-srog-śiṅ-tsam-gyi-char-rgyun dag-dbab-bar-brtshams-pa-daṅ. = The rain-water was dried up by the fiery flames of Avīci, although it started raining like yokes of oxen and the axles of chariots.
7. Ms. प्रातिमौद्गलिका वर्तन्ते। GM,237

Page	Line	Word
193	7	°पेषयन्ति[1]
193	9	°पेषयन्ति[2]
193	27	सहांपतिना[3]
194	9	स्तूपकारान्[4]
196	1	शृगालो[5]
197	2	प्रेरय[6]
197	19	°क्तमधो[7]
197	21	°देशयेत्[8]
199	9	°ह्याभिरुह्य[9]
199	23	अधर्मे[10]

---

1. Tib. 456b, 1.6: til-bshin-du-ḥthag par-bgyid-do.

2. Tib. 457a, 1.1: ḥbras phye-bshin-du-ḥthag-par-bgyid-do. GM,238

3. Ms. सभांपति; Tib. 457b, 1.5: mi-mjed-kyi-bdag-po

4. Tib. 458a, 1.4: mchod-pa-la-bgyi-pa-bgyid-pa. GM,239

5. Ms. throughout सृगालः। GM,242

6. Tib. 461a, 1.7: mnogs-śig-daṅ. GM,244

7. Tib. 462a, 1.3: ṅes-par-bshud. = Surely go.

8. Ms. °पदर्श;° Tib. 462a, 1.5: ston-byed-na. GM,245

9. Tib. 463b, 1.7: ḥkhrul-ḥkhor-sbyar-te-shon-nas. GM,247

10. Ms. अधर्मेण

Page	Line	Word
199	24	अव्यग्रसंज्ञिनः[1]
199	24	धर्मे[2]
199	25	समग्रसंज्ञिनः[3]
199	25	इति[4]
200	2	व्रतपदै[5]
200	3	पंचाभिः[6]
200	21	°वर्तकेन[7]
201	6	पृ [थ] ग्[8]
201	9	°षष्ठिकाः[9]
201	13	कर्मणा[10]

---

1. Ms. व्यग्राव्यग्र°
2. Ms. धर्मेण
3. Ms. समग्रासमग्र°
4. Cf. Pāli Vinaya, Vol. 1.p. 328 GM,248
5. Ms. वृत throughout.
6. In Tib. (464b) also the number is five, though the number of vratapadas enumerated is four.
7. Cf. Pāli Vinaya Vol. 1.p. 338f. GM,250
8. Tib. 466b, 1.4: ḥpaḥ-shig-ma-mtogs-par.
9. See Tib. 466b, 1.5.
10. Tib. 467a, 1.1: mnar-med-paḥi-kha-na-ma-tho-ba-skye-shid-mtshams-med-paḥi-kha-na-ma-tho-baḥi-las-kyis-reg-par-ḥgyur-lgas.

Page	Line	Word
201	14	अधर्मसंज्ञी[1]
201	17	धर्मसंज्ञी[2]
202	10	अधर्मसंज्ञी[3]
202	10	धर्मसंक्षी[4]
203	8	[अ] धर्मसंज्ञी[5]
203	12	भेदाय][6]

1. Ms. धर्मसंज्ञाने चाधर्मसंज्ञी। See Tib. 467a, 1.1.
2. Ms. अधर्म॰ GM.251
3. Ms. विक्षुरधर्मे धर्मसंज्ञी
4. Ms. अधर्मसंज्ञी; Same in Tib.
5. Ms. धर्मसंज्ञी GM,253
6. Ms. शिक्षयति नास्य ओसाय। GM,254

मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तुनि

अकारादिक्रमेण शब्दानामनुक्रमणिका

1. Edgerton,BHS, 401. col.2.

मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तु

Corrigenda

Read	for	Page	Line
मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तुनि	मूलसर्वास्तिवाद-विनय-वस्तुनि	2	Heading
क्षान्तमनुज्ञातं	क्षान्तमनुज्ञातां	2	6
पंचभिर्धर्मैः	पंचभिर्धर्मैः	3	2
पंचभिर्धर्मै	पंचभिर्धर्मैः	3	13
पृष्टवाचिकया	पृष्टवाचिकय	3	14
भिक्षून्	भिक्षूद्	3	15
संनिपतिते	संनिपतितते	3	15
ओसारयत्वस्माकं	ओसरयत्वस्माकं	3	23
संघः	संधः	3	27
संघः	संधः	3	28
मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तुनि	मूलसर्वास्तिवाद-विनय-वस्तुनि	4	Heading
निःसरणं	निःसरणां	4	9
ऽभीक्ष्णं	ऽभीक्ष्ण	4	17
चेतःशमथम्	चेतः क्षमथम्	4	19
गर्हणीयं	मर्हणीय	4	21
कारणैर्निगर्हणीयं	कारणैर्निगर्हणीय	4	24
मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तुनि	मूलसर्वास्तिवाद-विनय-वस्तुनि	6	Heading

Read	for	Page	Line
औद्धत्यं	औदत्यं	6	28
चरन्	चरन	7	15
अथायुष्मानानन्दः	अथायुप्मानानन्दः	7	16
मनुष्यश्च	मनुप्यश्च	7	21
मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तुनि	मूलसर्वास्तिवाद-विनय-वस्तुनि	8	Heading
प्रतिपादयिष्यति	प्रतिपादयिप्यति	9	11
प्रेतोपपन्ना	प्रेतोष्पन्ना	9	12
इत्ति	इति	9	13
तमागम्य	तमागभ्य	9	17
समादाप्य	समानाप्य	9	25
संप्रहर्ष्य	संप्रहर्प्य	9	26
मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तुनि	मूलसर्वास्तिवाद-विनय-वस्तुनि	10	Heading
यद्वा तद्वा	तद्वा यद्वा	10	19
मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तुनि	मूलसर्वास्तिवाद-विनय-वस्तुनि	12	Heading
मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तुनि	मूलसर्वास्तिवाद-विनय-वस्तुनि	14	Heading
रूपं	रुपं	14	14
धर्मं	धर्म	14	19
संघः	संधः	15	10
उत्क्षेपणीय	उत्पेक्षणीय	15	11
मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तुनि	मूलसर्वास्तिवाद-विनय-वस्तुनि	16	Heading

Read	for	Page	Line
समुत्थिताया	समुथिताया	16	9
संघावशेषाया	संधावशेषाया	16	22
भिक्षुणा	भिक्षूणा	16	28
°समुत्थिता°	°समुथिता°	17	23
संघावशेषामापत्तिमापन्नः	संघावशेषामपत्तिमापन्नः	20	20
संघावशेषाया	संधावशेषाया	22	14
[प्रतिरूपां]	[प्रतिरूपां	22	27
°पत्तेरन्तरा°	°पत्तरेन्तरा°	23	5
[द्वौ]।	[द्वौ]	29	7
संघावशेषा°	संधावशेषा°	30	16
मूलसर्वास्तिवादविनयवस्तुनि	मूलसर्वास्तिवाद-विनय- वस्तुनि	32	Heading
आव्रीढ	आवृढ	37	8
संघेन	संधेन	38	13
संघावशे°	संधावशे°	38	26
संघावशे°	संधावशे°	40	21
प्रत्यन्तरापत्ति°	प्रत्यन्परापत्ति°	41	21
°प्रतिरूपा°	°प्रतिरुपा°	41	26
अधर्मेण	अघर्मेण	42	16
कोप्येन	कोप्येन	43	16
कर्मणा कोप्येनास्थापनार्हेण	कर्मणाकोप्येनास्थाप- मार्हेण	43	25
°प्रतिच्छन्नाम्	°प्रतिच्छानाम्	44	20
°प्रतिच्छन्नाम्	प्रतिच्छानाम्	44	24

Read	for	Page	Line
GM. 93	GM. 9	47	1
उपस्थापयितव्यः	उपस्थापायितव्यः	49	11
अष्टावधार्मिकाणि	अष्ठावधार्मिकाणि	54	4
अष्टौ	अष्ठौ	54	4
एवं	एबं	57	9
विद्यते	बिद्यते	66	2
दत्त	सुदत्त	67	24
स्वर्गं	स्वर्ग	79	9
ततस्ते [न	ततस्ते] न	80	25
प्रव्राजितः	प्रव्राजितः	84	15
तेषामर्थो	तेपयर्थो	85	25
त्रयाणां । ········	त्रयाणां ।	86	12
वयमार्यसंघरक्षित	वयमार्चसंघरक्षित	88	26
दृष्टिविषः	पृष्टिविषः	89	19
द्रष्टुमारब्धः	द्रष्ट्मारब्धः	90	1
°श्लोरितः	°श्लोरीतः	90	9
कथयन्ति	कथयति	90	21
द्वितीयं	द्वीतीयं	91	7
दग्धा	दग्घा	92	13
मुहूर्त्तम्	महूर्त्तम्	94	11
सत्त्वमद्राक्षी°	सत्त्बमद्राक्षी°	95	26
हैमन्तिकं	हैमतिकं	96	13
सार्धविहा°	सार्धविहा°	96	21
एवंविधास्त्वया	एवंविघास्त्वया	98	8

Read	for	Page	Line
अयमन्यो	अन्यमन्यो	98	23
सार्धं	सर्धं	100	7
अमुष्मिन्	अमुष्मिन	100	16
प्रव्राजित	प्रवाजित	101	18
भिक्षवो	भिक्षबो	101	24
°संप्रति-	°संप्रति	102	24
यत्रेदानीमेवं°	यत्रेदानोमेवं°	104	1
मे	म	104	7
दत्त्वावस्थिताः	दच्वावस्थिताः	104	20
प्रधाविताः	प्रधार्विताः	104	21
राज्ञः	राभ्नः	104	25
विज्ञापयन्ति	विभ्नापयन्ति	104	26
राज्ञा	राभ्ना	104	27
°पतेराज्ञा	°पतेराभ्ना	104	27
चतुरङ्ग°	चतुरङ्ग	104	28
उद्दानम्	उद्धानम्	106	
संघ	संघ	112	6
प्रातिमोक्ष°	प्रातिमीक्ष°	113	19
वहिर्व्यामो°	बहिर्व्यामो°	113	26
1	।	114	1
संघ [क]	संध [क]	114	24
प्राकारनिमित्तं	प्रकारनिभित्तं	116	8
प्रवारणा च	प्रवारणाच	116	18
वाभिनिर्हतु°	वाभिनिहतु°	119	8

Read	for	Page	Line
पूर्वस्यां	पूवस्यां	120	1
संघो	संधो	120	12
मातृका°	माधृका°	122	23
°पतितैराग°	°पतितराग°	129	9
विहारं	बिहारं	130	3
गोमयकार्षीम°	गोमयकाषीम°	130	3
°भिक्षुकमावासं	°भिक्षुकमाववासं	131	23
सर्वसंघेन	सर्वसंधेन	132	7
चेत्तिृवाचिकया	चेत्तिवाचिकया	133	17
खेटं	क्षेटं	133	22
चेत्तिृवाचिकया	चेत्तिवाचिकया	134	3
उच्चार°	उश्चार°	134	8
चेत्तिृवाचिकया	चेत्तिवाचिकया	134	15
चङ्क्रमं	चङक्रमं	134	21
व्यम्	व्ययम्	136	22
भिक्षुणा	।भक्षुणा	140	11
[एक°	एक°	141	4
प्रभूतो	प्रभृतो	143	27
ग्रामघातं	ग्रामधातं	148	17
चौरैर्गृहीतो	चौरेर्गृहीतो	148	19
उपगतः	उपगतः ।	148	22
चौरैर्गृहीतो	चौरेर्गृहीतो	148	22
10	19	150	
°ह्रियते ।	°ह्रियते	152	4

Read	for	Page	Line
भिद्यते	भिद्ये त	152	5
[त्रिरिा	]त्रिणि	155	25
सुकुमारा	सकुमारा	156	13
°मम	°मगम°	156	23
गर्दभावतिष्ठत	गर्दभाववतिष्ठत	158	4
19	20	158	19
स कथयति ।	कथयति ।	160	25
अनिष्टो	सअनिष्टो	160	25
°श्रद्दधास्यति	°श्रद्दधास्यन्ति	160	26
मम	मभ	163	24
दूरादेव	पूरादेव	164	17
संनिपतन्ति	संनिषतन्ति	166	26
उपसंक्रम्य	उपसंक्रभ्य	168	4
GM. 188	GM. 88	168	10
पृच्छये त	पृच्छयेत	168	26
नीयते	नोयते	171	19
नदीसन्तरणे	नदीसन्तरेण	174	2
आसन् ।	आसन्	174	23
धारयितव्या	धारयितव्यां	175	23
किणिकिणायमाना	किण किणायमाना	177	13
भगवानाह	मगवानाह	178	7
°मृद्धि°	°मृद्धि°	180	18
पर्यङ्केना°	प ङ्केना°	181	7
तामेव	तामेंव	181	21
विगतोपक्लेशे	विकतोषक्लेशे	182	3

Read	for	Page	Line
°भूते	°भ ुते	182	12
साकारं	शाकारं	183	25
महाराज	सहाराज	183	26
°नि	न	184	Heading.
10	16	184	10
ऋजु°	ऋ़जु°	184	10
एवं	एदं	184	14
नापरमस्माद्ध्रुवं	नापरस्माद्ध्रुवं	184	16
परिशुद्धे	परिशुद्ध	184	19
दुःखनिरोधः	दु:खनिरोधः ।	184	21
नापरमस्माद्ध्रुवं	नापरस्माद्ध्रुवं	184	24
पापमित्रवशं°	पापमित्रोवशं°	185	2
पापमित्रोप°	पापमित्रप°	185	2
व्यपरोपितः	व्यपोरपितः	185	3
दग्धस्थूणा°	दग्धत्थूणा°	185	25
खादनीयभोजनीयेन	खादनीययभोजनीयेन	186	5
°धर्मा	°धर्भा	187	12
पुरतो	पुरुतो	188	2
°दूर्ध्वसाधिक°	°दूध्र्व साधिक°	189	11
कल्पस्थोऽचिकित्स्यः	कल्पस्थोचिकित्स्यः	189	23
श्रावकसंघो	श्रात्रकसंघो	193	15
°स्तूपकारान्	°स्तूपफारान्	194	9

Read	for	Page	Line
कर्णहीनः	फर्णहीनः	195	6
श्रृगाल	श्रृ ंगाल	195	20
कथयति	कययति	195	22
बिसान्युत्खनति	विसान्युत्खनति	195	22
बिसान्युत्खनामि	विसान्युत्खनामि	195	27
वद्धः	वद्ध	196	2
पौरोहित्ये	पोरोहित्ये	196	24
°समनन्तरमेव	°समन्तरमेव	197	14
°श्रृण्वन्ननयेन	°श्रृण्वन्नयेन	198	15
यन्त्रकला°	यन्त्रकाला°	198	23
°श्रृण्वन्ननयेन	°श्रृण्वन्नयेन	199	21
°कर्मणा	°कमर्णा	200	1
यतश्चोदालिन्	यनश्चोदालिन	202	7
समग्रं	समग्र	202	8
धर्मसंज्ञी	अधर्मसंज्ञी	203	1
लोमं	लोभं	209	9
Line	Li̇ne	214	
Page	Pase	215	
पाराजिका	पराजिका	216	13
समुद्यतः	समुधतः	218	24
वार्षिकं[1]	वार्षिकं[5]	228	1
omit	65	228	5
,,	...	228	5
,,	...5	228	5

Read	for	Page	Line
omit	5. Tib 315b, 1.3 : hyigs-paḥi-dabaṅ-du- ḥgro-ba-dain-bacas-pas GM, 131	228	16-17
14	...	232	5
पएय 5	...5	232	5
GM, 41	GM. 41	234	26
भावा°	भवा°	242	10
PARALLEL	PARALLAL	247	Heading.
PARALLEL	PARALLAL	249	Heading.
1.7 :	17 :	261	23
8	9	292	22
9	8	292	23

